सरस्वती-पुस्तक-माला का १९ वाँ पुष्प

तुलसी-सतसई

[सुबोधिनी टीका युक्त]

टीकाकार
बलिया जिलान्तर्गत अगरौली ग्राम-निवासी
हिन्दी-साहित्य-रत्न पं० रामचन्द्र द्विवेदी

प्रकाशक
सरस्वती भण्डार
पटना

संस्करण } १९२९ { मूल्य सादी २)
सजिल्द २॥)

प्रकाशक
अखौरी सच्चिदानन्द सिंह
अध्यक्ष, सरस्वती-भण्डार
चौहट्टा, पटना

मुद्रक
के० पी० दर
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद

समर्पण

हिन्दी-साहित्य के अनुपम प्रेमी

"श्री मन्नूलाल पुस्तकालय" गया के संस्थापक

श्रीयुत सूर्य्यप्रसाद जी महाजन

ज़मींदार, मुरारपुर, गया

के कमल करों में

सादर सप्रेम

समर्पित

स्वरचित 'तुलसी-साहित्य-रत्नाकर' नामक ग्रन्थ में बड़ी खोज के साथ कई विद्वानों की सम्मति युक्त दिया है। परन्तु यहाँ भी संक्षिप्त रूप से कुछ उल्लेख कर देना आवश्यक है।

जन्म-काल

महाकवि तुलसीदासजी के जीवन-चरित के सर्वप्रथम लेखक सुविख्यात सन्त प्रियादासजी हैं। आपने भक्तमाल पर टिप्पणी लिखते हुए गोस्वामीजी की जीवनी के सम्बन्ध में कतिपय कविताएँ की हैं। प्रियादासजी के लेखों के बाद मिरजापुर-निवासी पण्डित रामगुलाम द्विवेदी, काशी-निवासी विद्वद्वर-मयंककार पण्डित शिवलालजी पाठक, महाराज रघुराज सिंह, डाक्टर ग्रियर्सन, साहित्यमर्मज्ञ माननीय मिश्रबन्धु, तथा लाला शिवनन्दनसहायजी प्रभृति विद्वानो के लेख गोसाईंजी के जीवन-सम्बन्ध में प्रायः प्रामाणिक समझे जाते हैं। पं० रामगुलाम द्विवेदी के मतानुसार गोसाईंजी का जन्म, संवत् १५८९ में हुआ था। इस लेख से डाक्टर ग्रियर्सन और माननीय मिश्रबन्धु भी सहमत हैं। 'शिव-सिंह-सरोज' में इनका जन्म संवत् १५८३ माना गया है। पाठकजी ने तो गोसाईंजी को दीर्घायु प्रदान की है। उनके मतानुसार तुलसीदास-जी का जन्म संवत् १५५४ ही है। गोसाईंजी का स्वर्गवास संवत् १६८० है। इसमें सभी विद्वान सहमत हैं। ऊपर के लेखों से इनकी आयु कम से कम ९१ और अधिक से अधिक १२६ वर्षों की सिद्ध होती है।

प्रियादासजी ने भक्तमाल की टीका पर जन्म-मरण-संवत्-चक्र इस प्रकार दिये हैं—

संवत्	जन्म	परलोकवास	जीवन
कलि	४६३३	४७२४	९१ वर्ष
विक्रम	१५८९	१६८०	" "
ईस्वी	१५३२	१६२३	" "

सवत्	जन्म	परलोकवास	जीवन
शाका	१४५४	१५४५	९१ वर्ष

जन्मस्थान

इस सम्बन्ध मे भी पूर्व लेखकों के लेखो में मतैक्य नहीं है। कोई हस्तिनापुर, कोई चित्रकूट के निकटस्थ हाजीपुर नामक ग्राम को और कोई बांदा जिलान्तर्गत राजापुर नामक स्थान को गोसाईंजी का जन्म-स्थान बतलाते हैं। बहुत से लोग कहते हैं कि "तारी" इनकी जन्मभूमि है। अभी तक जितनी खोज हुई है उसमे राजापुर की ओर ही अधिक सम्मति पायी जाती है। म० वेणीमाधव दास, प० रामगुलाम द्विवेदी, बा० शिवसिंह सेंगर, महात्मा रघुवरदासजी एवं बाबू श्यामसुन्दरदासजी राजापुर जन्मभूमि बतलाते हैं। कहा जाता है कि राजापुर में गोसाईंजी की कुटी अब तक विद्यमान है और कई विशाल मन्दिर भी उनके बनवाये अद्यावधि स्थित हैं।

जन्म-वर्णन

लोक में प्रसिद्ध है कि गोसाईजी के पिता का नाम आत्माराम दुबे तथा माता का नाम श्रीमती हुलसीदेवी था। गोसाईंजी ने अपने किसी भी ग्रन्थ मे अपने माता-पिता का नाम नहीं दिया है। कुछ एक स्थलों पर "हुलसी" शब्द आया है, जिससे अनुमान किया जाता है कि उनकी माता का नाम "हुलसी" ही है। अकबर बादशाह के प्रसिद्ध वजीर नवाब खानखाना रहीम के साथ गोसाईंजी का बड़ा ही स्नेह था। खानखाना भी हिन्दीभाषा के अच्छे कवि थे। एक दिन तुलसीदासजी के पास एक दीन ब्राह्मण आया और अपनी कन्या के विवाहार्थ उसने कुछ धन की याचा की। गोस्वामीजी ने एक पुर्जे पर, अधोलिखित दोहार्द्ध लिखकर उस ब्राह्मण को देकर कहा कि तुम इसे ले जाकर खानखाना के हाथ में दो—

सुर तिय नर तिय नाग तिय, अस चाहत सब कोय।

ब्राह्मण ने वैसा ही किया। इस पर खानखाना ने उस ब्राह्मण को बहुत कुछ धन देकर विदा किया और कहा कि इस कागज़ को तुम पुन गोसाईंजी के हाथ में जाकर दे दो। खानखाना ने उसी पद के नीचे यह लिख दिया —

गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी से सुत होय ॥

इसी 'हुलसी' से लोगों की यह धारणा है कि खानखाना ने इस शब्द को श्लेषार्थ में प्रयुक्त किया है। हुलसी का अर्थ 'प्रसन्न होकर' और "तुलसीदास की माता" का भी वाचक है। गोसाईंजी स्वयं हुलसी शब्द को प्रसन्नता वा प्रकाश अर्थ में प्रयुक्त करते हैं जैसा निम्नलिखित पद्यों से प्रकट है—

किसी ने तुलसीदास से सूरदास की प्रशसा की, उस पर इन्होंने कहा—

कृष्णचन्द्र के सूर उपासो। ताते इनकी बुद्धि हुलासी।
रामचन्द्र हमरे रखवारा। तिनहिं छाँड़ि नहिं कोउ संसारा ॥

इसके अतिरिक्त मानस-रामायण में आया है।

शम्भु प्रसाद सुमति हिय "हुलसी"। रामचरित मानस कवि तुलसी।"

ऊपर के दोनों ही पद्यों में 'हुलसी' शब्द प्रकाशित अर्थ में व्यवहृत हुआ है। अब एक अन्य स्थल पर इस शब्द को कवि ने प्रयुक्त किया है—

'रामहिं प्रिय पावनि तुलसीसी। तुलसिदास हितहिय हुलसीसी॥'

इस चौपाई में जो 'हुलसी' शब्द आया है वह माता का द्योतक यदि न समझा जाय तो अन्यार्थ वहाँ संगत नहीं प्रतीत होता। यदि 'माता' का ही सूचक समझें, तो आपत्ति आती है कि इनकी माता ने तो इन्हें जन्म लेते ही परित्याग कर दिया, तब गोसाईंजी कैसे कहेंगे कि राम की कथा हुलसी के समान हृदय से हित करनेवाली है! हो सकता है कि गोसाईंजी के हृदय में, माता द्वारा किया दुर्व्यवहार भूल गया हो और स्वाभाविक मातृस्नेह का स्रोत उमड आया हो।

वंश-वर्णन

इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि तुलसीदासजी ब्राह्मण के बालक थे। "दियो सुकुल जन्म शरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को" और "जायो कुल

मगन" इत्यादि पद्यों से गोस्वामीजी ने स्वयं अपने ब्राह्मणवंशज होने की सूचना दी है। इस विषय में किसी भी ग्रन्थकार के बीच मत-द्वैत नहीं देखते। हाँ, कोई इन्हें कान्यकुब्ज और कोई सरयूपारीण बतलाते हैं। पण्डित रामगुलाम द्विवेदी इन्हें सरयूपारी ब्राह्मण तथा पतिऔंजा के दुबे मानते हैं। गोत्र पराशर बतलाया जाता है। कहा भी है "तुलसी, पराशर गोत्र दूबे पतिआजा के"।

अभुक्तमूल

गणक चक्र-चूडामणि स्वर्गीय पण्डित सुधाकर द्विवेदी के मतानुसार गोसाईंजी का जन्म अभुक्तमूल में हुआ था, अत इनके माता-पिता ने पौराणिक प्रथानुसार इनका परित्याग कर दिया। मुहूर्त्त चिन्तामणि नामक आधुनिक ज्योतिष ग्रन्थ में लिखा है —

अथोचुरन्ये प्रथमाष्टघट्यो मूलस्य शाक्रान्तिमपञ्चनाड्यः,
जातं शिशुं तत्र परित्यजेद्वा मुखं पितास्याष्टसमा न पश्येत्।

अर्थात् मूल के आरम्भ की आठ तथा ज्येष्ठा के अन्त की तेरह घटिकाएँ अभुक्तमूल कहलाती हैं। इनमें जो बालक पैदा हो, उसका परित्याग कर दे अथवा पिता आठ वर्ष तक उसका मुख न देखे।

कवित्तरामायण उत्तरकाण्ड के ५६वें छन्द में कवि ने स्वयं लिखा है—

मातु पिता जग जाय तज्यो, विधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।
नीच निरादर भाजन कादर, कूकुर टूकन लागि ललाई॥
राम स्वभाव सुन्यो तुलसी, प्रभु सों कह्यो बारक पेट खलाई।
स्वारथ को परमारथ को रघुनाथ सों साहब खोरि न लाई॥

ऊपर के पद्य का प्रथम चरण भलीभाँति सिद्ध करता है कि माता-पिता ने जन्म होने के अनन्तर ही गोसाईंजी को त्याग दिया था। इसी आशय की पुष्टि विनयपत्रिका का अधोलिखित भजन भी करता है जिसका तृतीय चरण विशेष विचारणीय है—

नाम राम रावरो हित मेरे ।
स्वारथ परमारथ साथिन सों भुज उठाय कहौं टेरे ।
जनक जननि तज्यो जनमि करम बिनु विधि सिरज्यो अवडेरे ॥
मोहिं सो कोउ-कोउ कहत राम को सो प्रसंग केहि केरे ।
फिर्यो ललात बिन नाम उदर लगि दुखहु दुखित मोहि हेरे ॥
नाम प्रसाद लहत रसाल फल अब हौं बबुर बहेरे ।
साधत साधु लोक परलोकहिं सुनि मुनि जनत घनेरे ।
तुलसी के अवलम्ब नाम ही की एक गाँठि केइ फेरे ॥

अब आप इस भाव की पुष्टि के लिए कविवर विरचित कवित्त-रामायण उत्तरकाण्ड, कवित्त ७३ को पढ़िये—

जायो कुल मंगन बधायो न बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को ।
बारे ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हो चारि फल चारि ही चनक को ॥
तुलसी सो साहिब समर्थ को सुसेवकहि,
सुनत सिहात सोच विधि हू गनक को ।
नाम राम रावरो सयानो किधौं बावरो,
जो करत गिरीते गुरु तृण ते तनक को ॥

उपर्युक्त कविता में "जायो कुल मगन" से दरिद्र ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न होना भी सिद्ध होता है । जन्म के समय बधावे न बजने का कवि को शोक हुआ, परन्तु परमपिता परमात्मा की ऐसी कृपा हुई कि इनके नाम की जगत में दुन्दुभी बज गयी और नगर-नगर, ग्राम-ग्राम इनके ग्रन्थो को पढ़कर लोग बधावे बजाया करते हैं । इनके नाम पर जितने बधावे बजे और बज रहे हैं स्यात् ही जगत में अन्य किसी महाभाग को ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो । "करत गिरी ते गुरु तृण ते तनक को" की सच्ची घटना इन्हीं के जीवन में संघटित हुई । कुछ लोगों की ऐसी धारणा है कि

तुलसीदासजी को उनके माता-पिता ने जीते ही जी छोड नहीं दिया था प्रत्युत् उनके (गोसाईंजी के) बचपन में ही वे (माता-पिता) स्वर्गवासी हो गये। इसी भाव को लेकर तुलसीदास ने भी "मातु-पिता जग जाय तज्यो" इत्यादि लिखा है।

विनयपत्रिका के निम्नलिखित भजन से भी गोस्वामीजी के माता-पिता द्वारा परित्याग की परिपुष्टि होती है।

"द्वार-द्वार दीनता कही काढ़ि रद परिपाहूँ।
है दयालु दुनि दश दिशा दुख दोष दलन क्षम कियो न संभाषण काहूँ ॥१॥
तनु जन्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यौ मातु पिताहूँ।
काहे को रोष दोष काहि धौं मेरे ही अभाग, मौसो सकुचत सब छुइ छाहूँ ॥२॥
दुखित देखि सन्तन कह्यो सोचे जनि मन माहूँ।
तोसे पशु पाँवर पातकी परिहरे न शरण गये रघुवर और निवाहूँ ॥३॥
तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति प्रतीति विनाहूँ।
नाम की महिमा शील नाथ को मेरो भलो विलोकि अब तो सकुचाहुँ सिहाहूँ ॥४॥

अर्थ—(तुलसीदास कहते हैं कि) हे प्रभो! मैं द्वार-द्वार अपनी दीनता कहता फिरा, दाँत निकालकर लोगो के पाँव पडता रहा। ससार में ऐसे-ऐसे दयालु विद्यमान हैं कि सब दोषो और दुःखो को दूर करने में समर्थ हैं, पर किसी ने मुझे पूछा तक नहीं ॥१॥

और किस को कहूँ माता-पिता ने भी मुझे इस प्रकार छोड दिया जैसे कुटिल कीट (सर्प) अपनी तनु जन्यौ (शरीर से उत्पन्न) केचुली को छोड देते हैं। मैं किस पर क्रोध करूँ अथवा किसको दोष दूँ, सब कुछ मेरा ही अभाग्य है कि सब लोग मेरी छाया तक छूने में सकोच करते हैं ॥२॥

सन्तो ने मुझे दुःखी देखकर कहा कि तुम मन में सोच मत करो। तुम से भी पशु और पातकी को शरण में आया जानकर श्रीराम ने नहीं त्यागा है, निर्वाह किया ॥३॥

जब से तुलसी ने ऐसा सुना तब से प्रीति-प्रतीति-हीन होकर भी तुम्हारा बना और सुखी हूं। हे नाथ! आप के नाम की महिमा, आप का शील, अपनी भलाई जो आप के द्वारा हुई है उन सबो पर विचारकर सकोच में भी पड़ा हूँ और आश्चर्य भी करता हूँ ॥४॥

उल्लिखित पद्य का दूसरा चरण स्पष्ट बतलाता है कि गोसाईंजी के माता-पिता ने इन्हें शरीर-जनित होते हुए भी सर्प की केंचुली के समान त्याग दिया और तीसरे चरण से सिद्ध होता है कि इन्हें साधुओं ने बच्चेपन में पाला था। इस सम्बन्ध के सभी पद्यों में अपने परित्याग का वर्णन करते हुए कवि ने पहले माता शब्द का ही व्यवहार किया है। वास्तव में सन्तान के साथ पिता की अपेक्षा माता का ही स्नेह विशेष होता है। कविराज ने दर्शाया है कि पिता का परित्याग करना तो एक ओर रहा, दयामयी माता ने भी छोड़ दिया! वास्तव में अत्यन्त करुणापूर्ण घटना है!

कुछ लोग "मातु-पिता जग जाय तज्यो" इस पद से यह अनुमान करते हैं कि गोसाईंजी के बचपन में ही उनके माता-पिता स्वर्गवास कर गये थे। पर यदि ऐसी बात होती तो इसी पद्य में "सुनत सिहात सोच विधिहु गनक को" ऐसा पद गोसाईंजी कदापि नहीं लिखते। गनक शब्द से गोसाईंजी उस गणक (ज्योतिषी) को स्मरण करते हैं जिसने इन्हें अभुक्तमूल में जन्मा बतलाया था। साथ ही यह भी कहते हैं कि उसकी इस दुर्बुद्धि और निष्ठुरता पर ब्रह्मा भी शोच और आश्चर्य करते हैं। गोसाजीईं को माता-पिता ने बचपन में ही परित्याग कर दिया था, इसका पर्याप्त विश्वसनीय प्रमाण उन्हींके ग्रन्थों से ऊपर दिया जा चुका है।

गोस्वामीजी के गुरु

३—श्रीधर मुनि
४—श्रीसेनापति मुनि
५—श्रीकारि सूनि मुनि
६—श्रीसैनानाथ मुनि
७—श्रीनाथ मुनि
८—श्रीपुण्डीरक
९—श्रीराम मिश्र
१०—श्रीपारांकुश
११—श्रीयामुनाचार्य
१२—श्रीरामानुज स्वामी
१३—श्रीशठकोपाचार्य
१४—श्रीकूरेशाचार्य
१५—श्रीलोकाचार्य
१६—श्रीपराशराचार्य
१७—श्रीवाकाचार्य
१८—श्रीलोकार्य लोकाचार्य
१९—श्रीदेवाधियाचार्य
२०—श्रीशैलेशाचार्य
२१—श्रीपुरुषोत्तमाचार्य
२२—श्रीगंगाधरानन्द
२३—श्रीरामेश्वरानन्द
२४—श्रीद्वारानन्द
२५—श्रीदेवानन्द
२६—श्रीश्यामानन्द
२७—श्रीश्रुतानन्द
२८—श्रीनित्यानन्द
२९—श्रीपूर्णानन्द
३०—श्रीहर्यानन्द
३१—श्रीश्रग्यानन्द
३२—श्रीहरिवर्मानन्द
३३—श्रीराघवानन्द
३४—श्रीरामानन्द
३५—श्रीसुरसुरानन्द
३६—श्रीराघवानन्द
३७—श्रीगरीवानन्द
३८—श्रीलक्ष्मीदासजी
३९—श्रीगोपालदासजी
४०—श्रीनरहरिदासजी
४१—श्रीतुलसीदासजी

स्वामी रामानन्दजी का समय सवत् १४५० के लगभग माना जाता है। स हिसाब से नरहरिदासजी का सोलहवीं शताब्दी में होना सम्भव है।

शठकोपाचार्य के सम्बन्ध मे टिप्पणी देते हुए बाबू श्यामसुन्दरदास लखते हैं कि "रामानुज सम्प्रदाय के ग्रन्थों से स्पष्ट है कि शठकोपाचार्य ामानुज से पहले हुए हैं और यहाँ पीछे लिखा हुआ है, इसलिए यह सूची ठीक नहीं।"

इसमें कोई सन्देह नहीं कि रामानुज-सम्प्रदाय के अनुसार शठकोपाचार्य का नाम नवीं पीढ़ी में होना चाहता था। 'मुनिवाहन' शठकोपाचार्य के शिष्य थे और मुनिवाहन के शिष्य का नाम यवनाचार्य, और यवनाचार्य के शिष्य का नाम रामानुजस्वामी था। सम्भव है कि नामों के क्रम में काल पाकर कुछ परिवर्त्तन हो गया हो। तुलसीदासजी श्रीस्वामी रामानन्द के मतावलम्बी स्मार्त्त वैष्णव थे। गोसाईंजी के गुरु ये ही नरहरिदास थे।

भक्तमाल की टीका पर जो टिप्पणी दी हुई है उसमे तो सिद्ध होता है कि श्रीरामानन्द स्वामी के शिष्य श्रीअनन्तानन्दजी थे, जिनके शिष्य का नाम श्रीनरहरिदासजी था, जो गोसाईंजी के गुरु हुए, अनुमान है कि नरहरिदास ने इस बालक का नाम

रामबोला

रखा होग। कवित्त-रामायण के उत्तर काण्ड के ९४ छन्द से पता मिलता है कि तुलसीदास का पूर्व नाम, 'रामबोला' था।

'साहिब सुजान जिन स्वान हू को पक्ष कियो
रामबोला नाम हौं गुलाम राम साहि को'।

पुनश्च विनय-पत्रिका के निम्नपद से भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि हो जाती है —

'राम को गुलाम नाम रामबोला राम राख्यो
काम इहै नाम द्वय हूँ कबहुँ कहत हौं'।

ऊपर विनय-पत्रिकावाले भजन के "नाम रामबोला राम राख्यो" इस पद का अर्थ बाबू श्यामसुन्दरदासजी यह लिखते हैं कि 'रामबोला' नाम राम के द्वारा रखा गया है। परन्तु बात ऐसी नहीं है जिसका कुछ पता नहीं चले वह ईश्वर की ओर से कहा जाता है। यह एक कथन की शैली मात्र है। तुलसीदास को नहीं पता लगा कि रामबोला नाम

किसने रखा है। यही कारण है कि उन्होंने 'नाम रामबोला राम राख्यो' इस पद की रचना की है। अधिकतर सम्भव है कि यह नाम उनके गुरु ने ही रखा होगा। प्रसिद्ध टीकाकार पं० रामेश्वर भट्टजी इस भजन की टीका करते हुए इस प्रकार लिखते हैं—

"मैं राम का गुलाम हूँ और (गुरु ने) मेरा रामबोला नाम रखा है।"

जो हो, रामबोला ने गुरु की सेवा में ही रहकर विद्या पढ़ी और वहीं राम की भक्ति की शिक्षा और दीक्षा ली। जब इनकी युवा अवस्था हुई तब पता लगाने पर इनके मामा अपने घर ले गये और इनका

विवाह

दीनबन्धु पाठक की कन्या 'रत्नावली' के साथ करा दिया और कहते हैं कि इस देवी से 'तारक' नामक एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था जो बचपन में ही मर गया। प्रवाद है कि रामबोला बड़े ही स्त्रैण थे। शिशुपन की सारी शिक्षाएँ ये स्त्री के प्रेम-पाश में बद्ध होकर भूल बैठे और विषय में अनुरक्त हो गये। गोसाईंजी के अन्ध भक्तों ने इनकी, अपनी स्त्री के प्रति प्रेमासक्ति का वर्णन करते हुए इस प्रकार प्रलाप से काम लिया है कि इन्हें पूरा पागल बनाकर छोड़ा है। वर्षा-ऋतु की गंगा को तैरकर ससुराल जाना, छप्पर पर चढ़ सर्प पकड़कर आँगन में कूदना इत्यादि लिखकर इनकी महिमा को धूल में मिलाया है। क्या फाटक खोलकर जाते तो इनके ससुराल वाले लाठी मारते? पुन उसी सर्प को पकड़कर आँगन से छप्पर पर चढ़कर बाहर आये! सर्प ने काटा नहीं और नीचे गिरा भी नहीं; इत्यादि बातें आश्चर्य की हैं। अधिकतर सम्भव है कि विशेष अनुरक्ति देखकर इनकी धर्मपत्नी ने कुछ उपदेशात्मक वाक्यों के साथ कोई चुभनेवाली बात भी कह दी हो। कहा जाता है कि उनकी स्त्री ने उन्हें लज्जित करने के लिए ये दोहे कहे थे—

"काम वाम की प्रीति जग, नित नित होति पुरान।
राम प्रीति नित ही नयी, वेद पुरान प्रमान॥
लाज न लागत आपु को, दौरे आयहु साथ।
धिक-धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहहुँ मैं नाथ॥
अस्थि-चरम-मय देह मम, तामैं जैसी प्रीति।
तैसी ज्यों श्रीराम महँ, होत न तव भवभीति"॥

रत्नावली की इन अक्षर-रत्नावली ने रामबोला को अक्षर की ओर फेर उनके जीवन में पूर्व और पश्चिम सा अन्तर डाल दिया। ये वचन वास्तव में भारतवर्ष के मुख समुज्ज्वल करने के कारण हुए और रामबोला गृह त्याग कर

तुलसी

के वेश में परिवर्तित हो गये। इस प्रकार स्त्री-द्वारा अपमानित होकर गोभक्त रामबोला गोस्वामी तुलसीदास के जीवन में परिवर्तित होकर, काशी में आये और ईश्वराराधन में तत्पर हुए।

संस्कारो नान्यथा भवेत्

मनुष्य के अन्तःपट पर शिशुपन में जो संस्कार डाले जाते हैं वे अन्यथा नहीं होते। तुलसीदास सौभाग्य वशात् बचपन से ही साधु-समाज में पले थे, अतः उनके अन्तःकरण पर रामभक्ति की अमिट छाप पड़ गयी थी जो जीवनान्त तक न मिटी, अपितु उत्तरोत्तर वृद्धि पाती गयी।

इस प्रकार तुलसीदासजी कुछ दिनों तक काशी में रहकर भजन करने और कविता रचने लगे थे। उस समय हिन्दू-जाति के अन्दर साम्प्रदायिक मतभेदों की प्रबलता थी। शैवों और वैष्णवों के विरोध की कथा तो दूर रहे वैष्णवों में भी नाना प्रकार की उपसम्प्रदाएँ हो रही थीं। रामानुजीय, वल्लभीय, राधा वल्लभीय और राधा रमणी आदि सम्प्रदायवाले परस्पर वितण्डा एवं कलह मचाये हुए थे। उसी काल में गोस्वामीजी ने इन विरोधों को मिटाने की बड़ी चेष्टा की और इसमें कोई भी सन्देह

नहीं कि इस पवित्र कार्य में इन्हें सफलता भी हुई तथापि बहुतेरे हुए इनका कई प्रकार उपहास करने लगे। कोई इन्हें धूर्त, कोई नीच जाति का बतलाकर नीचा दिखलाना चाहते थे; पर वे महात्मा अपनी उद्देश्यसिद्धि में इस प्रकार पक्के थे कि मानापमान का विचार छोड़ उसीमें व्यस्त रहते और प्रायः यह छन्द पढ़ा करते थे—

धूत कहै अवधूत कहै, रजपूत कहै जोलहा कहै कोऊ।
काहुकि बेटी सो बेटा न ब्याहब, काहुकि जाति बिगार न सोऊ॥
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि कै खैवो मसीत को सोइबो न लेवे को एक न देवे को दोऊ॥

यद्यपि गोसाईंजी श्रीरामजी के अनन्य भक्त थे तथापि किसी सम्प्रदाय को भला बुरा कहने के अभ्यासी न थे, प्रत्युत् मत-मतान्तरों के फैले हुए पारस्परिक भेद-भावो के मिटाने की चिन्ता मे ही चूर रहते थे। साधारण धूर्तों एवं लम्पटों के अतिरिक्त साम्प्रदायिक प्रबल मतभेद के कारण शैवो ने इन्हें अधिक सताया, जिसका पुष्ट प्रमाण नीचे लिखे, विनय-पत्रिका के पद्य से मिलता है—

देव बड़े दाता बड़े संकर बड़े भोरे।
किये दूरि दुख सबनि के जिन्ह जिन्ह कर जोरे॥१॥
सेवा सुमिरन पूजिबो पात आपत थोरे।
दई जग जहँ लगि सम्पदा सुख गज रथ घोरे॥२॥
गाँव बसत बामदेव मैं कबहूँ न निहोरे।
अधि भौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे॥३॥
बेगि बोलि बलि बरजिय करतूति कठोरे।
तुलसी दलि रूँध्यो चहै सठ साख निहोरे॥४॥

धीरे-धीरे इनकी शान्ति और सहनशीलता का प्रभाव जन-समुदाय के ऊपर पड़ने लगा और इनके प्रति लोगों के हृदयों में श्रद्धा और भक्ति बढ़ने लगी। ठीक है—

यह रहीम सब संग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर प्रीति अभ्यास जस, होत-होत पै होय ॥

कुछ ही दिनो के अनन्तर इनकी कीर्त्ति-कौमुदी चतुर्दिक् विस्तृत हो गयी। जो कुछ इने-गिने कोक के समान कामियों तथा कट्टर प्रतिष्ठा-प्रेमियों को असह्य प्रतीत हुई, वे नाना प्रकार की दुष्टता और असभ्यता, का मार्ग अवलम्बन कर गोसाईंजी को कष्ट देने लगे।

दुष्ट लोगों के दुर्व्यवहार से तग आकर ही आप ने सतसई के सातवे सर्ग के ३६ वें दोहे में लिखा है—

माँगि मधुकरी खात जे, सोवत पाँव पसारि।
पाय प्रतिष्ठा बढ़ि परी, तुलसी बाढ़ी रारि॥

दुष्टों ने इनके साथ इतना बैर बढ़ाया कि निरुपाय होकर तुलसीदास जी को कुछ दिनो के लिए काशी छोड़ देना पड़ा और चलते समय इन्होंने लिखा कवित्त विश्वनाथजी के मन्दिर के बाहर लिखकर साट दिया आप चित्रकूट चल बसे—

देवसरि सेवौं बामदेव गाँव रावरे ही,
नाम राम ही के माँगि उदर भरत हौं।
दीवे योग तुलसी न लेत काहू को कछुक,
लिखो न भलाई भाल पोचन करत हौं॥
एते पर हूँ कोऊ जो रावरे ह्वै जोर करै,
ताको जोर देव दीन द्वारे गुदरत हौं।
पाइ कै उराहनो उराहनो न दीजै मोहि,
कालि कदा काशीनाथ काहे निवरत हौं॥

कुछ दिनों तक चित्रकूट में भ्रमण करने के उपरान्त आप श्री अयोध्या में आये और वहीं पर संवत् १६३१ में "रामचरित-मानस" की रचना आरम्भ की जिसका प्रमाण बालकाण्ड की इन चौपाइयों से मिलता है—

संवत सोलह सौ इकतीसा। करौं कथा हरि पद धरि सीसा।
नौमी भौम वार मधु मासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

'मानस रामायण' के आरम्भ में जहाँ पर गोसाईंजी ने अन्य देवताओं और सज्जनों की बन्दना की है वहाँ खलों की व्याज-निन्दा द्वारा इस बात का स्पष्ट उल्लेख कर दिया है कि दुष्ट जनो ने इनकी प्रतिष्ठा से ईर्ष्या और द्वेष रखते हुए इन्हें नाना प्रकार के कष्ट भी दिये थे परन्तु शास्त्र का सिद्धान्त है कि—

सत्यमेव जयते नानृतम्

सत्य की सर्वथा और सर्वदा जय होती है। तदनुसार ही इन्हें दुख देनेवाले दुष्टों की वही दशा हुई जैसे कवि की उक्ति में ही होनी चाहिये थी—

तुलसी निज कीरति चहहिं, पर कीरति कहँ खोय।
तिनके मुँह मसि लागि हैं, मिटहिं न मरिहैं धोय॥

यदि सूर्य के प्रकाश को सहस्रों चिमगादड़ पर फैलाकर रोक लेना चाहें तो सम्भव नहीं कि उन्हें सफलता हो। कुछ सकुचित हृदय के मनुष्यो ने इनकी कीर्त्ति-कला पर धूल डालना चाहा, जिसका परिणाम यह हुआ कि यह धूल उन्हीं के मुँह पर आ पडी और गोस्वामीजी की प्रतिष्ठा भली-भाँति सर्व साधारण के बीच फैल गयी, जिसका प्रमाण कवित्त-रामायण के उत्तरकाण्ड ७१वे छन्द के निम्नलिखित तीसरे चरण से स्पष्ट मिलता है—

राम नाम को प्रभाव पाइ महिमा प्रताप
तुलसी को जग मानियत महा मुनिसो।

इस प्रकार लब्ध प्रतिष्ठ और परम मान्य गोस्वामी तुलसीदासजी अयोध्या, चित्रकूट और काशी इत्यादि पवित्र स्थानो में भ्रमण करते हुए नाना प्रकार के उपयोगी ग्रन्थो की रचना करते रहे। हनुमानबाहुक के कतिपय छन्दों मे पता चलता है कि जीवन के अवसानकाल में गोस्वामी-जी की भुजा में पीड़ा उत्पन्न हुई जिसने इस धर्म-प्राण महाकवि के कलेवर का अन्त ही कर डाला। जो हो,

मरणान्न बिभेति धार्मिक:

महापुरुषों के अन्त क्षण पर यमदूतों का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता, ये हँसते-हँसते मृत्यु का सामना करते हैं। अन्ततः १६८० में भक्त प्रवर तुलसीदासजी ने स्वर्गलोक की यात्रा की जो निम्न पद्य से प्रकट है—

संवत सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

गोस्वामी जी

मुधा न कालः खलु यापनीयः

के अक्षरश अनुयायी थे। परमात्मा की उपासना और भक्ति-पथ का अनुसरण करते हुए भी हमारे लिए अमित अमूल्य अनुपम साहित्य भंडार भरकर चिरकाल के लिए अमरत्व में अनुलीन हो गये। शरीर त्याग-काल में महात्मा ने निम्न पद्य पढ़े थे—

राम नाम जस बरनि के, भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिये, अब ही तुलसी सौन॥

द्वितीय परिच्छेद

आख्यात नाम रचना चतुरस्र सन्धि
सद्वागलंकृति गुणं सरसं सुवृत्तम्।
आसेदुषामपिदिवं कवि पुंगवानां,
तिष्ठत्यखण्डमिह काव्यमयं शरीरम्॥

यद्यपि गोस्वामीजी का पञ्च-भौतिक-विग्रह आज हमारे नेत्रों के सम्मुख नहीं है तथापि वे अपनी पवित्र रचना और अक्षय कीर्त्ति के कारण अद्यावधि जीवित हैं और जब तक सूर्य, चन्द्रमा का प्रकाश जगतीतल पर पड़ता रहेगा तब तक वे जीवित रहेंगे। गोस्वामीजी ने अपनी कविता में मुख्यतः रामचरित की ही चरचा की है परन्तु उनकी लेखन-शक्ति ऐसी प्रौढ़ थी कि उनके ग्रन्थों में लौकिक और पारलौकिक विषयों का प्राचुर्य है। हम इस परिच्छेद में सब से पूर्व अपने पाठकों का ध्यान उनके प्रतिपादित विषयों की ओर आकर्षित करेंगे।

तुलसीदास के प्रतिपादित विषय

सूर्य के प्रकाश को उपलब्ध कर ही यह पृथिवी प्रकाशित होती है, परन्तु उसकी दैनिक और वार्षिक गतियों के कारण प्रकाश का प्रभाव कई श्रेणियों में विभक्त हो जाता है। शीतोष्ण के तारतम्य से ही भिन्न-भिन्न ऋतुओं का प्रादुर्भाव होता है। गोस्वामी तुलसीदासजी की रवि-रश्मि रचना ने भी जनता के अवनि-अन्तःकरण पर षट्-ऋतु सा प्रभाव डाला है।

वसन्त—वसन्त को ऋतुपति या ऋतुराज कहा गया है। इस ऋतु में सरिता, सरोवर, वन, उपवन, वाटिका, उद्यान, गिरि-गह्वर नगर और ग्राम सभी सोहावने हो उठते हैं। स्थान-स्थान पर खिले हुए कुसुमावली पर मदमत्त भ्रमरावली मधुर वेणि को पराग पान में रत रहती हैं। पुष्प-सौरभ से सना समीर किसे आनन्द नहीं पहुँचाता ?

गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपनी कविता में जो सर्वांश पुरुषोत्तम राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और हनुमानादि भक्तों एवं सती शिरोमणि सीता, कौशल्या, सुमित्रा, पार्वती और अनुसूयादि नारियों के आदर्श-जीवन लिखे हैं उन्हें पढ़कर जनता का हृदय वसन्त के समान लहलहा उठता है। गोस्वामीजी के कविता-कानन में पवित्र नर-नारियों के जीवन ही वसन्त हैं।

ग्रीष्म—वसन्त के अनन्तर ही जगतीतल पर ग्रीष्म का प्रादुर्भाव होता है। इस ऋतु में सारी वसुन्धरा सन्तप्त और शुष्क हो उठती है, सरित सरोवर सभी उदास हो बैठते हैं तथा पर्वतों में प्रचण्ड दाहकता आ जाती है। वसुधा के समस्त प्राणी व्याकुल हो उठते हैं। विहारी तो कहते हैं कि—

निरखि दुपहरी जेठ की, छाँहौं चाहत छाँह।

गोस्वामी तुलसीदासजी की लेखनी ने पाखण्डों के खण्डन, सज्जनों के हास-कथन और कुरीति निवारण प्रकरण में ग्रीष्म का स्वरूप धारण कर लिया है।

पावस—ग्रीष्म की समाप्ति पर पावस का प्रादुर्भूत होना ही प्रकृति-सिद्ध है। जिस प्रकार वर्षा ऋतु में सारी वसुन्धरा जलमग्न हो जाती है उसी प्रकार तुलसीदास की लेखनी ने राम-भक्ति की मूसलाधार वृष्टि से भगवद्भक्तों के हृदय-ह्रद को भरकर आप्लावित कर दिया। कवि ने स्वयं कह दिया है—

वर्षा ऋतु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास।
राम नाम वर वरण युग, सावन भादों मास॥

शरद्—इस ऋतु में शीतोष्ण का समन्वय रहता है, न तो विशेष वृष्टि ही होती और न जाड़ा अथवा गर्मी का ही प्राचुर्य रहता है। वास्तव में यह ऋतु बड़ी ही सुखदा, शान्तिप्रदायिनी और आनन्द-रूपा है। कवि-राज तुलसीदासजी की कविता में जो धर्मनीति, लोकनीति और राज-नीति का अंश है वही मानो शरद्-ऋतु है जिन्हें पढ़कर मानव-समुदाय सन्मार्ग का अवलम्बन कर सुख-भाजन बनता है।

हेमन्त—यह बड़ी दुष्ट ऋतु है। इसमें गरीबों से लेकर रईसों तक के कलेजे काँप उठते हैं। सारा प्रभाव दिखलाकर हिम अपनी अन्तगति को प्राप्त हो जाता है। गोसाईंजी की कविता में रावणादि राक्षसो के उपद्रव, राम के साथ घोर सग्राम एवं विनाशप्राप्ति की कथा ही हेमन्त ऋतु है।

शिशिर—यह ऋतु तो शरद से भी अधिक सुखदायिनी है। हेमन्त के उपद्रव शमन और वसन्तागमन की मध्यवर्त्तिनी शिशिर-ऋतु सबकी प्यारी होगी, यह स्वभाव-सिद्ध बात है।

गोसाईंजी की रचना में रामचन्द्र की विजय, अयोध्या प्रत्यावर्त्तन, अभिषेक और सुराज-व्यवस्था एवं सुशासन की कथा ही शिशिर ऋतु के समान है।

सन्धि-काल—प्रत्येक ऋतु के अन्त्य और आगामी ऋतु के आदि-काल को सन्धिकाल कहते हैं। गोस्वाईंजी ने प्रसङ्गवशात् यत्र-तत्र उल्लिखित विभागो के अतिरिक्त जितनी रचनाएँ की हैं वे भिन्न-भिन्न ऋतुओं के सन्धिकाल के समान हैं।

इन्हीं उपर्युक्त पथों से कवि-सम्राट् की कविता-सरिता गतिशीला हुई है। गोसाईंजी की लेखनी इन्हीं सप्तसन्मार्गों की अनुगामिनी रही है। इनके बनाये जिस ग्रन्थ को आप उठाइये सब के राग-स्वर एक ही पाइ-येगा। इसी घी, चीनी और आटे से गोस्वामीजी ने पूरी, कचौरी, हलवा, पूआ और विविध भाँति के अन्यान्य पक्वान्न पकाये हैं।

गोस्वामीजी के विरचित ग्रन्थ

गोस्वामीजी ने कितने ग्रन्थों की रचना की है, इस विषय में भी भिन्न-भिन्न लेखकों की सूची भिन्न-भिन्न है, किसी में मतैक्य नहीं। मेरा अनुमान है कि स्फुट काव्यों की बातें यदि छोड़ दी जायँ तो सब से प्रथम पुस्तक रामचरितमानस और अन्तिम विनय-पत्रिका ही ठहरेगी। प्रथम उन ग्रन्थों की सूची दी जाती है, जिनके तुलसीकृत होने में सभी लेखक सहमत हैं—

१—रामचरित-मानस अथवा रामायण, २—कवित्त-रामायण, ३—गीतावली, ४—दोहावली, ५—कृष्णगीतावली, ६—रामलला नहछू, ७—बरवै रामायण, ८—वैराग्यसंदीपनी, ९—पार्वतीमंगल, १०—जानकीमंगल, ११—रामशकुनावली वा प्रश्न प्रश्नावली वा रामाज्ञा और १२—विनय-पत्रिका। भक्त प्रवर प्रियादासजी ने भी भक्तमाल की टीका करते हुए उक्त बारह ग्रन्थों को ही गोस्वामीजी द्वारा विरचित माना है, जैसा निम्न पद्य से प्रगट है—

कवित्त

रामलला नहछू, त्यों विराग संदीपिनी हूँ
बरवै बनाई बिरमाई मति साईं की।
पार्वती जानकी के मंगल ललित गाय,
रम्य राम आज्ञा रची कामधेनु नाईं की॥
दोहा औ कवित्त गीत बन्धु, कृष्ण कथा कही,
रामायन विनै माह बात सब ठाईं की।
जग में सोहानी, जगदीश हूँ के मन मानी,
सन्त सुख दानी, बानी तुलसी गोसाईं की॥

निम्नलिखित ग्रन्थों को शिवसिंह सरोजकार, माननीय मिश्रबन्धु तथा अन्यान्य कई ग्रन्थकार महानुभाव गोस्वामीकृत मानते हैं और किसी ग्रन्थ

के विषय में कोई-कोई लेखक महाशय तुलसीकृत होने में असहमत हैं—

१—राम-सतसई वा तुलसी-सतसई, २—छन्दावली रामायण, ३—संकटमोचन, ४—हनुमानबाहुक, ५—रामशलाका, ६—कुण्डलिया रामायण, ७—कड़खा रामायण, ८—रोला रामायण, ९—झूलना रामायण, १०—छप्पय रामायण।

मिश्रबन्धुविनोद में निम्नलिखित ग्रन्थ भी तुलसीकृत बताये जाते हैं जो अति अप्रसिद्ध हैं। मैंने इन ग्रन्थों में से किसी को भी नहीं देखा तथा बहुतेरे ग्रन्थकारों ने तो इनके नाम भी नहीं दिये हैं—

१—अंकावली, २—पदावली रामायण, ३—तुलसीवानी, ४—कलि धर्माधर्मनिरूपण, ५—ज्ञानपरिकरण, ६—मंगल रामायण, ७—गीता-भाषा, ८—सूर्यपुराण, ९—राम मुक्तावली और १०—ज्ञान दीपिका।

मैं तो समझता हूँ कि गोसाईंजी की महिमा इसलिये महती नहीं है कि उनने बहुतेरे ग्रन्थ बनाये। इनकी कीर्त्ति-कौमुदी के विस्तार के लिए केवल रामचरित-मानस की कृति ही पर्याप्त हो सकती थी। गोसाईंजी के ऊपर बहुतेरे ग्रन्थों के कर्तृत्व का उत्तरदायित्व देना उनके साथ अन्याय करना है। रचनाबाहुल्य गोसाईंजी की सुख्याति का कारण नहीं हो सकता। मेरी धारणा है कि भूमण्डल पर यावत् रामचरित-मानस और विनय-पत्रिका का अस्तित्व रहेगा तावत् तुलसीदास और उनकी कीर्त्ति का लोप सम्भव नहीं।

आगे गोस्वामीजी द्वारा विरचित ग्रन्थों के सम्बन्ध में अति संक्षिप्त रीति से कुछ लिखा जाता है।

१—रामचरित-मानस

पूर्व लिखा जा चुका है कि गोस्वामीजी बहुत दिनों तक गोभक्त रहे। मेरी समझ में ४० वर्ष की आयु तक इनका वास्तविक युवाकाल सांसारिक विषय-वासनाओं में व्यतीत हुआ। आप जानते हैं कि हीरा

जैसा बहुमूल्य मनोहर पदार्थ—जिसे बड़े-बड़े भाग्यवान अपने मुकुट में जड़वाते हैं—कोयला जैसे कुत्सित पदार्थ से निकलता है ठीक उसी प्रकार गोभक्त रामबोला के जीवन से गोस्वामी तुलसीदासजी का आविर्भाव कोई भी आश्चर्योत्पादक नहीं कहला सकता।

जिस प्रकार एक अहोरात्र का पहला भाग 'रात्रिकाल' तो ऐसा घनघोर अन्धकारमय रहता है कि अपना हाथ भी फैलाने से स्वयं नहीं सूझता परन्तु उसीका पिछला भाग 'धाँसकाल' ठीक उसके विरुद्ध ऐसा प्रकाशमय होता है कि सात कोठरी के भीतर रखी हुई सूई सूझने लगती है, तदनुसार ही ससार में ऐसे बहुतेरे पुरुष हो गये हैं जिनके जीवन का पूर्वकाल निरा अन्धकारमय था, परन्तु साधारण से साधारण घटना ने उसे प्रचण्ड प्रकाश के रूप में परिवर्त्तित कर दिया। सूर, तुलसी एव बुद्धदेव के जीवन इसके लिए प्रज्वलित प्रमाण हैं।

रामबोला के जीवन को देखकर यह किसे भरोसा हो सकता था कि इनसे हिन्दी-भाषा और हिन्दू-जाति की आशातीत सेवा होनेवाली है। यह कौन जानता था कि इसके हृदय में आतशी शीशे की आग छिपी हुई है, जो तनिक प्रकाश पाने से जल उठेगी, क्यो न हो? समुद्र के अन्दर बड़वानल के और अत्यन्त सुशीत वसुन्धरा के उदर में ज्वालामुखी की भयाविनी ज्वाला के अस्तित्व को विरले ही जन जानते हैं।

सुतराम् इन महाकवि के हृदय रूपी मानस से पवित्र और निर्मल कविता रूपी भगवती भागीरथी का रामयश रूप मधुर जल से भरा हुआ, ऐसा नि स्रोत चला जो लोक और वेद की मर्यादा रूप दोनों कुलों की रक्षा करते, असुरो और अनाचारियो के कथानक रूप नाना प्रकार के मकरादि जलचरों को साथ लेते, समाज की विविध कुरीति रूप मार्ग की मैल और अशुद्धियों को धोते, धूर्त, दुष्ट और वञ्चकों की कुटिल नीति एव पाखण्ड के प्रबल खण्डन रूप चकोह-चक्र के साथ वेदादि सच्छास्त्रो के मनोहर उपदेशों और उपाख्यानों के वर्णन रूप नाना देश-प्रदेश पुर-ग्राम, व्रज, खेट,

खर्वट, वादी और वनोपवनों मे होते, पौराणिक उपकथानक रूप गंगोट तथा शाखा नदों को छोडते, महान पुरुषो के जीवन विषयक वर्णन और आख्यायिका रूप सहायक नदों और नदियो को लेते; अगणित जिज्ञासु रूप पथिकों को परितृप्त करते हुए; रामभक्ति रूप अथाह अमृत-समुद्र में पहुँचकर, आनन्द का लहरो में विश्राम पा गया। रामचरित-मानस वास्तव मे तुलसी-मानस है। इसमें सचमुच गोसाईंजी ने अपना अन्त.-करण निकालकर रख दिया है। भारतरत्न साहित्याचार्य पं० अम्बिका दत्तजी व्यास (स्वर्गवासी) ने इनकी रामायण के विषय मे इस प्रकार लिखा है।

डगर-डगर अरु नगर-नगर माँहीं,
कहनि पसारी रामचरित अवलिकी।
कहै कवि 'अम्बादत्त' राम ही की लीलन सों
भरि दीनी भीर सबै चहलि पहलि की॥
सूद्रन ते ब्राह्मन लों मूरख ते पण्डित लों,
रसना डुलाई सबै जै जै बलि बलि की।
भ्रम को भगाय पापपुंज को नसाय आज,
तुलसी गुसाईं नाक काट लीनी कलि की॥

वास्तव में रामचरित-मानस की ऐसी उत्कृष्ट रचना हुई है कि इसकी कुछ गिनी-गिनी पंक्तियो के अतिरिक्त शेष पंक्तियो के एक-एक अक्षर का मूल्य ऐहिक और पारलौकिक शिक्षा के विचार मे एक-एक मोती से कम नहीं जँचता। रामचरित-मानस एक महाकाव्य है, जिसमें साहित्यदर्पणकार द्वारा कथित महाकाव्य के प्राय सभी लक्षण सङ्घठित होते हैं।

पहला लक्षण—जो सर्ग-बन्ध युक्त हो वह महाकाव्य है। गोसाईं तुलसीदासजी ने 'रामचरित-मानस' को सप्तकाण्ड में बद्ध किया है, अत वह महाकाव्य है।

दूसरा लक्षण—काव्य का नायक क्षत्रिय सद्वंशोद्भव देवत्वसम्पन्न

धीरोदात्त हो। गोसाईंजी के चरितनायक मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र उपर्युक्त समस्त शुभ लक्षणों से युक्त थे, इस कारण भी रामचरित-मानस' महाकाव्य कहलाने का उपयुक्त अधिकारी है।

तीसरा लक्षण—श्रृङ्गार, वीर और शान्त इन रसो में से कोई रस अङ्गीकृत होना चाहिये, अन्य रस भी गौण रूप से आये हो। यद्यपि 'राम-चरित-मानस' मे प्राय नवो रसा का समुपयुक्त समावेश है, तथापि शान्त रस प्रधान होने के कारण भी वह महाकाव्य है।

चौथा लक्षण—महाकाव्य में या तो कोई ऐतिहासिक वृत्त हो अथवा किसी सज्जन का वर्णन हो। ये दोनो लक्षण 'रामचरित-मानस' में संघटित होते हैं, अत. वह महाकाव्य है।

पाँचवाँ लक्षण—महाकाव्य के आरम्भ में या तो नमस्कार या आशीर्वाद अथवा किसी वस्तु का निर्देश हो। 'रामचरित-मानस' को तुलसीदासजी ने 'वर्णानामर्थसंघानां' इस नमस्कार वाक्य से प्रारम्भ किया है, वह स्वत महाकाव्य है।

छठा लक्षण—महाकाव्य में कहीं-कहीं दुष्टो की निन्दा और सज्जनो का गुण-कीर्तन भी हो। तुलसीदासजी इस अश में भी एक सिद्धहस्त कवि थे। आप सामान्यत समस्त 'रामचरित-मानस' में और विशेष रूप से बालकाण्ड के प्रारम्भ में एक प्रकरण ही इसका पावेगे। इस कारण भी यह सद्ग्रन्थ महाकाव्य का अधिकारी है।

सातवाँ लक्षण—महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द होना चाहिये और सर्ग के अन्त में छन्द बदलना होता है। तुलसीदासजी ने इस नियम को आद्योपान्त निबाहा। प्रत्येक काण्ड में चौपाइयों और दोहो की प्रधानता रखते हुए अन्त में 'हरिगीतिका' छन्द अवश्य देते गये हैं। इस लक्षण से सुसम्पन्न 'रामचरित-मानस' निश्चय ही महाकाव्य है।

आठवाँ लक्षण—महाकाव्य में न बहुत छोटे और न बहुत बड़े ८ से अधिक सर्ग होने चाहिये। गोसाईंजी ने अपने 'रामचरित-मानस'

को सप्त काण्डों में विभक्त किया है। यदि महाकवि वाल्मीकि की नाईं प्रत्येक काण्ड को सर्गों में भी विभक्त करते जाते तो निस्सन्देह शतश. सर्ग होते, जो महाकाव्य कहलाने के लिए पर्याप्त थे।

नवाँ लक्षण—महाकाव्य में कोई सर्ग ऐसा भी होना चाहिये, जिसमें अनेक छन्द हों। 'रामचरित-मानस' के अरण्यकाण्ड में कविराज ने भुजङ्ग प्रयात, त्रोटक, नाराच और हरिगीतिकादि छन्द देकर इस मन्तव्य की रक्षा की है।

दसवाँ लक्षण—महाकाव्य के सर्ग के अन्त में अगले सर्ग की कथा की सूचना गुप्त रीति से होनी चाहिये। इसका प्रतिपालन भलीभाँति कविराज ने किया है।

ग्यारहवाँ लक्षण—महाकाव्य में संध्याकाल, उषःकाल, सूर्योदय, सूर्यास्त, गोधूलि, चन्द्रोदय, रजनी, प्रात.काल, मध्याह्न, आखेट, पर्वत, वन, ऋतु, समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, पुर, अध्वर, रणप्रस्थान, रणप्रत्यावर्तन, मन्त्र और पुत्र-जन्मोत्सव आदि का वर्णन भी होना चाहिये। इस सिद्धान्त का प्रतिपालन कविवर तुलसीदासजी ने पूर्ण रीति से किया है। अतः उनका 'रामचरित-मानस' महाकाव्य है, इसमें सन्देह नहीं।

बारहवाँ लक्षण—महाकाव्य में प्रतिसर्ग में काव्यनायक का निर्देश और सर्ग में वर्णन किये विषय के अनुकूल ही सर्ग का नाम होना चाहिये। गोसाईं तुलसीदासजी ने अपने काण्डो के नाम तदनुकूल ही रखे हैं, जिनसे काव्यनायक का निर्देश भी प्रगट है।

इन उल्लिखित द्वादश लक्षणों से समलंकृत 'रामचरित-मानस' निश्चय ही महाकाव्य है। 'काव्यानुशासन' में भी महाकाव्य के ये ही लक्षण निगदित हैं। केवल एक लक्षण अधिक लिखा गया है। वह यह कि महाकाव्य संक्षिप्त नहीं होना चाहिये, चित्रकाव्य से अलंकृत और सरल होना चाहिये। इन सब लक्षणो के अनुसार 'रामचरित-मानस में कसर यही रही कि तुलसीदासजी ने चित्रकाव्य की रचना नहीं की है। परन्तु महा-

काव्य कहलाने के लिए यह नियम कोई प्रधानता नहीं रखता। फलत तुलसीदासजी एक महाकवि और उनका 'रामचरित-मानस' एक महाकाव्य है।

'रामचरित-मानस' लौकिक शिक्षा का भी भण्डार है। माता-पिता की आज्ञा का प्रतिपालन, भाई-भाई का स्नेह, दाम्पत्य प्रेम, राजा-प्रजा का सम्बन्ध, मैत्री का व्यवहार, नि स्वार्थ सेवा, दुष्ट-दल-दलन, साधु परित्राण, पतितोद्धारण और अतिथिसत्कार इत्यादि बातों का जैसा दिव्य और लोकोत्तर चित्र-चित्रण गोस्वामीजी ने इस महाकाव्य में किया है, वैसा कोई भी हिन्दी-भाषा का अन्य कवि नहीं कर सका। संस्कृत साहित्य में भी केवल वाल्मीकिरचित रामायण इसकी समकक्षा का कहा जा सकता है, अथवा कई विचार-दृष्टि से देखने पर हम वाल्मीकि की रचना को तुलसीकृत की अपेक्षा उच्च स्थान प्रदान कर सकते हैं। हिन्दी-भाषा में तो साहित्य, गुण, अलङ्कार, रस, भाव और छन्दरचना की दृष्टि से 'रामचरित-मानस' के टक्कर का दूसरा ग्रन्थ ही नहीं दीखता। गोस्वामीजी की रचना के सम्मुख सूर, विहारी, केशव और मतिराम की कौन कहे कविकुल-कुमुद-कलाप-कलाधर कालिदास की रचना भी नतग्रीव हो जाती है। हमने स्वरचित 'तुलसी साहित्य रत्नाकर' में 'कवित्व और तुलसीदास' शीर्षक देकर तुलनात्मक समालोचना करते हुए गोस्वामीजी की रचना की विशेषताओं पर विशेष प्रकाश डाला है। आशा है कि सहृदय और साहित्यप्रेमी पाठक उक्त ग्रन्थ को साद्यन्त अवलोकन करने की कृपा करेंगे।

२—कवितावली

इस ग्रन्थ को कवित्तरामायण भी कहते हैं। यह 'रामचरित-मानस' की भाँति क्रमबद्ध सात काण्डों में समाप्त हुआ है। कथाएँ भी प्राय वे ही हैं, परन्तु ग्रन्थ रामायण की अपेक्षा लघुकाय है। इसमें सवैया, कवित्त,

घनाक्षरी, छप्पय और झूलना छन्दो के प्रयोग किये गये हैं। इस ग्रन्थ का भी 'उत्तरकाण्ड' रामायण की भाँति ही मिश्रित विषयो से परिपूर्ण है। इस काण्ड के विषय-वर्णन में कोई क्रम नहीं मिलता और न इसकी रचना ही क्रमवद्ध हुई है। स्फुट काव्य की भाँति इसके छन्द समय-समय पर बने हैं। कई छन्द तो 'समस्यापूर्ति' से प्रतीत होते हैं। सम्भव है कि गोस्वामीजी के स्वर्गवास के अनन्तर उन स्फुट काव्यों के सग्रह को ग्रन्थ का स्वरूप प्राप्त हुआ हो।

नमूने के तौर पर एक पद्य नीचे दिया जाता है।

सवैया

अवधेश के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हों सोच विमोचन को, ठगि सी रही जो न ठगेधिक से॥
तुलसी मनरञ्जन रञ्जित अञ्जन नयन सुखञ्जन-जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै, नवनील सरोरुह से विकसे॥

२—गीतावली

यह ग्रन्थ विविध भाँति की राग-रागिनियों के साथ नाना प्रकार के गीतों में लिखा गया है। ग्रन्थ का विषय वही 'रामकथा' है। इस ग्रन्थ के लिखने में भी गोस्वामीजी ने पाण्डित्य-प्रदर्शन किया है। इसमें अन्यान्य अलङ्कारों के सामान्य प्रयोग करते हुए महाकवि ने उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा की बहुलता से अद्भुत चमत्कार दिखलाया है। यह ग्रन्थ क्रम से लिखा गया है। एक छन्द का दूसरे छन्द से मेल है। कथा-प्रसङ्ग रामायण से मिलताजुलता है। कविता बड़ी ही सरस और मधुर है। इस काव्य में व्रज के कवियों और कृष्ण-लीला का बहुत कुछ अनुकरण किया गया है। इसमें भी सात काण्ड हैं। गीतावली और विनय-पत्रिका को गोसाईंजी ने नाना प्रकार की राग-रागनियो से युक्तकर भक्तो और साहित्यप्रेमियों के

अतिरिक्त सङ्गीत के अनुरागियो के लिए भी शुद्ध सुधारस का पान कराया है। उदाहरणार्थ—

झूलत राम पालने सोहैं। भूरि-भाग जननी जन जोहैं॥
तनु मृदु मंजुल मेचकताई। झलकति वाल विभूपन झांई॥
अधर पानि पद लोहित लोने। सर-सिँगार-भव सारस सोने॥
किलकत निरखि विलोल खिलौना। मनहुँ विनोद लरत छवि छौना॥
रञ्जित अञ्जन कञ्ज-विलोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन॥
लस मसि-विन्दु वदन-विधु नीको। चितवत चितचकोर तुलसी को॥

४—दोहावली

यह ग्रन्थ ५७३ पद्यो का सग्रह मात्र है। दोहे और सोरठे दो ही प्रकार के छन्दो से ग्रन्थ परिपूर्ण है। दोहो की संख्या की बहुलता के कारण ही ग्रन्थ का नाम 'दोहावली' पड़ा है। इस सग्रहीत ग्रन्थ में लगभग आधे पद्य तुलसीकृत रामचरित-मानस, तुलसी-सतसई, रामाज्ञा और वैराग्यसंदीपनी आदि ग्रन्थों के हैं। परिशेषाद् स्फुट काव्य की भाँति समय-समय के निर्मित प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि ग्रन्थ का कोई समुचित विपय-विभाग वा क्रम नहीं है। राम-नाम-महात्म्य, तत्वज्ञान, राजनीति, धर्म्म नीति और परम्परया कलियुग का वर्णन किया गया है। जान पडता है कि गोसाईं जी के देहावसान के पश्चात् किसी ने एकत्रित कर 'दोहावली' नाम से प्रख्यात कर दिया है। कुछ दोहे बे-प्रसङ्ग भी सग्रहीत हो गये हैं। अधिकाश पद्यों के पढ़ने से गोसाईंजी की ईश्वर-भक्ति, राजनीतिज्ञता, सासारिक विवेक और धर्म्मपरायणता का पता चलता है।

चातक की अन्योक्ति का अधिकाश सतसई से लिया गया है। यह समस्त प्रकरण ही भगवद् भक्ति और राम-प्रेम की चरमसीमा से समाविष्ट और सन्निहित है।

५—कृष्ण-गीतावली

समय और स्थान का प्रभाव भी अनिवार्य्य है। चाहे कैसा ही सुदृढ़ विचार का मनुष्य हो, उस पर देश-काल का प्रभाव कुछ न कुछ अवश्यमेव पड़ता ही है। श्रीअयोध्यापुरी में जाकर आप देखें तो प्रतीत होगा कि आज लक्षावधि वत्सर व्यतीत होने पर भी चतुर्दिक सीता-राम का किसी न किसी रूप में प्रभाव विद्यमान है, तदनुसार ही सहस्रों वर्ष बीत जाने पर भी ब्रजमण्डल में राधा-कृष्ण एवं नन्द-यशोदा के नाम आबाल-वृद्ध-वनिता सब की रसना पर रमण कर रहे हैं। कालिन्दी का कल-कल निनाद, करील के कुञ्ज और गोपुञ्ज आज भी वृन्दावन विहारी की सुधि दिला रहे हैं। यह वही प्रभावशालिनी ब्रजभूमि है, जहाँ जाकर अनन्य रामोपासक गोस्वामी तुलसीदासजी को 'कृष्ण-गीतावली' लिखने की धुन लग गयी। बस क्या था, उनके सिर पर सूरदास का 'सूरसागर' सवार हो गया। यह ग्रन्थ ब्रजभाषा विभूषित और सुपाठ्य है। इसमें ६१ पदों में श्रीकृष्ण-चरित्र का वर्णन किया गया है। पुस्तक में कोई क्रम-विशेष तो पाया नहीं जाता। प्रतीत होता है कि व्रज में विचरण करते हुए गोसाईंजी ने समय-समय पर आनन्द में मग्न होकर अपने हृदय के उद्गार प्रकट किये हैं। कृष्ण-लीला री नहीं है। पूर्व में श्रीकृष्ण का वालचरित्र पुनः गोपिको-पालम्भ, उलूखल से बँधना, इन्द्र-प्रकोप, गोवर्धन गिरि-धारण, सौन्दर्य्य-वर्णन, गोपिका-प्रीति, मथुरा-प्रस्थान, गोपी-विलाप, उद्धव-संवाद, भ्रमर-गीत और अन्त में द्रौपदी-चीर-प्रवर्द्धन की कथाएँ ठीक उसी शैली से लिखी गयी हैं, जैसी कृष्णलीला के लेखक कवियों ने लिखी हैं। पद्यों की रचना सरल सुगम्य और सरस है। कई आलोचकों का मत है कि कृष्ण गीतावली के कई पद्य ज्यों के त्यों अथवा कई किञ्चित परिवर्तन के साथ सूरदास-निर्मित 'सूरसागर' से ले लिये गये हैं।

गोसाईंजी एक सिद्ध-हस्त और उद्भट प्रकृत्या सुकवि थे, उनके

सम्बन्ध में ऐसा तो मानने का जी ही नहीं चाहता कि उन्होंने सूर के पद का दुरुपहरण किया हो। अधिकतर विश्वास है कि गुसाईं-रचित पदों के संग्रहीता महाशय ने कुछ पदावली इनके नाम से अनजान पर दी हो। 'कृष्ण-गीतावली' की रचना में एक पद उद्धृत किया जाता है—

जब ते ब्रज तजि गये कन्हाई।
तब ते बिरह-रबि उदित एक रस सखि बिछुरनि बृष पाई॥
घटत न तेज, चलत नाहिन रथ, रह्यो उर नभ पर छाई।
इन्द्रिय रूप रासि सोचहिं सुठि सुधि सबकी बिसराई॥
भयो सोक-भय कोक-कोकनद, भ्रम भ्रमरनि सुखदाई।
चित-चकोर-मनमोर, कुमुद-मुद सकल बिकल अधिकाई॥
तनु-तड़ाग बल-बारि सूखन लाग्यो, परी कुरूपता-काई।
प्रान-मीन दिन दीन दूबरे, दसा दुसह अब आई॥
तुलसीदास मनोरथ-मन-मृग, मरत जहाँ तहँ धाई।
राम स्याम सावन भादों बिनु, जिय की जरनि न जाई॥

६—रामलला-नहछू

गोस्वामीजी का यह प्रण था कि रामयशोगान के अतिरिक्त किसी प्राकृतिक पुरुष के सम्बन्ध की कविता करने में सरस्वती का दुरुपयोग एवं अपमान करना है। यही कारण है कि भगवच्चरित्र चर्चा के अतिरिक्त आपने अपनी लेखनी से किसी लौकिक पुरुष की जीवनी नहीं लिखी।

'रामलला-नहछू' यह ग्रन्थ अत्यन्त छोटा है। इसमें समस्त २० पद्य हैं। छन्द का नाम 'सोहर' है। यह छन्द प्रायः स्त्रियाँ गाया करती हैं। भारतवर्ष के पूर्वीय प्रान्तों में अवध से लेकर बिहार प्रान्त तक की स्त्रियाँ पुत्र-जन्मोत्सवादि मङ्गलकार्य्य में सोहर गाया करती हैं। यों तो राम की भक्ति के वशीभूत होकर तुलसीदासजी ने समस्त ग्रन्थों की रचना की ही है, परन्तु 'रामलला-नहछू' विशेषकर इस अभिप्राय को लेकर निर्माण

किया गया प्रतीत होता है कि हमारे देश की स्त्रियाँ गन्दे सोहरो या गानों के स्थान में इसी का गान करें। परन्तु नहछू की रचना में गोसाईंजी भी परम्परा-प्रवाह में बहकर गाली बकवाने लगे हैं। लोहारिन, अहीरिन, तम्बोलिन, दरजिन, मोचिन, मालिन, बारिन और नाउन तक से आपने मजाक तो किया ही है, श्री कौशल्या माता तक की हँसी कराने में भी बाज नहीं आये। सामयिक भेड़धसान इसी का नाम है—

काहे राम जी साँवर लछमन गोर हो।
कीदहुँ रानि कौशिलहिं परिगा भोर हो॥
राम अहहिं दशरथ के, लछिमन आनक हो।
भरत शत्रुहन भाइ तौ, श्री रघुनाथ क हो॥

७—बरवै रामायण

बरवा छन्द में रामायण की कथा लिखने के कारण ही ग्रन्थ का नाम 'बरवै रामायण' प्रख्यात हुआ है। इसमें सप्तकाण्ड हैं—

(१) बालकाण्ड में राम जानकी-छवि वर्णन, धनुर्भङ्ग और विवाह की कथा लिखी है। यथा—

गरब करहु रघुनन्दन जनि मन माँह।
देखहु आपनि मूरति सिय के छाँह॥
उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन।
सिय रघुबर के भये उनींदे नैन॥

(२) अयोध्याकाण्ड में कुल ८ पद्य हैं राम वनगमन, निषाद-कथा, और बाल्मीकि-प्रसंग लिखा गया है। (३) अरण्यकाण्ड में ६ छन्दो मे सूर्पनखा-प्रसङ्ग, कञ्चनमृग-बधादि लिखा है। (४) किष्किन्धाकाण्ड में दो पद्य हैं जिनमें राम-हनुमान-वार्तालाप मात्र है (५) सुन्दरकाण्ड के छ पद्यों में हनुमान-सीता-संवाद, पुन. हनुमान-राम-सवाद है। (६) लङ्का-काण्ड में केवल एक पद्य है। (७) उत्तरकाण्ड में २७ छन्द हैं। इनमें चित्रकूट माहात्म्य और राम-नाम-महिमा वर्णित है।

८—वैराग्यसंदीपनी

इस ग्रन्थ में दोहा, चौपाई और सोरठा ये ही तीन छन्द हैं। सन्त-स्वभाव-वर्णन, सन्त-महिमा-वर्णन और शान्तिवर्णन येही तीन विभाग हैं। समस्त ६२ पद्यों में ग्रन्थ पूर्ण हुआ है। नमूना नीचे दिया जाता है—

रैनि को भूषन इन्दु है, दिवस को भूषन भान।
दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ज्ञान॥
ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग।
त्याग को भूषन शान्तिपद, तुलसी अमल अदाग॥

दोहों में मात्रा की अधिकता है। तुलसी रचित प्रतीत नहीं होते।

९—पार्वतीमंगल

इस ग्रन्थ में शिव-पार्वती का विवाह-वर्णन है। पुस्तक में समस्त १६४ छन्द हैं जिनमें १४८ सोहर और १६ हरि गीतिका हैं। ग्रन्थकार ने ग्रन्थनिर्माणकाल इस प्रकार दिया है—

'जय संवत् फागुन सुदि पाँचै गुरु दिनु।
अस्विनी विरचेउ मंगल सुनि सुख छिनु छिनु'॥

अर्थात् अश्विनी नक्षत्र फाल्गुन शुक्ल पाँच बृहस्पतिवार को जय संवत् में यह ग्रन्थ रचा गया। महामहोपाध्याय प० सुधाकर द्विवेदीजी के गणनानुसार संवत् १६४३ में जय सवत् था। ग्रन्थ की वाक्यरचना बड़ी उत्कृष्ट, भाषा ललित और शब्द सगठित हैं। पूरक शब्दों वा पदों का अभाव सा है। नमूने के पद्य अध पंक्तियों में दिये जाते हैं—

दुलहिनि उमा ईस बर साधक ए मुनि।
बनिहिं अवसि यह काज गगन भइ अस धुनि॥
भयेउ अकनि आनन्द महेस मुनीसन्ह।
देहिं सुलोचनि सगुन कलस लिये सीसन्ह॥

सिवसों कहे दिन ठाँव बहोरि मिलनु जहँ।
चले मुदित मुनिराज गये गिरिवर पहँ॥
गिरि गेह गे अति नेह आदर पूजि पहुनाई करी।
घर बात घरनि समेत कन्या आनि सब आगे धरी॥
सुख पाइ बात चलाइ सुदिन सोधाइ गिरिहिं सिखाइ कै।
ऋषि साथ प्रातहिं चले प्रमुदित ललित लगन लिखाइ कै॥

१०—जानकी-मंगल

सीताराम के अनन्य भक्त गोस्वामी तुलसीदासजी केवल पार्वती-मंगल लिखकर मौन रह जायँ, यह मानने की बात नहीं, उनकी लेखनी ने 'जानकी-मंगल' लिखकर ही विश्राम लिया। कविराज की लेखन-शक्ति ऐसी अद्भुत थी कि एक ही विषय को विविध छन्दों एवं भावो में विभूषित किया है। इस ग्रन्थ में सीता और राम के विवाह का वर्णन किया गया है। समस्त छन्दों की संख्या २१६ है जिनमें २४ हरिगीतिका और शेष सोहर हैं। कथा रामचरित-मानस की ही है। कहीं-कहीं कुछ-कुछ भेद करते गये हैं। इसमें रामायण की भाँति जनक-पुष्प-वाटिका में सीताराम का संदर्शन न लिखकर यज्ञशाला में ही इस प्रकार पारस्परिक साक्षात् कराया है—

राम दीख जब सीय, सीय रघुनायक।
दोउ तन तकि-तकि मयन सुधारत सायक॥
प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहिं।
जनु हिरदै गुन-ग्राम थूनि थिर रोपहिं॥

इसी प्रकार और भी कई कथाओं में थोड़ा-थोड़ा भेद है।

११—रामाज्ञा

इसी ग्रन्थ को 'रामशकुनावली, और 'भुवप्रश्नावली' नामों से भी प्रख्यात पाते हैं। पुस्तक का विषय 'रामाज्ञा' नाम से उतना विस्पष्ट

नहीं होता, जितना कि उक्त नामों से व्यंजित होता है। गोसाईंजी ने शकुनविचार के उद्देश से इस ग्रंथ को लिखा था। इसके दोहों में बराबर शकुन का ही विचार किया गया है। ग्रंथ के अन्त में शकुन विचारने की विधि भी दी है। यथा—

सुदिन साँझ पोथी नेवति, पूजि प्रभात सप्रेम।
सगुन विचारब चारुमति, सादर सत्य सनेम॥
मुनि गनि दिन गनि धातु गनि, दोहा देखि विचारि।
देस करम करता वचन, सगुन समय अनुहारि॥

१२—हनुमानबाहुक

प्रायः लोग कहा करते हैं कि गोसाईं तुलसीदासजी रचित अन्तिम ग्रंथ 'विनय-पत्रिका' है पर वास्तव में उससे भी अन्त में हनुमानबाहुक की रचना प्रतीत होती है। इस ग्रंथ की रचना कवितावली के अन्त्य भाग से सम्बद्ध होकर प्रारम्भ होती है। जिस समय काशी में संवत् १६७३ के लगभग प्लेग का प्रकोप था उसी समय डाक्टर ग्रियर्सन के लेखानुसार सिद्ध होता है कि गोस्वामीजी पर भी प्लेग देव का आक्रमण हुआ था और इसी वेदना से समवेदित होकर गोस्वामीजी ने 'हनुमानबाहुक' की रचना की थी।

इस ग्रंथ के प्रायः सभी छन्द पीड़ा निवारण के सम्बन्ध में ही लिखे गये हैं जैसे—

पायँ पीर पेट पीर बाँह पीर मुख पीर,
जरजर सकल शरीर पीर मई है।
देव भूत पितर करम खल काल ग्रह,
मोहि पर दवरि दमानक सी दई है॥
हौं तो बिन मोल ही बिकानो बलि बारेहि ते,
ओट राम नाम की ललाट लिखि लई है।

कुम्भज के किंकर विकल बूड़े गोखुरनि,
हाय राम-राम ऐसी नहिं कहुँ भई है ॥

१३—तुलसी-सतसई

इस ग्रंथ के सम्बन्ध में विस्तार के साथ तृतीय परिच्छेद में विचार किया गया है।

१४—विनय-पत्रिका

कतिपय लेखकों के मतानुसार यह ग्रंथ गोस्वामी तुलसीदासजी का अन्तिम है। जब मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्रजी की महिमा और विरदावली को कवि-सम्राट् ने स्वरचित विविध ग्रंथों में विविध प्रकार से गान किया, तिस पर भी अन्तःकरण में शान्ति की उपलब्धि नहीं हुई, तब इनके हृदय-हृद की गंगोत्री से विनय-पत्रिकारूप गंगा का अव्याहत गति से अबाध्य निःश्रोत चला जो करोड़ों भक्तों और भगवच्चरित्र-प्रेमियों के हृदय को पवित्र करता हुआ राम-भक्ति के अगाध समुद्र में विराम पा गया।

गोस्वामीजी के शुद्धान्तःकरण में इस बात की मुहर हो गयी कि अब उन्हें किसी काव्यविशेष के निर्माण की आवश्यकता न रही। विनय-पत्रिका का अन्तिम भजन कविराज के हृदयोद्गार का सजीव साक्षी है—

मारुति मन रुचि भरत की, लखि लखन कही है।
कलि कालहुँ नाथ नाम सो, प्रतीति प्रीति एक किंकर
की निबही है।
सकल सभा सुनिले उठी, जानी रीति रही है।
कृपा गरीबनिवाज की, देखत गरीब को साहब बाँह गही है।
बिहँसि राम कह्यो सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ सही है॥

जब उनके मानस में यह निश्चय हो गया कि राम ने उनकी विनय-पत्रिका स्वीकार कर ली तब कविवर ने अपनी लेखनी को विश्राम दे दिया। गोस्वामी तुलसीदासजी केवल साहित्यशास्त्र के ही कविराज न थे, प्रत्युत् अन्तिम गति प्राप्त आध्यात्मिक कुरोग के भी कविराज थे। विनय-पत्रिका एक अद्भुत ग्रंथ है। इसके लिखने में कवि-सम्राट् लेखनी तोड़ बैठे हैं। अपनी अद्भुत काव्यशक्ति और अप्रतिम प्रतिभा का अद्वितीय परिचय प्रदर्शित किया है। भक्ति-रस का सरस प्रवाह, सांसारिक शिक्षाओं का अद्भुत, अथाह और वर्णन-वैचित्र्य का अद्वितीय अवगाह आप इसी पीयूषप्रवाहिणी जाह्नवी में पावेंगे। यह ग्रंथ मानवीय अन्तःकरण का एक सादा और सच्चा चित्र है। मनुष्य को असत्पथ से हटा कर भगवच्चरण में अनुरक्त करनेवाला और साहित्यिक दृष्टि से भी उच्च पदप्राप्ति का अधिकारी है। यदि गोस्वामी तुलसीदासजी अन्य किसी ग्रन्थ की रचना न भी करते तो भी रामचरित-मानस और विनय-पत्रिका ही उनके यश-सौरभ के प्रसारणार्थ पर्याप्त समझी जा सकती थीं। सद्धर्म-निरूपण, सच्छिक्षा, धर्मप्रेम, सत्यता, सरलता, सहनशीलता, धीरता, वीरता, उदारता, दयालुता और भक्ति-प्रेम परायणता का जैसा चित्रण कविवर ने इन दो ग्रंथों में किया है वैसा संसार के अन्य किसी भी कवि के ग्रंथ में स्यात् ही कहीं पाया जाय। विनय-पत्रिका में कुल २७९ भजन हैं।

अन्यान्य ग्रन्थ

गोस्वामीजी-विरचित जितने ग्रंथ बतलाये जाते हैं उनकी सूची इसी परिच्छेद के प्रारम्भ में दी गयी है। इनके मुख्य-मुख्य ग्रंथों के विषयोल्लेख किये जा चुके। शेष कई ग्रंथ अल्पप्रसिद्ध, कई अप्राप्य अथच कई अमुद्रित हैं। कई ग्रंथों के तुलसीकृत होने में भी पूर्ण सन्देह है। इन कारणों से उन ग्रंथों की विशेष चर्चा नहीं की गयी।

तृतीय परिच्छेद

'कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कर हित होई'

वास्तव में कविता वही सराहनीय है जिससे सभी श्रेणी के मनुष्य यथा-योग्य लाभ उठा सकें। हमारे चरित-नायक कविता-तामरस-तमारि-तुलसी दासजी ऐसे ही उच्च श्रेणी के महाकवि थे जिनकी लेखनी ने समस्त जन-समूह को अकथनीय आनन्द पहुँचाया है। गोस्वामीजी की रचना उनके लिए तो स्वान्तः सुख का कारण बनी परन्तु जगत का भी उसने गंगा के समान हित-साधन किया। आप उनके सभी ग्रन्थो से बहुमूल्य शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। मेरी धारणा है कि साहित्यदृष्टि अथवा उत्कृष्टता और उपादेयता के विचार से भी 'रामचरित-मानस,' 'विनय-पत्रिका' और 'गीतावली' के बाद

तुलसी-सतसई

का ही नम्बर है इस ग्रन्थ का दूसरा नाम रामसतसई है। मिरजापुर निवासी प्रसिद्ध रामायणी प० रामगुलाम द्विवेदीजी ने इस ग्रन्थ को तुलसीकृत ग्रन्थों की सूची में नहीं दिया है। महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदीजी ने तो सिद्ध किया है कि यह ग्रन्थ 'तुलसी' नामक किसी कायस्थ कवि का बनाया हुआ है। परन्तु मेरा विचार निम्नकारणों से द्विवेदीजी के विरुद्ध है—

(१) इस सतसई में १०० से अधिक दोहे, ऐसे पाये जाते हैं जो दोहावली में भी मिलते हैं, ऐसी दशा में यदि इस सतसई

को कायस्थ तुलसी का बनाया मान लें तो उसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि कायस्थजी ने गोस्वामीजी रचित दोहावली से उन सैकड़ों दोहों का अपहरण कर लिया है अथवा गोसाईंजी ने ही कायस्थरचित सतसई पर डाके डाले हैं। परन्तु इन दोनों बातों में से एक भी मन में नहीं जँचतीं।

(२) तुलसी-सतसई की रचना दुन्दुभी देकर सिद्ध कर रही है कि वह गोस्वामीजी की लेखनी द्वारा लिखी गयी है।

(३) हम पीछे 'दोहावली' के प्रसङ्ग में लिख आये हैं कि इसमें आधे से अधिक पद्य रामचरित-मानस और "तुलसी-सतसई" के पाये जाते हैं। मिश्रबन्धुविनोद में कायस्थ तुलसी का भी कविता-काल लगभग संवत् १६८० के पूर्व ही लिखा गया है। उक्त ग्रन्थ में लिखा है कि इस कवि ने 'बाह-सर्वाङ्ग', 'बृहस्पतिकाण्ड', 'दोहावली', 'भगवद्‌गीता-भाषा' और 'ज्ञानदीपिका' ये पाँच ग्रन्थ बनाये हैं। मिश्रबन्धु के इस लेख से 'दोहा-वली' के सम्बन्ध में किये गये हमारे अनुमान पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है, अब बात इस प्रकार स्पष्ट हुई कि कायस्थ तुलसीदास ने कुछ दोहों की रचना करके उस ग्रन्थ का नाम 'दोहावली रखा। काल पाकर दोनों तुलसी कवियों का भेद जाता रहा और किसी संग्रहीता ने कायस्थ तुलसी-दास रचित दोहावली में गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा निर्मित रामचरित-मानस और तुलसी-सतसई के बहुतेरे पद्यों को भी संग्रह कर गोस्वामी-रचित प्रख्यात कर दिया।

(४) तुलसी-सतसई का निर्माण-काल सतसई के निम्न दोहे में इस प्रकार दिया हुआ है—

अहि रसना थनधेनु रस, गणपति द्विज गुरुवार।
माधव सित सिय जनम तिथि, सतसैया अवतार॥

अर्थात् यह ग्रन्थ वैशाख कृष्ण ९ संवत् १६४२ में निर्मित हुआ। मिश्रबन्धुविनोद के लेखानुसार कायस्थ तुलसी का कविताकाल लगभग

सं० १६८० लिखा हुआ है परन्तु सतसई की रचना संवत् १६४२ में हुई। यदि महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदीजी के मतानुसार तुलसी-सतसई को हम कायस्थजी का बनाया मान ले तो उसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि कम से कम संवत् १६४२ में भी कायस्थजी कविता करते थे। संवत् १६४२ से सं० १६८० तक ३८ वर्ष होते हैं। इन ३८ वर्षों में बहुतेरे ग्रन्थ लिखे जा सकते थे। परन्तु हिन्दी-साहित्य में कायस्थ तुलसी का स्थान नगण्य है अत. इन सब विचारो से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि तुलसी-सतसई गोस्वामी तुलसीदास की ही रचना है।

प्रथम सतसई

यद्यपि सतसई लिखने की प्रथा संस्कृत कवियो से ही चली है और गाथा सप्तशती एवं आर्या सप्तशती नाम के ग्रन्थ सस्कृत में पाये भी जाते हैं तथापि हिन्दी में सतसई के रचयिता सर्व प्रथम गोस्वामी तुलसीदास-जी ही कहे जा सकते हैं। हिन्दी की वृन्द-सतसई, शृङ्गार-सतसई, विक्रम-सतसई, और विहारी-सतसई सब की सब गोस्वामीजी के देहावसान के बहुत पीछे की बनी हुई हैं। आधुनिक कवियो में स्वर्गीय पं० अम्बिका दत्त व्यास साहित्याचार्य विरचित ग्रन्थों में 'सुकवि-सतसई' नाम का ग्रन्थ भी उल्लेखनीय है। हाल में हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री वियोगी हरिजी ने "वीर-सतसई" की रचना की है। जिसके उपलक्ष में हिन्दी-साहित्य सम्मेलन ने उन्हें 'श्री० मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक' देकर सम्मानित भी किया है। वृन्द-सतसई में बहुत स्फुट बातें कही गयी हैं। रचना और भाषा साधारण होने पर भी ग्रन्थ की उपादेयता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं। शृङ्गार और विक्रम-सतसई में शृङ्गार-रस ही का प्राधान्य है। प्रसिद्ध साहित्य-मर्मज्ञ श्री पं० पद्मसिंह शर्माजी ने इन सतसइयों के साथ विहारी-सतसई की तुलनात्मक समालोचना बड़े विस्तार से की है। जिसमें विहारी की सूझ, सहूलियत और भावुकता को सर्वोच्च स्थान दिया

है। शर्माजी ने स्वरचित अमूल्य ग्रन्थ में बिहारी की अच्छी वकालत की है। वास्तव में साहित्य-चमत्कार पर दृष्टि डालने से बिहारी-सतसई सभी सतसइयों से उच्च स्थान पाने योग्य है परन्तु

तुलसी सतसई की एक विशेषता

है जिसे हम कदापि नहीं भूल सकते। कविवर बिहारी के दोहों की यही प्रशंसा हुई तो कहा गया कि—

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखत में छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर॥

निस्सन्देह सकल शरीर में वेधकर गम्भीर घाव करने के अतिरिक्त ये दोहे और क्या करेंगे? पर तुलसी की कविता-कामिनी सेवा-समिति की ओर से परिचारिका (Nurse) बनकर मरहम-पट्टी द्वारा व्रण-पीड़ा को उन्मूलनकर सदुपदेश का रक्त-शोधक रस पिलाकर रोगी को एक मात्र चङ्गा बना देती है। गोस्वामीजी स्वयं अपनी सतसई के सम्बन्ध में लिखते हैं—

दोहा चारु विचारु चलु, परिहरु वादि विवाद।
सुकृत सीम स्वारथ अवधि, परमारथ मरजाद॥

अर्थात्—ये दोहे सुन्दर शिक्षाप्रद हैं इन पर पूर्ण विचार करो और सब कुतर्कों का परित्याग करके इन उपदेशों पर आचरण करो। ये उपदेश सुयश के सीम, संसार के हित साधक, मोक्ष के विधायक और सांसारिक मर्यादा के प्रतिपादक हैं। आप बिहारी और तुलसी की रचनाओं पर पूर्ण विचार करें तो आप को स्पष्ट प्रतीत होगा कि बिहारी की रचना उस मणि-जटित स्वर्ण-पात्र के तुल्य है जिसमें हलाहल विष रखा है परन्तु गोस्वामीजी की रचना सीधे-सादे रजत-पात्र में रखे हुए सुधारस के समान है। तुलसीदासजी अश्लील साहित्य लिखना कितना हानिकारक समझते थे, इसका पता आप निम्न दोहे से पा सकते हैं। प्रसिद्धि है कि एक संस्कृताभिमानी पण्डित ने गोसाईं जी से पूछा कि 'आप संस्कृत में

न लिखकर अपनी कविता गँवारी भाषा में क्यो लिखते है' ?

इसपर तुलसीदासजी ने कहा—

मनि भाजन विष पारई, पूरन अमी निहार।
का छाड़िय का संग्रहिय, कहहु विवेक विचार॥

संस्कृत भाषा मणि-जटित पात्र है परन्तु उसमें उद्धत लेखको ने अश्लील वर्णन रूप विप रख दिया है।

हमारी भाषा मृत्तिकापात्र सी गँवारी है, परन्तु उसमें हमने राम-चरितामृत रखा है। अब विचारना यह है कि किसका संग्रह और किसका त्याग किया जाय? जो मनुष्य पात्र के सौन्दर्य पर मोहित होगा उसे विष पानकर अपना अन्त करना होगा। परन्तु जो अमर-पदप्राप्ति के इच्छुक हैं, उन्हें वर्त्तन से बहस नहीं। वे हमारी ग्राम्य-भाषा-मिश्रित हरि-कथा और सत्शिक्षा को श्रवणकर उससे अपना सुधार कर लेंगे। तुलसीदास इस अंश में कितने सतर्क कवि थे, यह कहा नहीं जा सकता। विहारीजी ने तो शृङ्गार रस के प्रवाह में प्रवाहित होकर महापुरुषो के आदर्श को भी कुल्हाड़े से दाह दिया है। एक ग्वालिन के प्रति श्रीकृष्ण का अगाध प्रेम प्रदर्शन करते हुए किस प्रकार पातिव्रत और स्त्रीव्रत धर्म का उत्थापन कराते हैं—

तू मोहन मन गड़ि रही, गाढ़ी गड़नि गुवालि।
उठै सदा नट साल लौं, सौतिन के उर सालि॥

जब दूसरे पुरुष की स्त्री ग्वालिन, श्रीकृष्ण के मन में इस प्रकार गाढ़ी गड़न से गड़ गयी है, तब पातिव्रत और स्त्रीव्रत धर्म किस गढ़े में गाड़े जायँगे, यह विहारी ही विचार सकते हैं।

आगे हम तुलसी सतसई के सम्बन्ध में ही कुछ विचार करेंगे।

ग्रन्थ-विभाग

इस ग्रन्थ में सात सर्ग हैं जिनके प्रत्येक सर्ग में न्यूनाधिक १०० दोहे

हैं। समस्त ग्रन्थ में कुल ७४० दोहे लिखे गये हैं इस पुस्तक में गोस्वामी जी ने किसी विशेष उपाख्यान अथवा कथा का क्रम नहीं रखा है—हाँ एक-एक विषय की रचना से पूर्ण है। सप्तम सर्ग में राजनीति के अतिरिक्त कई स्फुट विषयों पर भी कविता पायी जाती है।

रचना-विचार

गोसाईंजीकृत सभी ग्रन्थों पर सामान्य दृष्टि डालने से पता लग जाता है कि आपने अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा जान-बूझकर सतसई की क्लिष्ट रचना की है। इस बात को स्वयं ग्रन्थकार ने बड़े ही कड़े शब्दों में स्वीकार किया है—

देश काल गति हीन जे, कर्त्ता कर्म न ज्ञान।
तेपि अर्थ मग पग धरहिं, तुलसी स्वान समान॥

वर्णित विषय

साधारणतः सभी सर्गों में राम-भक्ति का वर्णन करते हुए गोसाईंजी ने इस ग्रन्थ में साहित्य, छन्द शास्त्र, न्याय, वेदान्त और राजनीति के गूढ़ातिगूढ़ विषयों का समुल्लेखन बड़ी योग्यता के साथ किया है। जैसा कहा भी है—

भरण हरण अति अमित विधि, तत्व अर्थ कविरीति।
सांकेतिक सिद्धान्त मत, तुलसी वदत विनीति॥

इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर काव्य-कौशल का निदर्शन भी भली भांति किया है। प्रेमभक्ति की दृष्टि से प्रथम सर्ग, पराभक्ति तथा उपासना की दृष्टि से द्वितीय सर्ग, सांकेतिक-वक्रोक्ति तथा रचना-वैचित्र्य से तृतीय सर्ग, आत्मबोधार्थ चतुर्थ, कर्म सिद्धान्त प्रतिपादन से पञ्चम सर्ग, ज्ञानात्मक होने से षष्ट सर्ग एवं राजनीति-रञ्जित होने से सप्तम सर्ग समादरणीय हैं। विशेष विषयों का वर्णन इस क्रम से है—

प्रथम सर्ग—इसमें समस्त ११० दोहे हैं, जो प्रेम-भक्ति से परिपूर्ण हैं। आरम्भ में राम-नाम की महिमा और रामोपासना की विशेषताओं का वर्णन करते हुए गोस्वामीजी ने अनन्य भक्ति का सर्वाङ्ग-सुन्दर चित्र चित्रित किया है। सर्ग के अन्त के लगभग ४० दोहे चातक के अन्योक्ति पूर्वक कहे गये हैं। जिनका सम्बन्ध एकमात्र अनन्य भक्त से ही है।

द्वितीय सर्ग—इसमें कुल १०३ दोहे परा-भक्ति के विधायक हैं। बीच-बीच में यत्रतत्र ईश्वर और जीव का स्वरूप-निरूपण भी किया गया है। संसार और प्रकृति के सम्बन्ध में भी कहीं-कहीं उल्लेख आये हैं।

तृतीय सर्ग—इसमें १०१ दोहे हैं। इन दोहो में सांकेतिक रूप से बहुधा राम-भक्ति का ही निर्देश किया गया है। किन्हीं दोहों में पिङ्गल और छन्दःशास्त्र सम्बन्धी बहुतेरी बातें कहते हुए रामभक्ति का ही प्रतिपादन किया गया है।

चतुर्थ सर्ग—इसमें कुल ९७ दोहे हैं, जिनमें प्रायः आध्यात्मिक विषयों का वर्णन है। कई दोहो मे संसार की अनित्यता दिखलाते हुए रामोपासना की ओर जनता को आकर्षित किया है।

पञ्चम सर्ग—इसमें ९९ दोहो में प्राय कर्मकाण्ड का निरूपण और उसके स्वरूप का यथावत् प्रतिपादन है। इस सर्ग में गोस्वामीजी ने कर्म का अनादित्व और जीवात्मा के साथ उसके समवाय सम्बन्ध का कथन किया है।

षष्ठ सर्ग—इसमें समस्त १०१ दोहों में ज्ञान-सिद्धान्त का निरूपण है। गोस्वामीजी के वेदान्त के विषय में हमने "तुलसी-साहित्य-रत्नाकर" नामक स्वरचित ग्रन्थ में "दर्शन और तुलसीदास" शीर्षक देकर विस्तृत विवेचना की है। द्वैत, अद्वैत और विशिष्टाद्वैत, इन तीनों सिद्धान्तो का संमिश्रण इस सर्ग के दोहों में पाया जाता है।

सप्तम सर्ग—इसमें कुल १२९ दोहे हैं, जिनमें विशेषत. महाकवि ने राजनीति का वर्णन किया है।

राजा-प्रजा का धर्म, कलियुगी राज्यव्यवस्था और राजनीति सम्बन्धी अन्यान्य सिद्धान्तों का समावेश करके कविराज ने इस सर्ग को सुपाठ्य और उपयोगी बना दिया है। इस सर्ग में कई अन्यान्य स्फुट विषयों पर भी प्रचुर प्रकाश डाला गया है।

इस टीका की आवश्यकता

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'तुलसी-ग्रन्थावली' तृतीय खण्ड की प्रस्तावना में लिखा हुआ है कि शेषदत्त शर्मा उपनाम 'फनेश' कवि ने तुलसी-सतसई पर टीका की है और महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदीजी ने इस पर कुण्डलिया बनाकर उसका नाम "तुलसी सुधाकर" रखा है। इसके अतिरिक्त परमभक्त श्रीयुत् बैजनाथदासजी वैष्णव ने तुलसी-सतसई पर गद्यात्मक टीका लिखी है। यह टीका अत्यन्त विस्तृत और पुरानी हिन्दी में लिखी गयी है जिससे इस समय के पाठकों को मूलार्थ जानने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। कहीं-कहीं तो मूल का भाव समझ लेना सरल है परन्तु आप की टीका ही वहाँ दुरूह प्रतीत होती है। जिस प्रकार खान से रत्न निकाल उसे स्वच्छ कर प्रयोग में लाना प्रत्येक मनुष्य का कार्य नहीं हो सकता, तदनुसार ही आप की टीका को पढ़कर मूलार्थ समझ लेने में प्रत्येक पाठक सहसा समर्थ नहीं हो सकता। इतना होते हुए भी पूर्व टीकाकार होने, अत्यन्त श्रम के साथ विविध प्रमाणों को सन्निविष्ट करने एवं नाना प्रकार की आख्यायिकाओं के द्वारा प्रकृत-विषय में लालित्य लाने का श्रेयस् आप को सर्वथा सुलभ था, है और रहेगा। मुझे भी आप की टीका से जहाँ-तहाँ सहायता मिली है, तदर्थ मैं आप का ऋणी हूँ 'तुलसी-सतसई' को बालपन में ही मैंने अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीयुत् रामलखनदासजी वैष्णव से साथ अध्ययन किया था अतः कृतज्ञता प्रकाशनार्थ आप के शुभ नाम का समुल्लेखन भी परमावश्यक था।

मैंने इस टीका में मूल के अनन्तर अन्वयार्थ मात्र दिया है और आवश्यकतानुसार भावार्थ तथा टिप्पणी आदि के द्वारा मूलाशय को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। इस कार्य में मुझे कहाँतक सफलता प्राप्त हुई है, इसका विवेचन हमारे प्रेमी पाठकों के ही अधीन है। मुझ से जहाँ तक बन सका धर्म, नीति तथा साहित्य-सेवा की दृष्टी से यह कार्य किया है।

"भूलना मनुष्य का धर्म है" अतः अनेक प्रकार की भूलों का होना सम्भव है। आशा है—

सन्त हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार।

शमित्योऽम्

पटना
माघ शुक्ल ५ संवत् १९८५

विनीत
रामचन्द्र द्विवेदी "श्रीपति"

प्राक्कथन

(दोहा)

मातु शारदा के चरण, वन्दौं बारम्बार।
सतसैया टीका करत, करहु सहाय हमार॥ १॥
जेहि पद को जेहि भाव में, कवि दीन्हे जेहि ठाम।
सोइ 'श्रीपति' के तिलक ते, विकसति हो अभिराम॥ २॥
तुलसी रचना विशद वर, स्वकिया प्रौढ़ा नारि।
किल तिल सम 'श्रीपति' तिलक, लसत अमित सुखकारि॥ ३॥
कहूँ विरल कहूँ सघन अति, निज मति बोच विचारि।
जहँ तहँ दीन्हीं टिप्पणी, सरस समय अनुहारि॥ ४॥
सोहत असितहु केस सम, रुचिर मनोहर गात।
मर्यादा सम्पन्न गति, लखिहैं मति अवदात॥ ५॥
धर्म नीति साहित्य कर, सरवर विमल महान।
टीका विशद विशाल अति, सुखद सदा सोपान॥ ६॥
कवि कीरति जल मधुरता, श्रद्धा रही समाइ।
'श्रीपति' की रचना तहाँ, लघुता सोम लखाइ॥ ७॥
बानी तुलसीदास को, रानी कविता रूप।
भक्ति ज्ञान नय गन्ध ते, सानी अमल अनूप॥ ८॥
दासी सुखमा सी लसै, श्रीपति' रचना रूरि।
पग-पग पर अनुहरति अति, विधि निषेध भरपूरि॥ ९॥

"श्रीपति"

विषय-सूची

तुलसी-सतसई

अथ प्रथमस्सर्गः सार्थः प्रारभ्यते

दोहा

नमो नमो श्रीराम प्रभु, परमातम परधाम।
जेहि सुमिरत सिधि होत है, तुलसी जन मन काम ॥१॥

अर्थ—परधाम (सदा मुक्तस्वरूप) परमात्मा श्रीराम प्रभु को अनेक बार नमस्कार है। तुलसीदास कहते हैं कि जिनके स्मरण मात्र से ही भक्त जनों की सारी मनोकामनाएं सिद्ध हो जाती हैं, अर्थात् भक्तों को वाञ्छित फलों की प्राप्ति होती है ॥१॥

टिप्पणी—परधाम शब्द से कवि ने उस परमधाम का ग्रहण किया है जिसका वर्णन श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय १५ श्लोक ६ में श्रीकृष्ण भगवान ने किया है—

न तद्भासयते सूर्य्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

अर्थात्—हे अर्जुन! जहाँ सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि भी अपने प्रकाश पहुँचाने में समर्थ नहीं तथा जिस लोक में जाकर (जीव) वापस

नहीं आते अर्थात् आवागमन से रहित हो जाते हैं वही मेरा परमधाम है। कठोपनिषद् अध्याय २ वल्ली ५ मन्त्र १५ में भी इसी परमधाम का वर्णन किया गया है—

"न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा
विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः × × ×" ॥

दोहा

राम वाम दिसि जानकी, लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्याणकर, तुलसी सुरतरु तोर ॥२॥

अर्थ—(गोस्वामी तुलसीदासजी अपने मन के प्रति कहते हैं) हे तुलसी! श्रीरामचन्द्रजी की बायीं ओर सीता महारानी और दाहिनी ओर प्रिय भ्राता लक्ष्मण विराजमान हैं। इस प्रकार स्थित मूर्त्ति त्रय का ध्यान करना ही तुम्हारे लिए कल्पवृक्ष है अर्थात् सब प्रकार के सांसारिक तथा पारमार्थिक सुखों का देनेवाला है ॥२॥

दोहा

परम पुरुष परधाम वर, जापर अपर न आन।
तुलसी सो समुझत सुनत, राम सोई निर्वान ॥३॥

अर्थ—तुलसीदास उसी निर्वाण अर्थात् सदा मुक्तस्वरूप, परम पुरुष, परधामवाले राम को सर्वश्रेष्ठ समझते तथा सुनते आ रहे हैं जिनके ऊपर अन्य कोई भी दूसरा (शासक) नहीं ॥३॥

दोहा

सकल सुखद गुण जासु सो, राम कामना-हीन।
सकल कामप्रद सर्व हित, तुलसी कहहि प्रवीन ॥४॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि बुद्धिमान जनों का कथन है कि

जिन श्रीरामचन्द्रजी के समस्त गुण सब जगत को सुख पहुँचानेवाले, सब की इच्छाओं की पूर्ति करनेवाले और सर्वहितसाधक हैं वे राम स्वयं सब प्रकार की कामनाओं (इच्छाओं) से रहित अर्थात् निरीह हैं। भाव यह कि उन्हें अपने लिए कुछ चाहना नहीं है ॥४॥

दोहा

जाके रोमै रोम प्रति, अमित अमित ब्रह्मण्ड।
सो देखत तुलसी प्रगट, अमल सु अचल प्रचण्ड ॥५॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिस अमल, (निर्विकार) अचल (कूटस्थ) और प्रचण्ड (सर्वशक्तिमान) परमात्मा के रोम-रोम में अगणित ब्रह्माण्ड स्थित हैं उसको भक्त जन प्रगट देखते हैं अर्थात् उसका साक्षात् करते हैं ॥५॥

टिप्पणी—गोसाईं जी अवतारवादी थे, यही कारण है कि उन्होंने "सो देखत तुलसी प्रगट" पद से अवतार के भाव का निदर्शन किया है। सिद्धान्त पक्ष में ब्रह्म को देखने का भाव उसके यथावत् ज्ञान का है जैसा कि कठोपनिषद् अध्याय २ वल्ली ५ मन्त्र १३ में कहा है—

'नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥'

इस श्रुति में "तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा" पद से ब्रह्म के साक्षात् करने का भाव प्रगट होता है, चक्षु-प्रत्यक्ष का नहीं। इसी आशय का समर्थन यजुर्वेद के अध्याय ३१ मन्त्र १८ से होता है—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

ऊपर के मन्त्र में "तमेव विदित्वा" अर्थात् उसको ही जानकर मनुष्य मृत्यु से पार होता है, इस आशय का कथन किया गया है।

दोहा

जगत जननि श्री जानकी, जनक राम शुभ रूप।
जासु कृपा अति अघ हरनि, करनि विवेक अनूप ॥६॥

अर्थ—श्रीजानकी जगत की माता और कल्याण-स्वरूप श्रीरामजी पिता हैं, जिन दोनों की कृपा महापातकों को विनष्ट करनेवाली अथच विचारों को उत्तम बनानेवाली है ॥६॥

दोहा

तात मातु पर जासु के, तासु न लेश कलेश।
ते तुलसी तजि जात किमि, तजि घर तर परदेश ॥७॥

अर्थ—जो बालक पिता और माता दोनों ही की संरक्षकता में है उसे तनिक भी क्लेश नहीं हो सकता। ऐसा बालक घर छोड़कर तर (कठिन) परदेश में क्योंकर जा सकता है? भाव यह कि जिस महाभाग को श्री राम के समान पिता और दयामयी सीता के समान माता दोनों ही प्रस्तुत हों वह दूसरे पिता और माता की शरण में क्यों जावे? अर्थात् अन्य देवों की उपासना—भक्ति क्यों करे? ॥७॥

टिप्पणी—कवि ने यहाँ तृतीय तथा चतुर्थ दोनों चरणों में 'तजि' शब्द देकर पुनरुक्ति की है।

दोहा

पिता विवेक निधान वर, मातु दया युत नेह।
तासु सुवन किमि पाइहैं, अनत अटन तजि गेह ॥८॥

अर्थ—जिसका पिता सर्वोत्तम, महाज्ञानी और माता स्नेहमयी, दयावती है उनका पुत्र घर छोड़कर अन्यत्र क्योंकर घूमने पावे? अर्थात् क्यों मारा-मारा फिरे? ॥८॥

दोहा

बुद्धि विनय गति हीन शिशु , सुपथ कुपथ गत जान ।
जननि जनक तेहि किमि तजै , तुलसी सरिस अजान ॥९॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मेरे सदृश भोलेभाले बच्चे जो बुद्धि और विनय की गति से हीन तथा कुमार्ग और सुमार्ग के ज्ञान से भी शून्य हैं उन्हें माता-पिता कैसे छोड़ सकते हैं ? अर्थात् नहीं छोड़ सकते ॥९॥

दोहा

मात तात सिय राम रुख , बुधि विवेक परमान ।
हरत अखिल अघ तरुण तर , तब तुलसी कछु जान ॥१०॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जब माता श्रीजानकी और पिता श्रीरामजी की कृपा-दृष्टि समस्त महापातकों को नष्ट कर देती है तब मनुष्य कुछ जानता है एवं उसके बुद्धि-विचार प्रामाणिक होते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—जब तक मनुष्य निष्पाप नहीं होता तब तक उसका ज्ञान स्थिर नहीं रहता और न विचार ही उत्तम होते हैं । ईश्वर के यथावत् ज्ञान के उपरान्त ही मनुष्य 'आप्त' पद पा सकता है ।

दोहा

जिनते उद्भव वर विभव , ब्रह्मादिक संसार ।
सुगति तासु तिनकी कृपा , तुलसी वदहिं विचार ॥११॥

अर्थ—वर विभव अर्थात् परम ऐश्वर्यशाली ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं जिनसे संसार की उत्पत्ति (स्थिति और प्रलयादि) की क्रियाएँ होती हैं । तुलसीदास अपना विचार प्रगट करते हैं कि उन (ब्रह्मादि) की सुगति (मुक्ति) भी उन्हीं (सीता-राम) की कृपा से होती है ॥११॥

भावार्थ—कवि के कथन का भाव यह है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश

का ऐश्वर्य संसार में सर्वोपरि है परन्तु वे भी सीताराम के आश्रित हैं अर्थात् उनकी आज्ञा के अनुसार ही वर्तने से उनका भी कल्याण है।

टिप्पणी—साम्प्रदायिक परम्परानुसार ही गोसाईंजी ने अपने उपास्य-देव को ब्रह्मादिक से भी ऊँचा स्थान दिया है।

दोहा

शशि रवि सीताराम नभ, तुलसी उरसि प्रमान।
उदित सदा अथवत न सो, कुवलित तम कर हान ॥१२॥

अर्थ—तुलसीदास के हृदयरूपी आकाश में चन्द्रमा के समान श्री जानकी जी और सूर्यवत् श्रीरामजी सर्वदा उदित रहते हैं और कभी इनका अस्त नहीं होता, जिनसे अन्धकाररूप हृदयस्थ कुत्सित पातकों का नाश (अदर्शन) ही रहता है अर्थात् अन्धकाररूप पाप पास नहीं आता ॥१२॥

दोहा

तुलसी कहत विचारि गुरु, राम सरिस नहिं आन।
जासु कृपा शुचि होत रुचि, विशद विवेक प्रमान ॥१३॥

अर्थ—तुलसीदास शुद्ध ज्ञान के प्रमाण और विचारपूर्वक कहते हैं कि रामचन्द्रजी के समान अन्य कोई गुरु नहीं, जिसकी कृपा से ही मनुष्य की सारी इच्छाएँ पवित्र हो जाती हैं, अर्थात् मनोवृत्तियाँ शुद्ध होती हैं ॥१३॥

दोहा

'रा' रव रूप अनूप अल, हरत सकल मल मूल।
तुलसी 'म' महि योग लहि, उपजत सुख अनुकूल ॥१४॥

अर्थ—अनूप, (उपमारहित) अल (सर्व शक्ति-सम्पन्न) और सब प्रकार

के विकारों के मूल का विनाशक 'रा' जल स्वरूप है। तुलसीदास कहते हैं कि वह 'म' रूप पृथ्वी का संयोग पाकर सब प्राणियों के लिए अनुकूल सुख उत्पन्न करता है ॥१४॥

टिप्पणी—कविवर गोसाईंजी ने ऊपर के दोहे में निज विचारानुसार 'राम' नाम का अर्थ, माहात्म्य और सामर्थ्य वर्णन किया है। इसी प्रकार आगे के और भी कई दोहों में वर्णन करेंगे। राम-नाम के प्रथम वर्ण 'रा' को जल और 'म' को पृथ्वी रूप से वर्णन करके सिद्ध किया है कि जिस प्रकार जल सब मलों को शुद्ध तो करता है परन्तु बिना पृथ्वी रूप आधार के वह कहीं ठहर नहीं सकता, तदनुसार ही 'रा' और 'म' का पारस्परिक सम्बन्ध है। मनुष्य के अन्तःकरण में जो मल स्थित है उसे 'रा' विशुद्ध कर देता है और 'म' उसे नाना प्रकार के सद्गुणों और सुखों का आश्रय बना देता है। पृथिवी जब तक जल युक्त नहीं होती तब तक उसमें उत्पादक शक्ति नहीं आती।

दोहा

रेफ रमित परमातमा, सह अकार सिय रूप।
दीरघ मिलि विधि जीव इव, तुलसी अमल अनूप ॥१५॥
अनुस्वार कारण जगत, ओंकर करन अकार।
मिलत अकार मकार भो, तुलसी हर दातार ॥१६॥

अर्थ—इन ऊपर के दोहों में तुलसीदासजी ने राम शब्द के अक्षरों के अर्थ और महत्व दिखलाये हैं। 'र्+अ+आ+म्+अ' से 'राम' शब्द बना हुआ है। तुलसीदास कहते हैं कि 'रेफ' (र्) सर्वव्यापी परमात्मा के सदृश है जो अकार रूप सीता के साथ मिलकर 'र' हुआ। इसमें आकार की जो दीर्घ (द्वित्व) मात्रा मिली है वही ब्रह्मा और निर्मल तथा उपमा-रहित जीव के सदृश है ॥१५॥

अनुस्वार जगत का कारण और 'अकार' श्रीकर* (विष्णु) का उत्पादक है। जब अनुस्वार 'अ' के साथ मिलकर 'म' रूप में प्रगट हुआ तो वही मानो हरावतार अर्थात् महेश का उत्पादक स्वरूप हुआ ॥१६॥

टिप्पणी—गोसाईंजी के कहने का भाव यह है कि सर्व व्यापक, परमात्मा, जगत का उपादान कारण रूप प्रकृति (सीता) तथा जीव एवं ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन सब का 'राम' शब्द में सन्निवेश है। १५ वें दोहे में दीर्घ मात्रा (आ) को दो लघु मात्राओं के समान समझकर ही विधि और जीव का रूपक बाँधा है। वास्तव में यह भाव कवि की श्री राम में अनन्य भक्ति का द्योतक मात्र है।

दोहा

ज्ञान विराग भक्ति सह, मूरति तुलसी पेखि।
बरनत मति गति अनुहरत, महिमा विशद विशेखि ॥१७॥

अर्थ—ज्ञान, विराग और भक्ति के साथ उस 'राम' की मूर्त्ति को देखकर उसकी पवित्र और पूर्ण महिमा को तुलसीदास अपनी मति की गति के अनुसार वर्णन करते हैं ॥१७॥

टिप्पणी—उक्त दोहे के प्रथम चरण में एक मात्रा की कमी होती है। यदि 'विराग' शब्द के स्थान में 'विरागै' कर दिया जाय तो मात्रासम्बन्धी क्षति की पूर्त्ति हो जाती है अन्यथा 'सह' के हकार को 'पादान्तस्थं विकल्पेन गुरुञ्ज्ञेयं' के अनुसार गुरुवत् उच्चारण करना पड़ेगा। गोसाईंजी ने ऐसे कितने ही दोहे रचे हैं जिनके प्रथम अथवा तृतीय पदों में बारह-बारह ही मात्राएँ हैं।

---

*"श्रिय मुद कर" न्यास वाक्य से मध्यम पद लोपी समास करने से 'श्रीकर' पद बना जो विष्णु का बोधक है।

दोहा

नाम मनोहर जानि जिय, तुलसी करि परमान।
वर्ण विपर्यय भेद ते, कहौं सकल शुभ जान ॥१८॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि राम-नाम को हृदय से मनोहर जान कर इसके अर्थों को वर्णविपर्यय इत्यादि भेदों के अनुसार सबों को शुभ जानकर प्रमाणपूर्वक आगे कथन करूंगा ॥१८॥

टिप्पणी—कवि के कथन का भाव यह है कि अन्य नामो को उलट-पुलट कर देने से उनके अर्थ बिगड जाते हैं परन्तु 'राम' ऐसा मनोहर नाम है जिसका अर्थ-विपर्यय, (उलट-पलट) आगम, (अध्याहार) नाश और विकार इन चारों नियमों के अनुसार करने पर भी कोई क्षति नहीं होती प्रत्युत विचित्रता आ जाती है।

दोहा

तुलसी शुभ कारण समुझि, गहत राम रस नाम।
अशुभ हरण शुचि शुभ करण, भक्ति ज्ञान गुण धाम ॥१९॥

अर्थ—भक्ति, ज्ञान और गुण के पुञ्ज, अमङ्गल के हरनेवाले एवं उत्तम मङ्गल के देनेवाले 'राम' नाम के रस को आनन्द का दायक समझ कर तुलसीदास ग्रहण करते हैं ॥१९॥

दोहा

तुलसी राम समान वर, सपनेहुँ अपर न आन।
तासु भजन रति हीन अति, चाहसि गति परमान ॥२०॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिस 'राम' के समान स्वप्न में भी अन्य कोई श्रेष्ठ नहीं है उस (प्रभु) के भजन से अत्यन्त प्रीतिहीन होकर तू प्रामाणिक (वेद शास्त्र-प्रतिपादित) मुक्ति चाहता है? ॥२०॥

भावार्थ—कवि के कथन का भाव यह है कि राम-भक्ति विहीन होकर कोई मुक्ति नहीं पा सकता।

दोहा

अहि रसना थन धेनु रस, गणपति द्विज गुरुवार।
माधव सित सिय जन्म तिथि, सतसैया अवतार ॥२१॥

अर्थ—सम्वत् १६४२ के बृहस्पतिवार वैशाख शुक्ल नवमी तिथि को इस सतसई का जन्म हुआ ॥२१॥

भावार्थ—गोस्वामीजी कहते हैं कि मैंने उक्त काल में इस ग्रन्थ के लिखने का प्रारम्भ किया।

टिप्पणी—अङ्कों की गति दाहिनी ओर से बायीं ओर होती है। अहि रसना से २, थनधेनु से ४, रस से ६ और गणपति द्विज से १ का ग्रहण होता है सर्प को दो जीभें होतीं हैं, गाय के चार स्तन होते हैं और भोजन के रस छ प्रकार के होते हैं एवं गणेशजी एक दन्त कहलाते हैं अर्थात् इन अङ्को को दाहिनी ओर से बायीं ओर को क्रमश लिखना प्रारम्भ करें तो १६४२ ही आता है। माधव से वैशाख, सित से शुक्ल पक्ष और सिय-जन्म तिथि से नवमी का ग्रहण होता है।

दोहा

भरन हरन अति अमित विधि, तत्व अर्थ कविरीत।
सांकेतिक सिद्धान्त मत, तुलसी बदत विनीत ॥२२॥

अर्थ—भरण (अध्याहार) और हरण (लोप) के अनेको भेद, तत्व-अर्थ (गूढ़ार्थ), कविता के ढग, सांकेतिक नियम से अर्थों का निकालना और सिद्धान्त मतों का वर्णन, नम्रतापूर्वक मुझ तुलसीदास ने इस सत-सई में किया है ॥२२॥

भावार्थ—कवि का कथन है कि इस ग्रन्थ की रचना भरण (अध्याहार अर्थात् जो बात पद में न हो पर आवश्यकता देखकर उसकी अनुवृत्ति की जाय), हरण (त्याग अथवा लोप अर्थात् अनावश्यक अक्षरो को छोड़ देना), तत्त्व-अर्थ (गूढाशय), कविरीति (अत्युक्ति और उत्प्रेक्षादि अलंकारों से पूर्ण), सांकेतिक (दृष्टि कूटक) और सिद्धान्त मत (वास्तविक निरूपण) से युक्त है ।

दोहा

विमल बोध कारण सुमति , सतसैया सुख धाम ।
गुरु मुख पढ़ि गति पाइ हैं , विरति भक्ति अभिराम ॥२३॥

अर्थ—यह सुख की पुञ्ज सतसई, सज्जनों के लिए तो निर्मल ज्ञान देनेवाली होगी और साधारण मनुष्य इसे गुरु-मुख से पढ़कर सुन्दर वैराग्य, भक्ति और मुक्ति पावेंगे ॥२३॥

दोहा

म न भ य ज र स त लाग युत , प्रगट छन्द युत होय ।
सो घटना शुभदा सदा , कहत सुकवि सब कोय ॥२४॥

अर्थ—मगण, नगण, भगण, यगण, जगण, रगण, सगण और तगण अथच लाग (लघु और गुरु) के विचार युक्त जो छन्दों की रचना की जाती है वह सदा सुख देनेवाली होती है ऐसा सभी कवि कहते हैं ॥२४॥

भावार्थ—गोस्वामीजी के कथन का भाव यह है कि पिङ्गल के अनुसार ही काव्य होना चाहिये ।

टिप्पणी—काव्य में नीचे लिखे आठ गण होते हैं ।

नाम गण	चिह्न	लक्षण
म गण	SSS	जिसमें तीनो गुरु मात्राएँ हों।
य "	ISS	जिसके आदि में लघु और अन्त में दोनों गुरु मात्राएँ हों।
र "	SIS	जिसमें बीच की मात्रा लघु और आद्यन्त की गुरु हों।
स "	IIS	जिसकी दो मात्राएँ लघु और अन्त की गुरु हो।
त "	SSI	जिसकी दो मात्राएँ गुरु और अन्त की लघु हो।
ज "	ISI	जिसकी आद्यन्त की मात्राएँ लघु एव मध्य गत मात्रा गुरु हो।
भ "	SII	जिसमें क्रमश. एक गुरु और दो लघु मात्राएं हों।
न "	III	जिसकी तीनो मात्राए लघु हों।

प्रमाण—मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्चनकारो भादिगुरुस्तत आदिलघुर्यः।
जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः सोऽन्त्यगुरुःकथितोऽन्त्यलघुस्तः॥

शुभाशुभ—कवियों का कथन है कि मगण, नगण, भगण और यगण शुभ तथा जगण, रगण, सगण और तगण अशुभ हैं। इन चारो अशुभ गणों का ग्रन्थारम्भ में आना उत्तम नहीं।

दोहा

मत समान लत जान लघु, अपर वेद गुरु मान।
संयोगादि विकल्प पुनि, पद न अन्त कहँ जान॥२५॥

अर्थ—अ, इ, उ, ऋ और लृ ये पाँचों समान स्वर कहलाते हैं ये समान स्वर स्वयं लघु हैं और जिन व्यञ्जनों में इनकी मात्राएँ होती हैं वे भी लघु ही कहलाते हैं। अन्य वेद (चार) मात्राएँ गुरु मानी जाती हैं, वे ये हैं—

संयुक्ताद्यं दीर्घं सानुस्वारं विसर्गसंमिश्रम् ।
विज्ञेयमक्षरं गुरु पादान्तस्थं विकल्पेन ॥

अर्थात्—संयुक्ताक्षर के पूर्व के वर्ण, अनुस्वार तथा विसर्ग युक्त वर्ण और विकल्प से पादान्तस्थ लघु वर्ण भी गुरु कहे जाते हैं ॥२॥

टिप्पणी—गोसाईंजी ने 'अपर वेद गुरु मान' लिखकर भी दो ही गुरुओं की गणना करायी है। शेष दो (सानुस्वारं और विसर्ग संमिश्रम्) का अध्याहार करना पड़ा है।

दोहा

दीरघ लघु करि तहँ पढ़ब, जहँ लह सुख विश्राम।
प्राकृत प्रगट प्रभाव यह, जनित बुधाबुध वाम ॥२६॥

अर्थ—जहाँ पढ़ने में सुख की सुविधा हो वहाँ दीर्घ मात्रा का उच्चारण भी लघु जैसा करना चाहिये, यह उपर्युक्त प्रभाव (नियम) बुध जनों के बीच प्राकृतिक (स्वाभाविक) ही प्रगट हुआ पर अबुधजन इस नियम से वाम अर्थात् विरुद्ध चलते हैं ॥२६॥

दोहा

दुइ गुरु सीता सार गण, राम सो गुरु लघु होइ।
लघु गुरु रमा प्रतच्छ गन, युग लहु हर गण सोइ ॥२७॥

अर्थ—'सीता' शब्द में दोनों सार अक्षर गुरु, 'राम' शब्द में एक गुरु तथा एक लघु' 'रमा' शब्द में एक लघु तथा एक गुरु अथच 'हर' शब्द में दोनों ही लघु वर्ण प्रत्यक्ष हैं ॥२७॥

दोहा

सहस नाम मुनि भनित सुनि, तुलसी-वल्लभ नाम।
सकुचति हिय हँसि निरखि सिय, धर्म धुरन्धर राम ॥२८॥

अर्थ—मुनियों द्वारा वर्णन किये सहस्र नामों के अन्तर्गत भगवान के "तुलसी-वल्लभ" नाम को सुनकर श्रीसीताजी मन में ही संकोच करती हुई हँस रही हैं कि हे भगवन् आप तो धर्मधुरन्धर मर्थात् एक स्त्रीव्रत वाले हैं यह 'तुलसी-वल्लभ' नाम क्यों पाया ? ॥२८॥

भावार्थ—कवि ने हास्यवर्द्धक, कवियों की उक्ति से श्रीरामजी को अपना स्वामी होना दर्शाया और व्याजस्तुति से उनका स्त्रीव्रत दिखलाया है।

दोहा

दम्पति रस रसना दशन, परिजन वदन सुगेह।
तुलसी हर हित वरन शिशु, सम्पति सरल सनेह ॥२९॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मुख रूपी पवित्र गृह में, दाँतों के समूह रूप परिवार के भीतर रस और रसना (स्वाद और जीभ) रूप दम्पति (स्त्री-पुरुष) से उत्पन्न हुआ शिवजी का प्यारा वर्ण (राम) ही बालक एव उसमें सरल स्नेह ही गृह की सम्पत्ति है ॥२९॥

दोहा

हिय निर्गुण नैनन सगुण, रसना राम सो नाम।
मनहुँ पुरट सम्पुट लसत, तुलसी ललित ललाम ॥३०॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि हृदय में निर्गुण का ध्यान और नेत्रों से सगुण का दर्शन इन दोनों के मध्य जीभ से 'राम' नाम का जप इस प्रकार सुशोभित होता है जैसे सोने के सम्पुट (डिब्बे) में सुन्दर रत्न शोभा पाता है ॥३०॥

दोहा

प्रभु गुण गण भूषण वसन, वचन विशेष सुदेश।
राम सुकीरति कामिनी, तुलसी करतब केश ॥३१॥

अर्थ—श्रीरघुनाथजी की सुन्दर कीर्ति ही नायिका है जो भगवान के गुण समूह के भूषण-वस्त्र धारण करनेवाली है। अन्यान्य कवियों के विशेष वचन ही उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग हैं और मुझ तुलसीदास का कर्तव्य केश है ॥३१॥

टिप्पणी—यहाँ गोस्वामीजी ने अपनी रचना की तुच्छता दर्शाते हुए उसे केश के समान कहा है पर सच तो यों है कि यदि परम रूपवती कामिनी सिर से पैर तक भूषण-वस्त्र से आच्छादित हो परन्तु उसके सिर पर केश न हों तो सारी सुन्दरता धूल में मिल जाय। उसी प्रकार केश भी कामिनी के सिर से पृथक होने पर कौडी काम का नहीं रह जाता। कवि का कथन है कि मेरी रचना तो तुच्छ है पर श्रीरघुनाथजी की कीर्ति वर्णन करने से उसकी ऐसी प्रतिष्ठा हो गयी है जैसी केशों की कामिनी के बदन में जाने से हो जाती है। इसी आशय के दो दोहे आगे भी कहे हैं।

दोहा

रघुवर कीरति तिय बदन, इव कह तुलसीदास।
शरद प्रकाश अकाश छबि, चारु चिबुक तिल जास ॥३२॥

अर्थ—श्रीरघुनाथजी की कीर्ति-कामिनी के मुख की छबि आकाश के पूर्ण शरच्चन्द्र के समान है, जिसके सुशोभित चिबुक के ऊपर तुलसीदास की उक्तियाँ तिल के समान हैं ॥३२॥

दोहा

तुलसी शोभित नखत गण, शरद सुधाकर साथ।
मुक्ता झालरि झलक जनु, राम सुयश शिशु हाथ ॥३३॥

अर्थ—जिस प्रकार शरदऋतु के चन्द्रमा के साथ तारागण शोभा पाते हैं और बच्चों के हाथ में मोतियों की झालरि झलकती है उसी प्रकार श्रीरामजी के सुयश के साथ तुलसीदास का कथन शोभा पाता है ॥३३॥

दोहा

आतम बोध विवेक बिनु, राम भजत अलसात।
लोक सहित परलोक की, अवसि बिनासी बात ॥३४॥

अर्थ—जो आत्मबोध और ज्ञान से हीन जन हैं वे राम-भजन में आलस्य करते हैं, मानो वे लोक और परलोक दोनों का विनाश कर रहे हैं ॥३४॥

दोहा

बरु मराल मानस तजै, चन्द शीत रवि घाम।
मोर मदादिक जो तजै, तुलसी तजै न राम ॥३५॥

अर्थ—यदि हंस मानसरोवर, चन्द्रमा शीतलता, सूर्य्य धूप और मोर मदादिक (मेघ-प्रभृति) को छोड़ दे तो छोड़ दे परन्तु मैं तुलसीदास 'राम' को नहीं छोड़ सकता ॥३५॥

भावार्थ—यहाँ गोस्वामीजी ने 'राम' में अपनी अनन्य भक्ति दर्शायी है।

दोहा

आसन दृढ़ आहार दृढ़, सुमति ज्ञान दृढ़ होय।
तुलसी बिना उपासना, बिन दुलहे की जोय ॥३६॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मनुष्य चाहे आसन में दृढ़ (शान्त), आहार में दृढ़ (सन्तोषी) और बुद्धि तथा ज्ञान में भी परम दृढ़ हो परन्तु उपासना (ईश्वर-भक्ति) के बिना उसकी स्थिति पुरुष-हीन स्त्री जैसी है ॥३६॥

भावार्थ—जिस प्रकार पुरुषहीन स्त्री को जगत का आनन्द नहीं होता उसी प्रकार भक्तिहीन मनुष्य को सच्चा आनन्द नहीं मिल सकता। अत शान्ति, सन्तोष, बुद्धि और ज्ञान के ऊपर उपासना ही है।

दोहा

राम चरण अवलम्ब बिनु , परमारथ की आश ।
चाहत बारिद बूँद गहि , तुलसी चढ़न अकाश ॥३७॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो पुरुष श्रीरामजी के चरण का सहारा लिये बिना ही परमार्थ (मुक्ति) की आशा रखते हैं, वे मानो वर्षा की बूदो को पकड़कर आकाश में चढ़ना चाहते हैं ॥३७॥

भावार्थ—कवि के कथन का भाव यह है कि बिना राम की भक्ति के मुक्ति मिलना असम्भव है ।

दोहा

रामनाम तरु मूल रस , अष्ट पत्र फल एक ।
युग लसन्त शुभ चारि जग , वर्णत निगम अनेक ॥३८॥

अर्थ—अनेक महापुरुषो तथा वेदों का कथन है और ससार मे चारो युग में ऐसा ही प्रसिद्ध भी है कि राम-नामरूपी वृक्ष का स्नेह ही मूल, योगाष्टाङ्ग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) पत्ते और भगवत्प्राप्ति (मुक्ति) ही उत्तम फल हैं ॥३८॥

दोहा

राम कामतरु परिहरत , सेवत कलितरु ठूँठ ।
स्वारथ परमारथ चहत , सकल मनोरथ झूँठ ॥३९॥

अर्थ—जो मनुष्य राम-नामरूपी कल्पवृक्ष को छोड़कर कलियुग-रूप ठूँठे वृक्ष की सेवा करते हुए स्वार्थ अथवा परमार्थ चाहते हैं उनकी सारी कामनाएं व्यर्थ हो जाती हैं ॥३९॥

दोहा

तुलसी केवल कामतरु , रामचरित आराम ।
निशिचर कलि करि निहत तरु , मोहि कहत विधि वाम ॥४०॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि रामचरित ही केवल कल्पवृक्ष की वाटिका है (उसी का सेवन कर)। अन्य देवो की भक्ति सामान्य वृक्ष सदृश है, जिसे राक्षस कलिरूप हाथी नाश कर डालता है, तब उनके आश्रित रहनेवाले मोहवश कहते फिरते हैं कि हम से ब्रह्मा ही टेढ़े हो गये ॥४०॥

भावार्थ—गोस्वामीजी के कथन का भाव यह है कि यदि तू कलियुग के प्रभाव से बचना चाहता है तो रामचरित में चित्त लगा। जिस प्रकार कल्पवृक्ष के ऊपर हाथी का बल काम नहीं करता उसी प्रकार जिसके हृदय में राम की भक्ति है वहाँ कलि अपना बल नहीं दिखला सकता। अन्य देवताओ की भक्ति सामान्य छोटे-छोटे वृक्षों सी है जिनके नीचे बैठने से छाँह तो मिलती है परन्तु यह भय सर्वदा बना रहता है कि इसे कलियुगरूप मतवाला हाथी अवश्य नष्ट-भ्रष्ट कर डालेगा। भाव यह है कि जो लोग अन्य देवो की उपासना में फँसे हैं वे कलि के उपद्रव (काम, क्रोधादि) से नहीं बच सकते। यह भाव नीचे के दोहे से और भी स्पष्ट हो जाता है।

दोहा

स्वारथ परमारथ सकल, सुलभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता, तुलसी उचित न तोर ॥४१॥

अर्थ—तुलसीदासजी अपने मन से कहते हैं कि हे मन! एक राम की ही भक्ति से तुम्हें स्वार्थ (सांसारिक उन्नति, अभ्युदय) और परमार्थ (पारलौकिक उन्नति, नि.श्रेयस्) की प्राप्ति होगी, अत. दूसरे द्वार पर (अर्थात् अन्यान्य देवों की भक्ति से) अपनी दीनता दिखलाना उचित नहीं है ॥४१॥

दोहा

हित सन हित रति राम सन, रिपु सन वैर विहाव।
उदासीन संसार सन, तुलसी सहज सुभाव ॥४२॥

अर्थ—तुलसीदास मित्र मे मैत्री, शत्रुओं से वैरत्याग, ससार से उदासीन (निरपेक्ष, मध्य) भाव और श्रीरामजी से सरल स्वभाव युक्त होकर भक्ति रखते हैं ॥४२॥

दोहा

तिल पर राखै सकल जग, विदित विलोकत लोग।
तुलसी महिमा राम की, को जग जानन योग ॥४३॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि राम की महिमा को पूर्णरूप से इस संसार में कौन जाननेवाला है ? वह प्रभु चाहे तो एक तिल पर समस्त ससार को रख छोड़े, यह विश्वविदित बात है और देखनेवाले देखते भी हैं ॥४३॥

दोहा

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहूँ होत नहिं, रवि रजनी इक ठाम ॥४४॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिसके हृदय में श्रीरामजी बसते हैं वहाँ विषय-वासना नहीं रहती और जिसके हृदय में वासना है वहाँ राम नहीं टिक सकते, क्योंकि सूर्य और रात्रि का कभी एकत्र वास नहीं हो सकता ॥४४॥

दोहा

राम दूरि माया प्रबल, घटत जानि मन माहिं।
बढ़त भूरि रवि दूरि लखि, सिर पर पगु तर छाहिं ॥४५॥

अर्थ—जिसके हृदय में श्रीरामजी का निवास नहीं वहाँ माया

प्रबल तथा जिसके हृदय में उनका निवास है वहाँ दुर्बलरूप से इस प्रकार रहती है जैसे सूर्य्य को अत्यन्त दूर देखकर छाया बढ़ती और सूर्य्य के सिर पर (समीप) आ जाने से वह (छाया) पैर तले आ जाती है ॥४५॥

भावार्थ—माया राम-भक्तों के चरण तले आ जाती है अर्थात् सदा आधीन रहती है।

दोहा

सम्पति सकल जगत्त की, श्वासा सम नहिं होय।
श्वास सोई तजि राम-पद, तुलसी अनत न खोय ॥४६॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि समस्त संसार की सम्पत्तियाँ मिलकर भी एक श्वास की समता नहीं कर सकतीं उस अमूल्य श्वास को श्रीराम-जी के चरणों के अतिरिक्त अन्यत्र नष्ट करना उचित नहीं ॥४६॥

टिप्पणी—इस दोहे के प्रथम चरण में जगत के 'त' का द्वित्व कर्ण-प्रिय नहीं लगता यदि "सम्पति सारे जगत की" पद होता तो मेरी समझ में अच्छा था।

दोहा

तुलसी सो अति चतुरता, राम-चरण लवलीन।
पर मन पर धन हरण कहँ, गणिका परम प्रवीन ॥४७॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि श्रीरामजी के चरणो में लवलीन रहना ही परम चातुर्य्य है, यों तो दूसरे के मन और धन को हरण करने में वेश्या भी चतुर ही कहलाती है परन्तु यह वास्तविक चातुर्य्य नहीं है ॥४७॥

दोहा

चतुराई चूल्हे परे, यम गहि ज्ञानहिं खाय।
तुलसी प्रेम न रामपद, सब जरमूल नसाय ॥४८॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि ऐसी चतुरता चूल्हेभाड़ में पड़े और ऐसे ज्ञान को यम भक्षण कर जाय जिनमे रामजी के चरणो में प्रेम उत्पन्न न हो। ऐसी चतुराई और ऐसे ज्ञान का जड़मूल से विनाश हो जाना ही अच्छा है ॥४८॥

दोहा

प्रेम शरीर प्रपंच रुज, उपजी बड़ी उपाधि।
तुलसी भली सु वैदई, वेगि बाँधिये व्याधि ॥४९॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि इस संसार मे प्रेमरूप शरीर में प्रपञ्च का रोग लगा जिसमे बड़ी व्याधि खड़ी हो गयी अब चतुर वैदई यही है कि शीघ्र इस कुरोग को शमन किया जाय अर्थात् भगवान् का भजन करना उचित है ॥४९॥

दोहा

राम विटप तर विशद वर, महिमा अगम अपार।
जाकहँ जहँ लगि पहुँच है, ताकहँ तहँ लगि डार ॥५०॥

अर्थ—श्रीरामरूपी एक श्रेष्ठ सर्वोत्तम वृक्ष (अथवा कल्पवृक्ष) है जिसकी महिमा अगम और अपार है, इसमें जिसकी बुद्धि की जितनी पहुँच है उसके लिए वहीं डार मिल जाती है ॥५०॥

भावार्थ—ग्रन्थकार का भाव यह है कि राम-नाम की महिमा अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार सभी वर्णन करते हैं तथापि वह अगम्य और अपार है।

दोहा

तुलसी कोशलराज भजु, जनि चितवै कहुँ ओर।
पूरण राम मयंक मुख, करु निज नयन चकोर ॥५१॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि कोशलराज रामचन्द्र को भजो, दूसरों की ओर दृष्टि मत दो। पूर्णिमा के चन्द्र सदृश चमकते हुए राम के मुख की ओर देखते रहने के लिए अपनी आँखों को चकोर सदृश बनाओ ॥५१॥

दोहा

ऊँचे नीचे कहुँ मिले, हरि पद परम पियूष।
तुलसी काम मयूष ते, लागै कौनेउ रूख ॥५२॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि श्रीरामजी के चरणारविन्द का प्रेमरूप अमृत चाहे ऊँचे महात्माओं के सतसङ्ग से मिले अथवा किसी नीच पुरुष के ही द्वारा मिल जाय उसे ग्रहण कर लो। चकोर को चन्द्र किरणों से काम है चाहे वह किसी वृक्ष से होकर आती हों ॥५२॥

दोहा

स्वामी होनो सहज है, दुर्लभ होनो दास।
गाडर लाये ऊन को, लागी चरै कपास ॥५३॥

अर्थ—स्वामी बनना अत्यन्त सहज है पर दास बनना कठिन है। ऊन के लिए भेड लाया पर वह कपास चरने लगी ॥५३॥

भावार्थ—यह जीव हरि-भक्ति की प्रतिज्ञा कर के आया परन्तु संसार में आकर आप स्वामी बन गया अर्थात् अपनी ही पूजा औरों से कराने लगा।

दोहा

चलब नीति मग रामपद, प्रेम निबाहब नीक।
तुलसी पहिरिय सो बसन, जो न पखारत फीक ॥५४॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि इस संसार में न्याय पथ पर चलना और श्रीराम के चरण में भले प्रकार प्रेम दृढ़ रखना उचित है, वस्त्र ऐसा पहनना चाहिये जो धुलाने पर भी फीका न पड़े ॥५४॥

दोहा

तुलसी राम कृपालु ते, कहि सुनाव गुण दोष ।
होइ दूबरी दीनता, परम पीन सन्तोष ॥५५॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हे मन! दयामय श्रीरामजी से अपने सब गुण-दोष सुनाओ, (छिपाने का यत्न न करो) ऐसा करने से तेरी दीनता दुर्बल होगी और सन्तोष परम पुष्ट होता जायगा ॥५५॥

दोहा

सुमिरन सेवन रामपद, रामचरण पहिचानि ।
ऐसेहु लाभ न ललक मन, तौ तुलसी हित हानि ॥५६॥

अर्थ—रामचरण को पहचान कर उसी के स्मरण और सेवन की प्राप्ति में जिसके मन को ललक न हुई तो तुलसीदास कहते हैं कि इससे बढ़कर और कौन सी बड़ी हानि होगी ? ॥५६॥

दोहा

सब संगी बाधक भये, साधक भये न कोय ।
तुलसी राम कृपालु ते, भली होय सो होय ॥५७॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि इस जीव के इन्द्रियादि सब संगी भगवद्भक्ति के बाधक ही हैं कोई भी साधक नहीं अब जो कुछ इसका भला होना होगा वह दयालु श्रीरघुनाथजी से ही होगा ॥५७॥

दोहा

तुलसी मिटै न कल्पना, गये कल्पतरु छाँह ।
जबलगि द्रवै न करि कृपा, जनकसुता को नाह ॥५८॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जबतक श्रीरघुनाथजी कृपाकर प्रसन्न नहीं होते तब तक कल्पवृक्ष के नीचे जाने पर भी जीवों की दीनता नहीं मिट सकती ॥५८॥

दोहा

विमल बिलग सुख निकट दुख, जीवन समय सुरीति ।
सहित राखिये राम को, तजे ते उचित अनीति ॥५९॥

अर्थ—इस जीवनकाल का यही सुव्यवहार है कि उसे सर्वदा 'राम' के साथ रखिये तब दु ख बिलग होकर विमल सुख निकट रहेगा और यदि इस रीति को त्याग करेगा तो उचित अनीति (दुर्दशा) होगी अर्थात् विमल सुख तो बिलग (पृथक) हो जायगा और दु.ख निकट होगा ॥५९॥

टिप्पणी—वास्तव में इस दोहे के तीसरे चरण में "रहित राखिये राम की" ऐसा पाठ कई पोथियों मे छपा है जिसका कोई अच्छा अर्थ मुझे नहीं सूझा अत अनुमानत "सहित राखिये राम की" ऐसा पाठ लिख दिया है। परम भक्त बैजनाथदासजी टीकाकार ने 'रहित' ही पाठ माना है परन्तु उनका अर्थ भावशून्य एव बडी ही खैंचतान का है। यदि किसी पाठक को 'रहित' पाठ पर ही आग्रह हो तो नीचे लिखा अर्थ सम्भव हो सकता है—

अनीति का उचित त्याग करके भी यदि जीवनकाल को 'राम' की सुरीति (सुन्दर भक्ति) से रहित रखोगे तो भी उत्तम सुख दूर और दु ख ही निकट रहेगा ॥५९॥

उपर्युक्त अर्थ का द्योतन और स्पष्टीकरण नीचे के ६०वे दोहे के तीसरे चरण "तुलसी जाय उपाय सब" से भी हो जाता है।

दोहा

जाय कहब करतूति बिन, जाय योग बिनु छेम ।
तुलसी जाय उपाय सब, बिना रामपद प्रेम ॥६०॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि करनी-रहित कथन, क्षेम-रहित योग और राम के चरण में प्रेम-रहित सारे उपाय व्यर्थ हैं ॥६०॥

दोहा

तुलसी रामहिँ परिहरै, निपट हानि सुनु मोद।
जिमि सुरसरि गत सलिल वर, सुरा सरिस गंगोद ॥६१॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिस प्रकार अशुद्ध जल भी गंगा में पड़कर शुद्ध और पवित्र हो जाता है परन्तु गंगा का छोड़ा हुआ (ढाब का) जल मद्य तुल्य अपवित्र हो जाता है उसी प्रकार राम को छोड़ देने पर तुम्हारे सब आनन्द हानि तुल्य हैं ॥६१॥

दोहा

हरे चरहिँ तापहिँ बरे, फरे पसारहिँ हाथ।
तुलसी स्वारथ मीत जग, परमारथ रघुनाथ ॥६२॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यह संसार स्वार्थ की मित्रता रखता है अर्थात् हरे खेत को चरना, लहकते को तापना एवं फले वृक्ष की ओर हाथ फैलाना सब को आता है परन्तु रामजी केवल परमार्थ अर्थात् दुःखों की निवृत्ति करने वाले हैं (उनकी मैत्री स्वार्थपरक नहीं है) ॥६२॥

दोहा

तुलसी खोटे दास कर, राखत रघुपति मान।
ज्यों मूरख पूरोहितहिं, दान देत यजमान ॥६३॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि रामचन्द्र खोटे दासो की भी प्रतिष्ठा करते हैं जैसे मूर्ख पुरोहितो की प्रतिष्ठा यजमान दान द्वारा करते हैं ॥६३॥

टिप्पणी—यहां कवि ने देश की अन्धपरम्परा से भी काम लेलिया। मूर्ख को पुरोहित बनाना और उसे दान देना दोनों ही अन्धपरम्परा हैं वैसे ही राम का खोटो को दास मानना और उनकी प्रतिष्ठा करना भी क्या अन्धपरम्परा है ?

दोहा

ज्यों जग बैरी मीन को, आपु सहित परिवार।
त्यों तुलसी रघुनाथ बिन, आपनि दशा निहार ॥६४॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिसभाँति संसार मछली का बैरी है और उसका परिवार भी एक दूसरे का बैरी (अर्थात् बड़ी मछलियाँ छोटी को खा जाती हैं) है, इसी प्रकार श्रीरघुनाथ की भक्ति से हीन मनुष्य की भी दशा समझो ॥६४॥

दोहा

तुलसी राम भरोस सिर, लियो पाप धरि मोट।
ज्यों व्यभिचारी नारि कहँ, बड़ी खसम की ओट ॥६५॥

अर्थ—जिस प्रकार व्यभिचारिणी स्त्री, पति की आड़ लेकर व्यभिचार करती है और उसका व्यभिचार पच जाता है उसी प्रकार राम के भरोसे तुलसी ने भी पाप का गट्ठर सिर पर लाद लिया ॥६५॥

टिप्पणी—कवि के कथन का आशय यह है कि 'राम' का नाम अधमोद्धारक है यही जानकर मैं पाप करने में नहीं डरता, परन्तु यह भाव शास्त्र और वेद से विरुद्ध है। गीता में भी श्रीकृष्ण भगवान ने कहा है कि—

अवश्यमेव भुक्तव्यं, कृतं कर्म शुभाशुभम्।

दोहा

स्वामी सीतानाथ जी, तुम लगि मेरी दौर।
तुलसी काग जहाज को, सूझत और न ठौर ॥६६॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिस प्रकार जहाज पर घिरे हुए अथवा उसके मस्तूल पर बैठे हुए काग को जिधर देखे उधर जल ही जल

दीखता है, अब उसे जहाँ पर बैठा है उसके अतिरिक्त, कोई स्थान ही नहीं सूझता जहाँ वह उडकर जावे उसी प्रकार हे स्वामिन् राम ! मेरी दौड तुम्हारी शरण तक है ॥६६॥

भावार्थ—गोसाईंजी के कथन का आशय यह है कि मुझे राम को छोड अन्य किसी देवता का सहारा नहीं।

दोहा

तुलसी सब छल छाड़ि कै, कीजै राम सनेह।
अन्तर पति से है कहा, जिन देखी सब देह ॥६७॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि कपट से हृदय शुद्ध कर प्रेम पूर्वक राम की भक्ति करो, पुरुष मे स्त्री क्या पर्दा करेगी जिसने सारा शरीर देख लिया है ॥६७॥

दोहा

सब ही को परखै लखै, बहुत कहे का होय।
तुलसी तेरो राम तजि, हित जग और न कोय ॥६८॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि बहुत कहने से क्या लाभ ? सब अन्यान्य देवताओं को परख कर पहचान लिया, किसी में कुछ नहीं है अब तुम्हारी भलाई राम को छोड और किसी से नहीं हो सकती ॥६८॥

दोहा

तुलसी हमसों रामसों, भलो बनो है सूत।
छाँड़े बनै न संग्रहे, जो घर माँहि कपूत ॥६९॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मुझ से और राम से भला नाता लगा है कि जैसे घर मे कुपुत्र पैदा हो जाय तो न तो उसे त्यागते बनता है और न रखते बनता है ॥६९॥

भावार्थ—पिता अपने कुपुत्र को घर से निकाल नहीं देता और न उसे रखते ही बनता है। हारकर वह यही उपाय करता है कि इसकी खुटाई छूटे, उसी भाँति 'राम' मुझे त्याग तो सकते नहीं क्योंकि खोटे भक्त भी यदि उनकी शरण आ जायँ तो वे नहीं त्यागते और खोटे को पास रखने में भी सकोच करेंगे अत स्वय मेरी खुटाई ही दूर करेंगे और पास रखेंगे।

दोहा

कोटि विघ्न सकट विकट, कोटि शत्रु जो साथ।
तुलसी बल नहिँ करि सकै, जो सुदृष्टि रघुनाथ ॥७०॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि करोड़ो विघ्न-बाधा और विकट सकट आ पड़ें अथवा करोड़ो शत्रु ही साथ रहें तो उनका बल कुछ नहीं लग सकता यदि उसके राम अनुकूल हो ॥७०॥

दोहा

लगन महूरत योग बल, तुलसी गनत न काहि।
राम भये जेहि दाहिने, सबै दाहिने ताहि ॥७१॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि लग्न, मुहूर्त और योग का बल कुछ काम नहीं आता, श्रीरघुनाथजी जिसके अनुकूल रहें तो ये सब मुहूर्तादि भी उसके अनुकूल ही हो जाते हैं ॥७१॥

दोहा

प्रभु प्रभुता जा कहँ दई, बोल सहित गहि बाँह।
तुलसी ते गाजत फिरहिँ, राम छत्र की छाँह ॥७२॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि श्रीरघुनाथजी ने जिसकी प्रसिद्धि करके बाँह पकड़कर प्रभुता दी है वे राम-छत्र की छाया में प्रसन्नवदन घूमते हैं ॥७२॥

दोहा

साधन साँसति सब सहत, सुमिरि सुखद फल लाहु।
तुलसी चातक जलद की, रीझ बूझ बुध काहु ॥७३॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि पपीहा उत्तम सुखदायक फल के लाभ को स्मरण कर सब साधनो और दुःखो का सहन करता है उसी प्रकार श्रीराम के साथ पपीहे जैसी प्रीति और समझ किसी-किसी बुद्धिमान जन की होती है ॥७३॥

टिप्पणी—किन्हीं-किन्हीं पुस्तकों में 'सुमन सुखद फल लाहु' ऐसा पाठ है जिसके अनुसार नीचे लिखा अर्थ उपयुक्त प्रतीत होता है—

तुलसीदास कहते हैं कि योगानुष्ठानादि जितने साधन हैं वे साँसति अर्थात् कष्टप्रद हैं और उनमें केवल फूल ही लगते हैं। यदि तुम्हें सुखदायक फल की प्राप्ति करना हो तो मेघ और पपीहे की वृत्ति धारण करो। ऐसी रीझ-बूझ किसी-किसी बुद्धिमान को ही होती है।

दोहा

चातक जोवत जलद कहँ, जानत समय सुरीति।
लखत लखत लखि परत है, तुलसी प्रेम प्रतीति ॥७४॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यद्यपि चातक स्वाती के मेघ के समय और रीति को जानता है तथापि पहले से ही बाट देखता रहता है। उसी प्रकार श्रीरामजी की प्रेम-प्रतीति लखते-लखते लख पड़ती है। अर्थात् प्रथम ही नहीं जानी जाती ॥७४॥

दोहा

जीव चराचर जहँ लगे, है सब को प्रिय मेह।
तुलसी चातक मन बसो, घन सो सहज सनेह ॥७५॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यद्यपि चराचर जगत को ही मेघ प्यारा है तथापि उसके साथ अनन्य प्रेम केवल पपीहे का ही रहता है ॥७५॥

टिप्पणी—यहाँ पर कई दोहों मे तुलसीदासजी ने यह दिखलाया है कि स्वाती के मेघ के साथ जिस भाँति पपीहे का प्रगाढ़ प्रेम रहता है उसी प्रकार भक्तों को श्रीरघुनाथजी के साथ अनन्य प्रेम, श्रद्धा और भक्ति रखनी चाहिये।

दोहा

डोलत विपुल विहंग बन, पियत पोखरिन वारि।
सुयश धवल चातक नवल, तोर भुवन दश चारि ॥७६॥

अर्थ—हे चातक! अन्य कितने पक्षी ऐसे हैं जो वनों में घूमते और पोखरी-बावलियों के पानी पीते हैं (उनका कोई मान्य नहीं) पर तुम्हारा नित नया उज्ज्वल सुयश चौदहो भुवन में विख्यात होता है ॥७६॥

दोहा

मुख मीठे मानस मलिन, कोकिल मोर चकोर।
सुयश ललित चातक वलित, रह्यौ भुवन भरि तोर ॥७७॥

अर्थ—हे चातक! कोकिल, मोर और चकोर यद्यपि मुख के मीठे हैं पर हृदय के मलिन हैं परन्तु तुम्हारा उत्तम सुयश फैलकर सब लोको में भर गया है ॥७७॥

भावार्थ—यहाँ चातक की अपने प्रेमी घन में अनन्य आसक्ति दर्शायी है। यद्यपि कोकिल वसन्त से, मोर बादल से और चकोर चन्द्रमा से प्रेम करता (आसक्त) है तथापि वह अनन्य प्रेम नहीं, परन्तु हे चातक तुम्हें तो स्वाति-बूँद के अतिरिक्त अन्य जल से बैर है।

दोहा

माँगत डोलत दीन ह्वै, तजि घर अनत न जात।
तुलसी चातक भक्त को, उपमा देत लजात ॥७८॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे भक्त चातक की उपमा देते

लज्जा आती है जो दीन होकर न किसी से माँगता फिरता है और न घर छोड़ कहीं अन्यत्र जाता है ॥७८॥

दोहा

तुलसी तीनों लोक महँ, चातक ही को माथ।
सुनियत जासु न दीनता, कियो दूसरो नाथ ॥७९॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि तीनों लोक में केवल चातक को ही सिर है (जो अपने स्वामी के अतिरिक्त अन्य किसी के आगे नहीं झुकता) जिसकी न कभी दीनता सुनी जाती है और न यही सुना जाता है कि उसने दूसरा स्वामी कर लिया ॥७९॥

दोहा

प्रीति पपीहा पयद की, प्रगट नई पहिचानि।
याचक जगत अधीन इन, कियो कनौड़ो दानि ॥८०॥

अर्थ—यह चातक और मेघ की नयी प्रीति देखने में आयी कि सब याचक तो जगत (दानियों) के वश रहते हैं परन्तु इस चातक ने मेघ (दानी) को ही वश कर रखा है ॥८०॥

दोहा

ऊँची जाति पपीहरा, पियत न नीचो नीर।
कै याचै घनश्याम सों, कै दुख सहै शरीर ॥८१॥

अर्थ—पपीहे की जाति बड़ी ऊँची है जो कभी नीच जल को नहीं पीता। या तो मेघ से जल की याचना करता है वा अपने शरीर पर कष्ट सहन करता है ॥८१॥

दोहा

कै बरसै घन समय सिर, कै भरि जनम निरास।
तुलसी चातक याचकहिं, तऊ तिहारी आस ॥८२॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हे मेघ ! याचक चातक को केवल तुम्हारी आशा है, चाहे समय सिरे अर्थात् समय पर वृष्टि करो चाहे जीवन भर निराश रखो (वह औरों से याचना नहीं कर सकता) ॥८२॥

दोहा

चढ़त न चातक चित कबहुँ , पिय पयोद के दोष ।
याते प्रेम पयोधि बर , तुलसी योग न दोष ॥८३॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि प्यारे मेघ के दोषों पर चातक कभी चित्त नहीं देता (चाहे वह बरसे वा न बरसे) यही कारण है कि चातक का प्रेम-समुद्र सराहनीय है न कि दूषणीय ॥ ८३॥

दोहा

तुलसी चातक माँगनो , एक एक घन दानि ।
देत सो भू-भाजन भरत लेत घूँट भरि पानि ॥८४॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जगत में एक चातक ही मगन है जो एक घूँट पानी ले लेता है और मेघ भी अद्वितीय दानी है जो याचना सुनकर सारी पृथिवी और पात्र को भर देता है ॥८४॥

दोहा

हुँ अधीन याचत नहीं , सीस नाय नहिं लेय ।
ऐसे मानी माँगनहिं , को वारिद बिन देय ॥८५॥

अर्थ—ऐसे अभिमानी मगन (अर्थात् चातक) को, जो अन्य किसी की अधीनता स्वीकार नहीं करता और न सिर झुकाकर अन्य (जलाशयादि के) जल को ही लेता है, मेघ के अतिरिक्त और कौन दे सकता है ? ॥८५॥

दोहा

पवि पाहन दामिनि गरज , अति झकोर खर खीझि ।
दोष न प्रीतम रोष लखि , तुलसी रागहिं रीझि ॥८६॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मेघ पत्थर और वज्र की वृष्टि कर देता, बिजली गरजाता और खीझकर अत्यन्त तीक्ष्ण वायु के झकोरे उठा देता है तथापि (चातक) प्रेम में मस्त होकर अपने इस प्रीतम के रोष और दोष की ओर दृष्टि नहीं देता है ॥८६॥

दोहा

को न जिआवे जगत महँ, जीवन दायक पानि ।
भयो कनौड़ो चातकहिं, पयद प्रेम पहिचानि ॥८७॥

अर्थ—चातक के प्रेम को पहचान, मेघ उसके वशीभूत हो, जीवन-दायक जल देकर जगत में, किसे जीवित नहीं कर देता ? अर्थात् सब को आनंदित कर देता है ॥८७॥

दोहा

मान राखिबो माँगिबो, प्रिय सों सहज सनेहु ।
तुलसी तीनों तब फबै, जब चातक मत लेहु ॥८८॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि अपनी प्रतिष्ठा रखना, याचना और प्रीतम के साथ प्रेम रखना तब सुशोभित हो सकता है जब पपीहे से शिक्षा लो ॥८८॥

दोहा

तुलसी चातक ही फबै, मान राखिबो प्रेम ।
वक्रबुन्द लखि स्वाति को, निदरि निबाह्यो नेम ॥८९॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि अपनी प्रतिष्ठा के साथ-साथ प्रेम का भाव चातक का ही फबता है क्योंकि वह स्वाती की बूँदों की वक्र गति देखकर उसका निरादरकर अपनी प्रीति निवाहता है ॥८९॥

दोहा

चपल बरसि गर्जत तरजि, डारत कुलिश कठोर ।
चितव कि चातक जलद तजि, कबहुँ आन की ओर ॥९०॥

अर्थ—मेघ पत्थरों की वृष्टि करता है और गर्ज-तर्ज कर कठिन वज्रपात करता है तौभी क्या पपीहा उसको छोड़कर कभी दूसरे जल की ओर ताकता है ? ॥९०॥

दोहा

बरसि परुष पाहन जलद, पच्छ करै टुक टूक।
तुलसी तदपि न चाहिये, चतुर चातकहिँ चूक ॥९१॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मेघ कठिन पत्थरों की वर्षा से पपीहे की पाँख टुकड़े-टुकड़े भी कर दे तौभी चतुर चातक को चूकना नहीं चाहिए (प्रेम रखना उचित है) ॥९१॥

दोहा

रटत-रटत रसना लटी, तृषा सूखि गो अंग।
तुलसी चातक के हिये, नित नूतनहि तरंग ॥९२॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि रटते-रटते जीभ सूख जाती है और मारे प्यास के सब शरीर के अंग सूख जाते हैं तथापि चातक के हृदय में प्रेम की नित नयी लहर उठती है ॥९२॥

दोहा

गंगा यमुना सरस्वती, सात सिन्धु भरपूर।
तुलसी चातक के मते, बिनु स्वाती सब धूर ॥९३॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यद्यपि गंगा, यमुना, सरस्वती अथवा सातों समुद्र ही जल से परिपूर्ण हैं परन्तु चातक के लिए स्वाति-जल को छोड़कर सब जल धूल हैं ॥९३॥

दोहा

तुलसी चातक के मते, स्वाती पियत न पानि।
प्रेम-तृषा बढ़ती भली, घटे घटेगी कानि ॥९४॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि चातक का यह मत है कि वह स्वाती के जल को भी भर पेट नहीं पी लेता क्योंकि वह समझता है कि भर पेट जल पी लेने से प्यास ज्यो-ज्यों घटती जायगी त्यों-त्यों मेघ से प्रेम घटता जायगा और जैसे-जैसे प्यास बढ़ेगी प्रेम भी बढ़ता जायगा ॥९४॥

दोहा

सर सरिता चातक तजे, स्वाती सुधि नहिँ लेय।
तुलसी सेवक वश कहा, जो साहिब नहिँ देय ॥९५॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि पपीहे ने तालावों और नदियों का जल पीना तो छोड़ दिया पर यदि स्वाती भी उसकी सुधि न ले तो (वह कर ही क्या सकता है ?) यदि स्वामी न दे तो सेवक का अधिकार ही क्या है ? ॥९५॥

दोहा

आश पपीहा पयद की, सुनु हे तुलसीदास।
जो अँचवै जल स्वाति को, परिहरि बारह मास ॥९६॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हे मन ! तुम पपीहे की वृत्ति धारण करो जिसे केवल मेघ की ही आशा रहती है जो बारह मास के जल को छोड़कर केवल स्वाति-जल को ही पीता है ॥९६॥

दोहा

चातक घन तजि दूसरे, जियत न नाई नारि।
मरत न माँगे अर्ध जल, सुरसरि हू को बारि ॥९७॥

अर्थ—पपीहा मेघ को छोड़कर जीते जी किसी के सामने (नारि) गर्दन नहीं झुकाता और मरते-मरते भी नीचे का जल नहीं माँगता चाहे वह गंगा का ही जल क्यों न हो ॥९७॥

दोहा

ब्याधा बध्यौ पपीहरा, पर्‌यो गंगजल जाय।

चोंच मूँदि पीवै नहीं, धिक जीवन प्रण जाय ॥९८॥

अर्थ—बहेलिये ने पपीहे को मारा और वह गंगा के जल में जा गिरा। वहाँ उसने अपनी चोंच मूँद ली और जल नहीं पीया क्योंकि वह समझता है कि "इसे पीने से प्रण जाता रहेगा ॥९८॥

दोहा

वधिक बध्यौ परि पुण्यजल, उपर उठाई चोंच।

तुलसी चातक प्रेम-पट, मरत न लाई खोंच ॥९९॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि बहेलिये ने चातक को मारा और उत्तम जल में गिरने पर भी उसने चोंच ऊपर कर ली। मरते-मरते भी, उसने प्रेम-वस्त्र में खोंच नहीं लगायी ॥९९॥

दोहा

चातक सुतहिं सिखाव नित, आन नीर जनि लेहु।

यह हमरे कुल को धरम, एक स्वाति सो नेहु ॥१००॥

अर्थ—चातक नित्य अपने बच्चे को सिखाता है कि हमारे कुल का यह धर्म है कि एक स्वाति-जल से ही प्रेम रखते हैं अन्य जल ग्रहण नहीं करते ॥१००॥

दोहा

दरसन परसन आन जल, बिनु स्वाती सुनु तात।

सुनत चेंचुआ चित चुभ्यो, सुनत नीति वर वात ॥१०१॥

अर्थ—हे तात! स्वाति-जल के सिवाय अन्य जल का दर्शन और स्पर्शन भी उचित नहीं। ऐसी नीति की उत्तम बात बच्चे के चित्त में चुभ गयी ॥१०१॥

दोहा

तुलसी सुत ते कहत है, चातक बारम्बारि।
तात न तर्पण कीजियो, बिना बारिधर बारि ॥१०२॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि चातक बारम्बार अपने बच्चे को सिखाता है कि हे तात! बिना मेघ-जल के अन्य किसी जल को न पीना ॥१०२॥

दोहा

बाज-चंचु-गत चातकहिँ, भई प्रेम की पीर।
तुलसी परवश हाड़ मम, परि है पुहुमी नीर ॥१०३॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि बाज की चोंच में फँसे हुए चातक को प्रेम की वेदना हुई और सोचने लगा कि अहह! अब परवश पड़ जाने के कारण भूमि के जल में मेरी हड्डी पड़ेगी ॥१०३॥

दोहा

अंड फोरि किय चेंचुआ, तुष परो नीर निहारि।
गहि चंगुल चातक चतुर, डार्यो बाहर बारि ॥१०४॥

अर्थ—चातक ने अपने अण्डे को फोड़कर बच्चा निकाला पर उस अण्डे का तुष (फोकला) जल में गिर गया उसे चतुर चातक ने चंगुल से पकड़कर बाहर फेंक दिया (परन्तु जल में मुँह नहीं दिया) ॥१०४॥

टिप्पणी—उक्त दोहे के दूसरे चरण में एक मात्रा अधिक है वहाँ "परो" के ओकार का लघु उच्चारण करना चाहिये। किसी-किसी ग्रन्थ में "तुपा परयौ नीहार" भी पाठ है।

दोहा

होय न चातक पातकी, जीवन दानि न मूढ़।
तुलसी गति प्रह्लाद की, समुझि प्रेम-पद गूढ़ ॥१०५॥

अर्थ—गंगादि पवित्र नदियो के निरादर करने से चातक पापी नहीं कहला सकता और मेघ भी मूर्ख नहीं (दोनो में परस्पर प्रेम का नाता है) तुलसीदास कहते हैं कि प्रह्लाद की नाईं होकर प्रेम के गूढ़ पद को तुम पहचानो ॥१०५॥

दोहा

तुलसी के मत चातकहिँ, केवल प्रेम-पियास।
पिअत स्वाति-जल जान जग, तावत बारह मास ॥१०६॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जब स्वाती का ही जल पीना है, तब मेरे मतानुसार केवल पपीहे को ही प्रेम की प्यास रहती है क्योंकि यदि स्वाती में वर्षा न हुई तो पुन बारह मास उसी की आशा पर वह रह जाता है, इसे ससार जानता है ॥१०६॥

दोहा

एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथ बर, चातक तुलसीदास ॥१०७॥

अर्थ—एक ही का भरोसा, उसी एक का विश्वास, उसी का बल और उसी एक की आशा है। श्रीरघुनाथजी स्वाती के पवित्र जल और तुलसीदास चातक हैं ॥१०७॥

टिप्पणी—यहाँ पर कवि ने इतनी अवतरणिका के अनन्तर इस लम्बी भूमिका का आशय स्पष्ट किया है कि स्वाती के जल तथा चातक में जो प्रेम का नाता है वही नाता श्रीरघुनाथजी और मुझ तुलसीदास में है।

दोहा

आलवाल मुक्ता हलनि, हिय सनेह तरुमूल।
हेरु हेरु चित चातकहिँ, स्वाति सलिल अनुकूल ॥१०८॥

अर्थ—हृदयरूपी मुक्ता के थाले में रामजी के स्नेहरूपी वृक्ष का मूल है। (गोसाईंजी कहते हैं कि) हे चित्त ! जिस प्रकार पपीहे स्वाति-जल के अनुयायी रहते हैं उसी भाँति तू भी अपने हृदय में उस मूल को हेरो हेरो ॥१०८॥

दोहा

राम-प्रेम विन दूबरे, राम-प्रेम सह पीन।
विशद सलिल सरवर वरण, जन तुलसी मन मीन ॥१०९॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिस प्रकार तालाब के उत्तम स्वच्छ जल में मछलियाँ मोटी और उससे पृथक होने पर दुखी रहती हैं उसी प्रकार हे तुलसीदास तुम अपने मन को मछली जैसी प्रकृति का बनाकर सदा राम की भक्ति में पीन (सुखी) और उससे रहित होने में दुर्बल (दुःखी) रहो ॥१०९॥

दोहा

आपु बधिक बर भेष धरि, कुहै कुरंगम राग।
तुलसी जो मृग मन मुरै, परै प्रेम पट दाग ॥११०॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मृगों को मारनेवाला बहेलिया आखेट के समय उत्तम वेष धारणकर मृगों को मोहित करनेवाला मनमोहन राग गाता है जिसे सुनकर मृग बेसुध होकर गिर जाते हैं और वह बधिक उन्हें मार डालता है। यदि मृग का मन उस राग से फिर जाय तो प्रेम-पट में दाग पड़ जाय ॥११०॥

श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदास विरचितायां सप्तशतिकायां
प्रेम-भक्ति निर्देशः प्रथमस्सर्गः श्रीमद्रामचन्द्र द्विवेदि
रचित सुवोधिनी टीका युक्तः समाप्तः ॥१॥

सर्ग प्रथम तुलसी रचित, प्रेमभक्ति निर्देश।
पढ़ि मुद मंगल लहहिं जन, श्रीपति तिलक विशेष ॥

द्वितीय सर्ग

अथ द्वितीयस्सर्गः सार्थः प्रारभ्यते

दोहा

खेलत बालक व्याल सँग, पावक मेलत हाथ।
तुलसी शिशु पितु मातु इव, राखत सिय रघुनाथ ॥१॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिस प्रकार बालक अज्ञानतावश सर्प के साथ खेलते हैं और कभी अग्नि में भी हाथ डाल देते हैं परन्तु उनके माता-पिता सदा उनकी रक्षा करते हैं। इसी प्रकार अनेक अपराध करने पर भी, माता-पिता के तुल्य श्रीसीताराम अपने भक्तजनो की रक्षा करते हैं ॥१॥

दोहा

तुलसी केवल राम-पद, लागै सरल सनेह।
तौ घर घट बन बाट महँ, कतहुँ रहै किन देह ॥२॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यदि तुम्हारा केवल रामचन्द्र के चरणों के साथ सरल स्नेह हो गया तो शरीर घर, नदी के घाट, बन अथवा बाट में कहीं भी रहे कोई क्षति नहीं ॥२॥

दोहा

कै ममता करु राम-पद, कै ममता करु हेल।
तुलसी दो महँ एक अब, खेल छाड़ि छल खेल ॥३॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हे मन ! या तो तुम श्रीरामजी के चरणों से प्रेम कर अथवा सांसारिक प्रेम-बन्धनों की अवहेलना (त्याग) कर, अब इन दोनों खेलों में से किसी एक खेल को छल छोड़कर खेल ॥३॥

दोहा

कै तोहिं लागहिँ राम प्रिय, कै तु राम-प्रिय होहु ।
दुइ महँ उचित सुगम समुझि, तुलसी करतब तोहु ॥४॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि या तो तुमको ही श्रीराम प्रिय लगें अथवा तू ही राम का प्यारा बन । इन दोनों में जो उचित और सुगम समझो वही तुम्हें करना चाहिये ॥४॥

टिप्पणी—उपर्युक्त दोनों दोहों में गोसाईंजी ने जो कुछ कथन किया है उसका भाव यह है कि भक्त को उचित है कि यदि बन पड़े तो श्रीरामजी में प्रेम दृढ़ करे, यदि उससे यह न हो सके तो क्रम-क्रम से परिवार, घर, स्त्री और पुत्रादि की ममता से पृथक् हो उपासनादि साधनों से अपने अन्तःकरण को पवित्र करे तब वह भगवान का प्यारा बन सकता है ।

दोहा

रावणारि के दास सँग, कायर चलहिँ कुचाल ।
खर दूषण मारीच सम, मूढ़ भये वश काल ॥५॥

अर्थ—रावण के शत्रु (श्रीरामजी) के सेवक के साथ नीच जन कुचाल चलते हैं । समझिये कि ऐसे मूर्ख खर, दूषण और मारीच जैसे मृत्यु के वशीभूत हुए हैं ॥५॥

दोहा

तुलसी पति-दरबार महँ, कमी वस्तु कछु नाहिं ।
कर्म हीन कलपत फिरत, चूक चाकरी माहिं ॥६॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि स्वामी के दरबार में किसी भी वस्तु की कमी नहीं है परन्तु भाग्यहीन जन सेवा में चूककर कलपते फिरते हैं ॥६॥

भावार्थ—श्रीरघुनाथजी की सेवा करने से सब कुछ मिल सकता है।

दोहा

राम गरीब-नेवाज हैं, राज देत जन जानि।
तुलसी मन परिहरत नहिं, घुरबिनियाँ की बानि ॥७॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यद्यपि रामचन्द्र दीन-दयालु हैं और अपना भक्त समझकर राज तक दे देनेवाले हैं परन्तु यह नीच प्रकृति वाला मन घुरबिनियाँ (घूरे पर पड़े अन्न को चुनने) की आदत नहीं छोड़ता ॥७॥

भावार्थ—कवि के कहने का भाव यह है कि यह नीच मन भगवान की उपासना छोड़कर इधर-उधर संसार में भटकता फिरता है जिससे इसको नाना प्रकार के कष्ट होते हैं। यदि ईश्वराभिमुख हो जाय तो निश्चय ही इसे सांसारिक सुख और स्वर्ग की भी प्राप्ति हो।

दोहा

घर कीन्हे घर होत है, घर छाँड़े घर जाय।
तुलसी घर बन बीच ही, रहौ प्रेम पुर छाय ॥८॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मन को घर (परिवारादि) में आसक्त रखने से पुन: पुनः घर मिलता है (अर्थात् आवागमन नहीं छूटता) और यदि घर छोड़कर वन में गये और मन में वासना बनी रही तो व्यर्थ घर छोड़ा। अतः घर और वन के बीच प्रेमरूपी नगरी में बसना ही अच्छा है ॥८॥

भावार्थ—घर छोड़कर वन जाने से कोई लाभ नहीं, वासना का परित्याग करना चाहिये।

दोहा

राम नाम रटिबो भलो, तुलसी खता न खाय।
लरिकाई ते पैरबो, धोखे बूड़ि न जाय ॥९॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सदा राम-नाम का स्मरण करनेवाला कहीं धोखा नहीं खाता जैसे लड़कपन का पैराक कभी धोखे से भी नहीं डूब सकता ॥९॥

दोहा

तुलसी विलंब न कीजिये, भजि लीजे रघुबीर।
तन तरकस ते जात है, श्वास सार सो तीर ॥१०॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि विलम्ब मत करो, श्रीरघुनाथजी का भजन करो क्योंकि इस शरीररूपी तरकस से यह सार साँस तीर की नाईं निकला जा रहा हैं ॥१०॥

दोहा

राम नाम सुमिरत सुयश, भाजन भये कुजाति।
कुतरु कुसरु पुर राज बन, लहत भुवन विख्याति ॥११॥

अर्थ—श्रीराम-नाम के स्मरण करने से कुत्सित जातियों के लोग भी यशस्वी बन गये, स्पष्ट देख लो कि जङ्गल के दूषित वृक्ष, कलुषित सरोवर, ग्राम और राज्य भी श्रीराम के पदार्पण से संसार में प्रसिद्धि पा गये ॥११॥

भावार्थ—कवि के कथन का भाव यह है कि श्रीराम-नाम के स्मरण करने से शबरी और निषादादि जो नीच जाति के मनुष्य थे उनका सुयश सर्वत्र फैल गया और दण्डक वन के पञ्चवटी इत्यादि जङ्गली वृक्ष, पम्पा इत्यादि सरोवर छोटे-छोटे ग्राम और किष्किन्धा इत्यादि जङ्गली राज्य भी श्रीराम के पदार्पण और निवास से परम पवित्र माने जाते हैं।

दोहा

नाम महातम साखि सुनु, नर की केतिक बात।
सरवर पर गिरिवर तरे, ज्यों तरुवर के पात ॥१२॥

अर्थ—नाम-माहात्म्य की साक्षी सुनो, यदि मनुष्य तर गया तो कौन सी बड़ी बात रही? अरे! बड़े-बड़े पर्वत समुद्र के जल पर ऐसे तैर गये जैसे वृक्षों के पत्ते ॥१२॥

दोहा

ज्ञान गरीबी गुण धरम, नरम वचन निरमोष।
तुलसी कबहुँ न छाड़िये, शील सत्य सन्तोष ॥१३॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि ज्ञान, दीनता, गुण, धर्म, शील, सत्य और सन्तोष का कभी त्याग न करो और सर्वदा निरमोष (निर्मोक्ष) बने रहो ॥१३॥

भावार्थ—ऊपर कहे गुणों को धारण करते हुए मोक्ष तक की भी वासना से पृथक् रहो।

दोहा

असन बसन सुत नारि सुख, पापिहुँ के घर होइ।
सन्त समागम रामधन, तुलसी दुर्लभ दोइ ॥१४॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि भोजन, वस्त्र, पुत्र और स्त्री आदि का सुख तो पापियों के घर में भी देखा जाता है परन्तु महात्माओं का सत्सङ्ग और श्रीरामनाम जैसे पवित्र नाम ये ही दोनों धन दुर्लभ हैं ॥१४॥

दोहा

तुलसी तीरहिँ के बसे, अवसि पाइये थाह।
वेगहिँ जाइ न पाइये, सर सरिता अवगाह ॥१५॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि बड़े-बड़े जलाशयों के किनारे कुछ दिन बस जाने से उसके जल का पता लग जाता है (कि कितना जल है) परन्तु अकस्मात् जाने से नदी और तालाब के जल का भी थाह नहीं मिलता ॥१५॥

भावार्थ—संसार ही एक अज्ञात अथाह समुद्र है, इसमें यदि मन को एक बारगी फँसा दोगे तो अवश्य डूब जाओगे। यदि इसके पार जाने की इच्छा हो तो इससे न तो भागो और न एकाएक इसमें तैरने लगो, प्रत्युत् मन को किनारे रखकर ठहरो अर्थात् संसार में रहते हुए भी वासना में लिप्त न हो जाओ ऐसा करते-करते स्वयं संसाररूपी समुद्र क्षुद्र जलाशयवत् थाह एवं गम्य बन जायगा।

दोहा

डग अन्तर मग अगम जल, जलनिधि जल संचार।
तुलसी करिया कर्म वश, बूड़त तरत न बार ॥१६॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यदि आपके साथ में सुकर्मरूपी मल्लाह मौजूद हो तो यह अगम भवसागर और अथाह जल का सञ्चार आपके लिए रास्ते के एक डेग (पग) जल के जैसा है जिसको पार करना कुछ कठिन नहीं होता और यदि ऐसा नहीं है तो डूबने में देर ही क्या है? ॥१६॥

दोहा

तुलसी हरि अपमान ते, होत अकाज समाज।
राज करत रज मिलि गयो, सदल सकुल कुरुराज ॥१७॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि भगवान के निरादर करने से बड़ी भारी हानि होती है, देख लीजिये राज करता हुआ दुर्योधन सेना और कुल सहित धूल में मिल गया ॥१७॥

टिप्पणी—दुर्योधन ने श्रीकृष्ण भगवान की आज्ञा नहीं मानी जिसका प्रतिफल पाया।

दोहा

तुलसी मीठे बचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरण यह मंत्र है, परिहरु बचन कठोर ॥१८॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मीठे वचनो से सर्वत्र सुख प्राप्त हो सकता है, कठोर वचनो का परित्याग कर मीठे वचन बोलना ही वशीकरण मन्त्र है ॥१८॥

दोहा

राम-कृपा ते होत सुख, राम-कृपा बिन जात।
जानत रघुबर भजन ते, तुलसी शठ अलसात ॥१९॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि श्रीरघुनाथजी की कृपा से ही सुख प्राप्त होता है और बिना भगवत्कृपा के नष्ट हो जाता है ऐसा जानते हुए भी अज्ञानी जन भक्ति करने में आलस्य करते हैं ॥१९॥

दोहा

सन्मुख है रघुनाथ के, देहु सकल जग पीठ।
तजे केंचुरी उरग कहँ, होत अधिक अति दीठ ॥२०॥

अर्थ—श्रीरघुनाथजी के सम्मुख होकर समस्त संसार की ओर पीठ करो अर्थात् लिप्त न होवो (तब अन्तर्दृष्टि विमल होगी) जैसे सर्प जब केंचुली छोड़ता है तब उसकी दृष्टि दिव्य हो जाती है ॥२०॥

दोहा

मर्यादा दूरहि रहे, तुलसी किये बिचारि।
निकट निरादर होत है, जिमि सुरसरि बरबारि ॥२१॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि विचारने से जान पड़ता है कि दूर रहने से ही प्रतिष्ठा अधिक होती है। जैसे परम पवित्र जलवाली गङ्गा के समीप बसनेवाले उसका निरादर करते हैं (परन्तु दूर बसनेवाले परम प्रतिष्ठा करते हैं) ॥२१॥

दोहा

राम कृपानिधि स्वामि सम, सब विधि पूरण काम ।
परमारथ परधाम बर, सन्त सुखद बलधाम ॥२२॥

अर्थ—मेरे स्वामी कृपालु रामचन्द्र सब प्रकार पूर्णकाम, मुक्ति देनेवाले, श्रेष्ठ धामवाले, सज्जनों को सुखदायक तथा महान बलशाली हैं ॥२२॥

दोहा

रामहिँ जानहिँ राम रट, भजु रामहिँ तजु काम ।
तुलसी राम अजान नर, किमि पावहिँ परधाम ॥२३॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं सारी कामनाओं को छोड़कर श्रीराम को ही पहचानो, उन्हींका नाम जपो और उन्हींका भजन करो जो राम से अपरिचित जन हैं वे परमधाम कैसे पा सकते हैं ॥२३॥

दोहा

तुलसी-पति-रति अङ्क सम, सकल साधना सून ।
अंक-रहित कछु हाथ नहिँ, सहित अंक दस गून ॥२४॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि श्रीरघुनाथजी की भक्ति अङ्क जैसी और सब अन्यान्य साधन शून्यवत् हैं, यदि शून्य अकेला रहा तो उसका कुछ भी मूल्य नहीं होता पर वही शून्य जब अंक के साथ रहा तो उस अंक के मूल्य को भी दस गुना बढ़ा देता है ॥२४॥

भावार्थ—गोसाईंजी महाराज के कथन का भाव यह है कि चाहे

मनुष्य हज़ार जप-योग करे पर यदि हृदय में भगवत्प्रेम नहीं तो सारे साधन निरर्थक हैं पर यदि वे ही साधन भगवत्प्रेम के साथ हैं तो उनका महत्व बहुत बढ़ जाता है। जैसे शून्य किसी अंक के साथ रहने से अपना मूल्य रखता हुआ उस अक के मूल्य को भी दस गुना बढ़ा देता है।

दोहा

तुलसी अपने राम कहँ, भजन करहु इक अंक।
आदि अन्त निरबाहिबो, जैसे नव को अंक ॥२५॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि एक अङ्क (अर्थात् दृढ़ होकर) अपने राम का ही भजन करो। वही राम आदि से अन्त तक तुम्हारा निर्वाह करेंगे, जिस प्रकार नव का अङ्क आद्योपान्त नव ही रह जाता है ॥२५॥

दोहा

दुगुने तिगुने चौगुने, पंच षष्ठ औ सात।
आठौ ते पुनि नौ गुने, नौ के नव रहि जात ॥२६॥
नौ के नव रहि जात हैं, तुलसी किये विचार।
रम्यौ राम इमि जगत मे, नहीं द्वैत विस्तार ॥२७॥
तुलसी राम सनेह करु, त्याग सकल उपचार।
जैसे घटत न अंक नौ, नव के लिखत पहार ॥२८॥

अर्थ—नौ के दूने, तिगुने, चौगुने, पँच गुने, छ. गुने, सात गुने, आठ गुने अथवा नौ गुने भी करो तौभी उन अंकों को जोड़ देने से नौ ही रह जाता है ॥२६॥

तुलसीदास कहते हैं कि जिस प्रकार विचार करने से ऊपर के नियमानुसार नव सब अकों में व्यापक है उसी भाँति इस जगत में एक 'राम' व्यापक हैं, कोई द्वैत वस्तु नहीं ॥२७॥

तुलसीदास कहते हैं कि सब उपायों को छोड़कर राम से स्नेह करो तब तुम्हें कोई हानि नहीं, जैसे नव का पहाड़ा लिखने में नव अंक की हानि नहीं होती। जैसे—

९ = ९ = ९
१८ = १ + ८ = ९
२७ = २ + ७ = ९
३६ = ३ + ६ = ९
४५ = ४ + ५ = ९
५४ = ५ + ४ = ९
६३ = ६ + ३ = ९
७२ = ७ + २ = ९
८१ = ८ + १ = ९
९० = ९ + ० = ९ ॥२८॥

दोहा

अंक अगुन आखर सगुन, समुझ उभय प्रकार।
खोये राखे आपु भल, तुलसी चारु विचार ॥२९॥

अर्थ—समझ कर देखो अङ्क तथा अक्षर निर्गुण और सगुण दो प्रकार के हैं। तुलसीदास कहते हैं कि अपने भले के लिए उत्तम विचार करके रखो अथवा खोओ ॥२९॥

भावार्थ—एक से नौ तक जितने अंक तथा अकार से लेकर हकार तक जितने अक्षर हैं ये सब बोलने में निराकार पर लिखने में साकार हैं। गोसाईंजी कहते हैं कि "राम" भी व्यापक भाव से सर्वत्र व्यापी होने से निराकार और शरीरधारी दृष्टिगत होने से साकार हैं। यदि ज्ञानमार्ग से निराकार समझकर उपासना करो तौभी भला, और साकार समझ भक्ति करो तौभी उत्तम ही है। और यदि उपासना तथा भक्ति इन दोनों मार्गों

में किसी का अनुसरण न किया तो जानो सर्वस्व खोया। इसमें तुम स्वतन्त्र हो जिसमें अपनी भलाई समझो वही करो।

दोहा

एहि विधि ते सब राम मय, समुझहु सुमति निधान।
यातें सकल विरोध तजु, भजु सब समुझु न आन ॥३०॥

अर्थ—हे बुद्धिमान जन! जगत भर को इस प्रकार श्रीराममय समझ सब से अद्वैत भावहोकर विरोध और द्वैत का भाव नष्ट कर भजन करो॥३०॥

दोहा

राम कामना-हीन पुनि, सकल काम करतार।
याही ते परमातमा, अव्यय अमल उदार ॥३१॥

अर्थ—श्रीराम स्वयं तो इच्छारहित हैं परन्तु दूसरो की सारी इच्छाओं की पूर्ति करनेवाले हैं इस कारण अव्यय (नाशरहित), अमल (विकार हीन) और उदार परमात्मा हैं ॥३१॥

दोहा

जो कछु चाहत सो करत हरत भरत गत भेद।
काहु सुखद काहू दुखद, जानत है बुध वेद ॥३२॥

अर्थ—अज्ञानी पुरुषो की यह धारणा है कि भगवान जो कुछ चाहते हैं वही कर डालते हैं, किसी का घर भर देते हैं, किसी का सर्वस्व अपहरण कर लेते हैं एवं किसी को सुख देते हैं और किसी को दुख देते हैं परन्तु वेद और बुद्धिमान जन जानते हैं कि भगवान भेद-रहित हैं, यह सब निज कर्मानुसार जीव दुख सुख का भोग करते हैं ॥३२॥

दोहा

सन्त कमल मधुमास कर, तुलसी वरण विचार।
जग सरवर तर भरण कर, जानहु जल दातार ॥३३॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि इस संसाररूपी सरोवर में सन्त जन चैत्रमास के कमल हैं और 'राम' ऐसे उत्तम वर्ण का विचार और जप ही सरोवर को भलीभाँति वृष्टि द्वारा भरनेवाला मेघ है ॥३३॥

दोहा

एक सृष्टि महँ जाहि विधि, प्रगट तीनितर भेद।
सात्विक राजस तम सहित, जानत है बुध वेद ॥३४॥

अर्थ—जिस प्रकार एक ही प्रकृति के रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण तीन प्रसिद्ध भेद हैं इसको बुद्धिमान और वेद जानते हैं ॥३४॥

दोहा

ता विधि रघुवर नाम महँ, वर्त्तमान गुण तीन।
चन्द्र भानु अपि अनल विधि, हरि हर कहहिं प्रवीन ॥३५॥

अर्थ—प्रवीणों का कथन है कि उसी प्रकार श्रीराम-नाम में भी सूर्य्य, चन्द्र और अग्नि अथच ब्रह्मा, विष्णु और महादेव इन तीनो के गुण वर्त्तमान हैं ॥३५॥

दोहा

अनल अकार रकार रवि, जानु मकार मयंक।
हरि अकार 'र' कार विधि, 'म' महेश निःशंक ॥३६॥

अर्थ—'राम' नाम में 'र' कार सूर्य्य, 'अकार' अग्नि और 'म' कार ही चन्द्रमा है। पुन 'र' कार ब्रह्मा, 'अ' कार विष्णु तथा 'म' कार महादेव हैं, ऐसा जानो ॥३६॥

टिप्पणी—तीसरे और चौथे चरण में 'र' और 'म' पर पूरा ठहरना चाहिये तब पद बैठेंगे। किन्हीं-किन्हीं पोथियों में पदों के बैठाने के लिए 'रर कार' और 'मम महेश' ऐसा पाठ है परन्तु मेरी समझ में उसकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

दोहा

बन अज्ञान कहँ दहन कर, अनल प्रचंड रकार।
हरि अकार हर मोह तम, तुलसी कहहिं विचार ॥३७॥

अर्थ—तुलसीदास विचारकर कहते हैं कि अज्ञानरूपी बन को जलाने के लिए "रकार" प्रचंड अग्नि है और मोहरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए "अकार" सूर्य है ॥३७॥

दोहा

त्रिविध ताप हर शशि सतर, जानहु मर्म मकार।
विधि हरि हर गुण तीनि को, तुलसी नाम अधार ॥३८॥

अर्थ—'मकार' का मर्म तीनों प्रकार के तापों के हरनेवाले चन्द्रमा जैसा समझो। इस भाँति ब्रह्मा, विष्णु और शिव के गुण से युक्त राम का नाम ही तुलसीदास का आधार है ॥३८॥

दोहा

भानु कृशानु मयंक को, कारण रघुवर नाम।
विधि हरि शम्भु शिरोमणि, प्रणत सकल सुखधाम ॥३९॥

अर्थ—श्रीराम ऐसा नाम सूर्य, अग्नि और चन्द्रमा का कारण (उत्पादक) है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव का शिरोमणि तथा भक्तों के लिए सब सुखों का भण्डार है ॥३९॥

दोहा

अगुण अनूपम सगुण निधि, तुलसी जानत राम।
कर्त्ता सकल जगत्त को, भर्त्ता सब मन काम ॥४०॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैं राम को निर्गुण, उपमारहित,

उत्तम गुणों का निधान, सम्पूर्ण विश्व का बनानेवाला और सब मन-कामनाओं का पूर्ण करनेवाला समझता हूँ ॥४०॥

दोहा

छत्र मुकुट सम विद्धि अल, तुलसी युगल हलन्त।
सकल बरन सिर पर रहत, महिमा अमल अनन्त ॥४१॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि 'राम' नाम के र् तथा म् दोनों हल, रेफ और अनुस्वार बनकर सब वर्णों के सिर पर रहते हैं और उनकी महिमा पूर्ण, निर्मल तथा अनन्त जानो ॥४१॥

दोहा

रामानुज सतगुण विमल, स्याम राम अनुहार।
भरता भरत सो जगत को, तुलसी लसत अकार ॥४२॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि रामजी के छोटे भाई भरत जो राम जैसे ही श्याम वर्णवाले, स्वच्छ, सतोगुणरूप, जगत का पालन करनेवाले विष्णु तद्वत 'अकार' जैसे सुशोभित हैं ॥४२॥

दोहा

राजत राजसता अनुज, बरद धरणि धर धीर।
विधि विहरत अति आशु कर, तुलसी जन गन पीर ॥४३॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि उस भरत के अनुज लक्ष्मण रजोगुण स्वरूप, वरदायक, पृथिवी को धारण करनेवाले, धीर और भक्तों की पीड़ा को अत्यन्त शीघ्र हरण करनेवाले ब्रह्मारूप हैं ॥४३॥

दोहा

हरन कारन संकट सतर, समर धीर बलधाम।
'म' महेश अरि दवन बर, लखन अनुज अरि काम ॥४४॥

अर्थ—महान संकटों को भी शीघ्र हरण करनेवाले, बल के धाम, युद्ध में परम धीर, शत्रुओं के जीतनेवाले, काम के शत्रु शत्रुघ्न मकार स्वरूप महादेव हैं ॥४४॥

दोहा

राम सदा सम शील धर, सुख सागर परधाम ।
अज कारन अद्वैत नित, समतर पद अभिराम ॥४५॥

अर्थ—श्रीरामजी सर्वदा सम शील धारण करनेवाले, सुखसमुद्र, परधामवाले, अजन्मा, कारण, अद्वैत तथा अत्यन्त समदर्शी और सर्वदा आनन्द पदवाले हैं ॥४५॥

दोहा

होनहार सह जान सब, विभव बीच नहिँ होत ।
गगन गिरह करिबो कवै, तुलसी पढ़त कपोत ॥४६॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सब कोई ऐसा ही निश्चय करते हैं कि होनहार जीव जन्म से ही होनहार होते हैं जीव में कोई शक्ति बीच में नहीं होती। स्पष्ट देख लो आकाश में गिरह-बाज कबूतर कहाँ पढ़ने जाता है ? ॥४६॥

भावार्थ—गोसाईंजी महाराज के कथन का भाव यह है कि सब गुण जीवों में जन्म से ही स्वाभाविक होना है बीच मे बिना सिखाये पढ़ाये उन गुणों का विकास होने लगता है। इसी आशय के कई दोहे और भी आगे कवि ने कहे हैं।

दोहा

तुलसी होत सिखै नहीं, तन गुन दूषन धाम ।
भखन शिखिनि कौने कह्यौ, प्रगट बिलोकहु काम ॥४७॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यह शरीर गुण और दोषों का धाम

सीख कर नहीं होता (अर्थात् स्वाभाविक है) प्रत्यक्ष देखो मयूरनी को यह कौन सिखलाता है कि वह मयूर के शरीर से स्रावित वीर्य्य को भक्षण कर जाती है ॥४७॥

दोहा

गिरत अंड सम्पुट अरुन, जमत पक्ष अनयास।
अलल भुवन उपदेश केहि, जात सुउलटि अकास ॥४८॥

अर्थ—अलल पक्षी सदा ऊपर उड़ता रहता है कभी भूमि पर नहीं आता उसका अण्डा भूमि की ओर चलता है परन्तु मार्ग में ही फूटकर लाल सम्पुट तो भूमि पर आ जाता है और उस अंडे को अनायास पक्ष हो जाते हैं और वह उलटकर पुन आकाश में ही उड़ने लगता है। गोसाईं जी कहते हैं कि बतलाओ उस अंडे को ऐसा करने का उपदेश कौन देता है ? ॥४८॥

दोहा

विविध चित्र जलपात्र विच, अधिक न्यून समसूर।
कब कौने तुलसी रचे, केहि विधि पक्ष मयूर ॥४९॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जलपात्र (तड़ागादि) के बीच सूर्य्य की किरण पड़ने से अधिक, न्यून अथवा समान के विविध भाँति के जो चित्र बन जाते हैं उन्हें कौन बनाता है ? और मयूर की पाँखें कब, किस प्रकार कौन बनाता है ? ॥४९॥

दोहा

काक सुता गृह ना करै, यह अचरज बड़ वाय।
तुलसी केहि उपदेश सुनि, जनित पिता घर जाय ॥५०॥

अर्थ—कोयलें अपने घर अर्थात् घोंसले नहीं बनातीं (अपने बच्चों

को काकी (काग की स्त्री) के खोते में रख आती हैं और काकी उसे निज पुत्र जान पालती है) तुलसीदास कहते हैं कि उसके बच्चे किसके उपदेश सुनकर पुन. अपने पिता के घर चले आते हैं ॥५०॥

दोहा

सुपथ कुपथ लीन्हे जनित, स्व स्वभाव अनुसार ।
तुलसी सिखवत नाहिं शिशु, मूषक हनन मजार ॥५१॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि अपने-अपने कुल की कुरीति तथा सुरीति लिये हुए सब प्राणी उत्पन्न होते हैं । बिलाव अपने बच्चे को चूहा मारने का ढंग सिखलाने नहीं जाता ॥५१॥

दोहा

तुलसी जानत है सकल, चेतन मिलत अचेत ।
ोट जात छड़ि तिय निकट, बिनहिं पढ़े रति देत ॥५२॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि अचेत पशु-पक्षी आदि भी परस्पर चेतन जैसे मिलते तथा संसार के सब व्यवहार जानते हैं । एक कीट भी स्वजाति की स्त्री के पास जब चला जाता है तो वह बिना कहे, बोले ही तिदान देती है ॥५२॥

दोहा

होनहार सब आप ते, वृथा सोच कर जौन ।
कंज शृंग तुलसी मृगन, कहहु अमेठत कौन ॥५३॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सोच करनेवाले व्यर्थ सोच करते हैं, होनी आप से आप होती जाती है । बतलाओ कमल को कौन सिखलाता है के दिन में खिलता है और रात को सम्पुटित हो जाता है । इसी प्रकार मृगों की सींग को कौन अमेठ-अमेठ कर टेढ़ी बनाता है ? ॥५३॥

दोहा

सुख चाहत सुख में बसत, है सुख रूप विशाल ।

संतत जा विधि मानसर, कबहुँ न तजत मराल ॥५४॥

अर्थ—जिस प्रकार हंस मानसरोवर को कभी नहीं छोड़ता उसी प्रकार सुख की चाहना करनेवाले भी सुख में वास करते हैं अतः सुख का स्वरूप विशाल है ॥५४॥

दोहा

नीति प्रीति यश अयश गति, सब कहँ शुभ पहचान ।

बस्ती हस्ती हस्तिनी, देत न पति रतिदान ॥५५॥

अर्थ—नीति, प्रीति, यश और अपयश की पहचान सब को भली भाँति है देख लो हथिनी अपने पति हाथी को बस्ती में रतिदान नहीं करती प्रत्युत दोनों जल में समागम करते हैं ॥५५॥

दोहा

तुलसी अपने दुःख ते, को कहु रहत अजान ।

कीश कुन्त अंकुर बनहिं, उपजत करत निदान ॥५६॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि अपने दुःखद शत्रु से कौन अपरिचित रहता है ? जंगल में कुन्त (काँटेदार वृक्ष) के अंकुर को निकलते ही वानर नष्ट कर देते हैं ॥५६॥

दोहा

यथा धरणि सब बीज मय, नखत निवास अकास ।

तथा राम सब धर्म मय, जानत तुलसीदास ॥५७॥

अर्थ—जिस प्रकार पृथिवी सब बीजमय और आकाश नक्षत्रों से भरा हुआ है उसी प्रकार मैं तुलसीदास राम को सर्व धर्ममय जानता हूँ ॥५७॥

दोहा

पुहुमी पानी पावकहुँ, पवनहुं माहिँ समात।
ताकहँ जानत राम अपि, बिनु गुरु किमि लखि जात ॥५८॥

अर्थ—पृथिवी, जल, अग्नि और वायु में भी व्यापक राम को बिना गुरु के उपदेश के निश्चय करके कोई कैसे जान सकता है?॥५८॥

दोहा

अगुण ब्रह्म तुलसी सोई, सगुण बिलोकत सोइ।
दुख सुख नाना भाँति को, तेहि विरोध ते होइ ॥५९॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि निर्गुण ब्रह्म ही विचार द्वारा देखिये तो सगुण प्रतीत होता है। उसी परमात्मा के विरुद्ध आचरण कर जीव दुखी, तथा अनुकूल आचरण कर सुखी हुआ करते हैं ॥५९॥

भावार्थ—कवि के कथन का भाव यह है कि जो ईश्वर के भक्त हैं वे सुख दु:ख के वन्धन से रहित हैं पर जो भक्तिहीन हैं वे अपने उत्तम और निकृष्ट कर्मानुसार सुखी और दुखी हुआ करते हैं।

दोहा

सूर यथा गण जीति अरि, पलटि आव चलि गेह।
तिमि गति जानहिँ रामकी, तुलसी सन्त सनेह ॥६०॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिस प्रकार शूर-वीर पुरुष शत्रुदल को जीतकर घर चले आते हैं उसी प्रकार महात्मा जन (काम-क्रोधादि शत्रुदल का दलन कर) स्नेहपूर्वक राम की भक्ति करते और जानते हैं ॥६०॥

दोहा

परमातम पद राम पुनि, तीजे सन्त सुजान।
जे जग महँ बिचरहिँ धरे, देह विगत अभिमान ॥६१॥

अर्थ—गोसाईंजी कहते हैं कि इन तीन पदों को पहचानो—(१) सर्व व्यापी ब्रह्मपद, (२) रामपद और (३) ऐसे सन्त महात्माओं का पद जो अभिमान और शरीर की सुधिरहित होकर ससार में विचरते रहते हैं ॥६१॥

दोहा

चौथी संज्ञा जीव की, सदा रहत रत काम।
ब्राह्मण से तन रामपद, निसि बासर बशवाम ॥६२॥

अर्थ—चौथी संज्ञा उन जीवों की है जो सर्वदा काम में तत्पर हो रहे हैं अर्थात् विषयी हैं शरीर तो ब्राह्मण का मिला जिसका कर्त्तव्य राम-पद अर्थात् ब्रह्म में लीन रहने का था परन्तु रात-दिन स्त्रियों के वशीभूत हो रहे हैं ॥६२॥

दोहा

सुख पाये हर्षत हँसत, खीझत लहै विषाद।
प्रगटत दुरत निरय परत, केवल रत विष स्वाद ॥६३॥

अर्थ—विषयी जीवों की गति कहते हैं। वे सुख पाकर हँसते और प्रसन्न होते हैं तथा दु ख पाकर खिन्न रहते हैं। इसी प्रकार विषय रूपी विष के स्वाद को चखते रहते हैं अत जन्म लेते, मरते और नरक मे पड़ते हैं ॥६३॥

दोहा

नाना विधि की कल्पना, नाना विधि को सोग।
सूक्षम अरु अस्थूल तन, कबहुँ तजत नहिँ रोग ॥६४॥

अर्थ—सूक्ष्म और स्थूल दोनों ही शरीरों मे सदा कोई न कोई रोग लगा ही रहता है। स्थूल शरीर में नाना प्रकार के ज्वरादि रोग, शोक लगे रहते हैं एवं सूक्ष्म शरीर में काम-क्रोधादि नाना प्रकार की कल्पनाएँ उठती रहती हैं ॥६४॥

दोहा

जैसे कुष्टी को सदा, गलित रहत दोउ देह ।
बिन्दहु की गति तैसिये, अन्तरहू गति एह ॥६५॥

अर्थ—जैसे कोढ़ी के स्थूल और सूक्ष्म दोनो शरीर गलते रहते हैं उसी प्रकार उसके बिन्दु (वीर्यादि) इस प्रकार दूषित हो जाते हैं कि उसके पुत्र पौत्रादि भी उस दूषण से नहीं बचते और इसी प्रकार आन्तरिक अवयवों की भी वैसी ही दशा रहती है, अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त अहङ्कारादि तत्व भी कलुषित होकर पुनर्जन्म में भी विकृत ही रहते हैं ॥६५॥

दोहा

त्रिधा देह गति एक विधि, कबहूँ ना गति आन ।
विविध कष्ट पावत सदा, निरखहिं सन्त सुजान ॥६६॥

अर्थ—इस शरीर की एक समान तीन दशाए देख पडती हैं, इसमें कभी उलट-फेर नहीं होता । जिस कारण यह जीव सदा अनेक प्रकार के दु.ख भोगता है, इसे सज्जन सन्त ही समझते हैं ॥६६॥

टिप्पणी—जीव जब तक सञ्चित, क्रियमाण और प्रारब्ध इन तीन प्रकार के कर्मों के वशीभूत रहेंगे तब तक अवश्य दु.ख-सुख का भोग होगा ही । सन्तों का कथन है कि योग-विद्या द्वारा जब कर्म भस्म हो जाते हैं तब जीव मुक्ति का अधिकारी होता है ।

दोहा

रामहिं जाने सन्त बर, सन्तहिं राम प्रमान ।
सन्तन केवल राम प्रभु, रामहिँ सन्त न आन ॥६७॥

अर्थ—श्रीरामजी को श्रेष्ठ सन्त और सन्तों के लिए राम का ही प्रमाण है । महात्माओं के लिए केवल राम ही प्रभु हैं और राम के लिए भक्तों को छोड अन्य नहीं ॥६७॥

दोहा

तातें सन्त दयालु वर, देहिं राम धन रीति।
तुलसी यह जिय जानि कै, करिय बिहठि अति प्रीति ॥६८॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि दयालु सन्त जनों की यह रीति है कि वे प्रसन्न होकर रामरूपी धन देते हैं। इस कारण मन में यही निश्चय कर हठ पूर्वक उनसे अत्यन्त प्रेम करना चाहिये ॥६८॥

दोहा

तुलसी सन्त सु अम्ब तरु, फूलि फरहिं पर हेत।
इतते वे पाहन हनैं, उतते वे फल देत ॥६९॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि महात्मा लोग पवित्र आम के वृक्ष हैं जो दूसरों के लिए ही फूलते-फलते हैं। लोग इधर से उन्हें पत्थर से मारते हैं और वे उधर से फल देते हैं ॥६९॥

दोहा

दुख सुख दोनों एक सम, सन्तन के मन माहिं।
मेरु उदधि गत मुकुर जिमि, भार भीजिबो नाहिं ॥७०॥

अर्थ—सन्तो के मन में दुख और सुख एक समान होते हैं। जैसे आईने में जब मेरु पर्वत का प्रतिबिम्ब पड़ता है तब वह बोझ से नहीं दबता और न समुद्र का प्रतिबिम्ब पड़ने से भींजता ही है ॥७०॥

दोहा

तुलसी राम सुजान को, राम जनावै सोइ।
रामहिं जानै राम जन, आन कबहुँ ना होइ ॥७१॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सन्त कौन है? (उत्तर) जिन को राम अपना स्वरूप आप ही जना दें। राम को राम के भक्त ही जानते हैं इसमें अन्यथा कभी नहीं होता ॥७१॥

भावार्थ—गोसाईंजी महाराज के कथन का भाव यह है कि राम का स्वरूप जानना अत्यन्त कठिन है। उनके वास्तविक स्वरूप को वही जान सकता है जिसके ऊपर कृपा कर राम अपना स्वरूप आप ही जना दें। रामायण में कहा है कि "सोइ जानै जेहि देहु जनाई"। और इससे यह भी भाव झलकता है कि अन्य देवताओं के उपासक राम के सच्चे स्वरूप को नहीं जान सकते।

दोहा

सो गुरु राम सुजान सम, नहीं विषमता लेश।
ताकी कृपा कटाक्ष ते, रहे न कठिन कलेश ॥७२॥

अर्थ—ऐसे गुरु (जिनको राम ने अपना स्वरूप जना दिया है) सुजान राम के समान ही हैं तनिक भी अन्तर नहीं। उन्हींकी कृपा-कटाक्ष से कठिन क्लेशों का भी नाश हो जाता है ॥७२॥

दोहा

गुरु कह तव समुझै सुनै, निज करतब कर भोग।
कह तव गुरु करतब करै, मिटै सकल भव सोग ॥७३॥

अर्थ—जो गुरु के कथन को सुन और समझ कर ही रह जाते हैं (परन्तु उसे कर्त्तव्य में नहीं लाते) उन्हें अपने कर्मानुसार ही सुख-दुखरूपी भोग भोगना पड़ता है। यदि गुरु के उपदेश को सुने और तदनुसार कर्त्तव्य करे तो सब सांसारिक दुःखों का नाश हो जाता है ॥७३॥

दोहा

शरणागत तेहि राम के, जिन्ह दिय धी सिय रूप।
जा पतनी घर उदय भय, नासै भ्रम तम कूप ॥७४॥

अर्थ—उस राम की शरणागत हैं जो मनुष्य की बुद्धि को सीता-

स्वरूप अर्थात् भक्तिमय बना लेते हैं। उस भक्तिरूप भगवान की छवी का प्रकाश जब भक्त के हृदयरूप गृह में फैलता है तब भ्रमरूप घने अन्धकार का नाश होता है ॥७४॥

दोहा

जा पद पाये पाइये, आनँद पद उपदेश।
संशय शमन नसाय सब, पावै पुनि न कलेश ॥७५॥

अर्थ—मनुष्य सच्चे गुरुओं के उपदेश से भगवत पद को प्राप्त कर आनन्दमय पद को पहुँचता है। उस दशा में उसके सब आन्तरिक संशय शमन होकर नष्ट हो जाते हैं और फिर उसे कभी आवागमन का क्लेश नहीं होता ॥७५॥

दोहा

मेधा सीता सम समुझु, गुरु विवेक सम राम।
तुलसी सिय सम सो सदा, भयो विगत मग बाम ॥७६

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि निश्चयात्मिका सदसद्विवेकिनी बुद्धि को सीता, और ज्ञान को ही गुरु राम जैसा, जिसने बनाया वह सर्वदा सीता सती तद्वत् कुमार्ग रहित हो जाता है ॥७६॥

दोहा

आदि मध्य अवसान गति, तुलसी एक समान।
तेई सन्त स्वरूप शुभ, जे अनीत गत आन ॥७७॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिन महापुरुषों की भगवान में आदि, मध्य और अन्त तक एक ही प्रकार की भक्ति बनी रहती है वे ही स्वरूप से कल्याणकारी महात्मा हैं ऐसे सन्त सब प्रकार की अनीति और अन्य कुचालों से रहित हो जाते हैं अर्थात् उनके हृदय में किसी प्रकार का विकार नहीं रहता ॥७७॥

दोहा

येई शुद्ध उपासना, परा भक्ति की रीति।
तुलसी एहि मगु पगु धरे, रहै रामपद प्रीति ॥७८॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यही (ऊपर कही भक्ति) शुद्ध उपासना है। यही पराभक्ति की रीति है। इसी मार्ग पर चलने से श्रीराम के चरणों में प्रीति बनी रहती है ॥७८॥

दोहा

तुलसी बिनु गुरु देव के, किमि जानै कहु कोय।
जहँ ते जो आयो सो है, जाय जहाँ है सोय ॥७९॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यह जीव शरीर में आने के पूर्व जैसा था, शरीर में आने पर और शरीर से पृथक होने पर तीनो अवस्थाओं में एक स्वरूप है परन्तु यह बिना गुरु-उपदेश के कोई कैसे जान सकता है? अर्थात् गुरु द्वारा ही यह समझ में आ सकता है कि जीव का स्वरूप क्या है ॥७९॥

दोहा

अपगत खे सोई अवनि, सो पुनि प्रगट पताल।
कहा जन्म अपि मरण अपि, समुझहिं सुमति रसाल ॥८०॥

अर्थ—जो रसाल (जल) आकाश में रहता है वही पृथिवी पर आता है और पुन. वही पाताल में प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार बुद्धिमान जन इस जीव का भी जन्म-मरण जानते हैं ॥८०॥

दोहा

संग दोष ते भेद अस, मधु मदिरा मकरन्द।
गुरु गमते देखहि प्रगट, पूरण परमानन्द ॥८१॥

अर्थ—संग दोष से ऐसा भेद हो जाता है कि फूल के रस से ही मधु बनता है और फिर उसी से मदिरा बनायी जाती है। गुरु के उपदेश से ही जीव अपने पूर्ण परमानन्द स्वरूप को प्रगट देखता है ॥८१॥

भावार्थ—कवि के कथन का आशय यह है कि जिस प्रकार मेघ का जल शुद्ध रहता है परन्तु वह पृथिवी पर आकर धूल में मिलने से गँदला मालूम होता है। पुनः वही जल पृथिवी के नीचे जाकर कूप और तड़ागरूप में स्थान-भेद से प्रगट होकर कहीं खारी और कहीं मीठा कहलाता है और वही जल नदियों में भी जाकर भिन्न-भिन्न स्वादमय प्रतीत होता है। पुन निज-निज स्थानों से वाष्प होकर आकाश में जा निर्मल और शुद्ध हो जाता है जिसे वैज्ञानिक लोग ही जानते हैं। उसी प्रकार यह शुद्ध स्वरूप जीव प्रकृति के संसर्ग से शरीर-बद्ध होकर कभी दुखी और कभी सुखी प्रतीत होता है। परन्तु सद्गुरुओं के उपदेश से अपने सच्चे स्वरूप को जानकर परमानन्द की प्राप्ति करता है। ८१ वें दोहे में कवि ने संग का दोष-गुण दिखाया है कि सुगन्धमय पुष्प का रस मक्खियों के संसर्ग से उत्तम मधु बनता है परन्तु कुसंसर्ग में पड़ वही मधु, मदिरा के रूप में परिणत हो जाता है। पुन वही मदिरा अगाध जल में पड़कर शुद्ध हो जाती है वही दशा इस जीव की भी है।

दोहा

डाबर सागर कूप गत, भेद दिखाई देत।
है एकै दूजौ नहीं, द्वैत आन के हेत ॥८२॥

अर्थ—वही जल गड्ढे, समुद्र और कूप में प्राप्त होकर नाना भाँति का दिखाई देता है परन्तु सब जल एक ही है। उनके स्वरूप में द्वैत नहीं है। अन्यों की दृष्टि में द्वैत भासता है ॥८२॥

दोहा

गुण गत नाना भाँति तेहि , प्रगटत कालहिं पाय ।
जान जाय गुरु ज्ञान ते , बिन जाने भरमाय ॥८३॥

अर्थ—उसी प्रकार यह जीवात्मा गुणों (सत, रज और तम) की प्राप्ति होने से नाना प्रकार का प्रतीत होता है परन्तु समय पाकर गुरु के उपदेश से अपने को जानता है, और जबतक नहीं जानता तबतक भ्रम में पड़ा रहता है ॥८३॥

दोहा

तुलसी तरु फूलत फलत , जा विधि कालहिं पाय।
तैसे ही गुण दोष ते , प्रगटत समय सुभाय ॥८४॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिस प्रकार काल पाकर वृक्ष फूलते और फलते हैं उसी प्रकार शुभ समय में (महात्मा पुरुषों के उपदेश से) दोष भी गुण रूप में परिणत हो जाते हैं ॥८४॥

दोहा

दोषहु गुण की रीति यह , जानु अनल गति देखि ।
तुलसी जानत सो सदा , जेहि विवेक सुविशेखि ॥८५॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि अग्नि की गति जानकर तदनुसार ही दोष और गुण की रीति समझो । जिन्हें विशेष विवेक है वे ही सर्वदा इस नियम को स्मरण रखते हैं ॥८५॥

भावार्थ—सच तो यो है कि संसार में कोई पदार्थ स्वरूप से न तो बुरा है, न भला । प्रयोग से ही भला और बुरा जाना जाता है । जब किसी सांसारिक वस्तु का हम विपरीत प्रयोग करते हैं तब विपरीत फल पाने से हम कहते हैं कि अमुक पदार्थ बुरा है । जैसे आग में हाथ डालो

तो हाथ जलेगा। उस समय हम अग्नि को बुरा कहते हैं। परन्तु उसी अग्नि से हम संसार के सहस्रो काम निकालते हैं तब हम अग्नि की प्रशंसा करते हैं। अब सोचो कि अग्नि बुरा है या भला ? उसी प्रकार आन्तरिक काम, क्रोध, मद, लोभ और अभिमानादि गुण भी अनुचित और अनवसर प्रयोग से दोष कहलाते हैं। परन्तु यदि इनके उचित और समयानुसार प्रयोग किये जायँ तो उपर्युक्त दोष ही गुण रूप में परिणत हो जाते हैं। जैसे विवाहिता स्त्री के साथ गर्भाधानकाल में काम की, दुष्टों को दण्ड देने के लिए क्रोध की, सद्गुणों की प्राप्ति में लोभ की, अथच नीच कर्मों से विरक्त रहने में अभिमान की नितान्त आवश्यकता है। यदि काम न रहे तो सृष्टि ही समाप्त हो जाय। क्रोध के बिना सुधार असंभव हो जाय। लोभ के बिना सद्गुणों की प्राप्ति ही न हो सके। अभिमान के उदय होने से मनुष्य नीच कर्म करने से बचते हैं। परन्तु इन्हीं कामक्रोधादि के जब विपरीत प्रयोग किये जायँ तो ये घोर कष्टप्रद हो जाते हैं। गोस्वामीजी कहते हैं कि इस प्रकार का गुण-दोष और भले-बुरे का विचार परम विवेकी जनों को ही होता है।

दोहा

गुरु ते आवत ज्ञान उर, नाशत सकल विकार।
यथा निलय गति दीप कै, मिटत सकल अँधियार॥८६॥

अर्थ—जिस प्रकार मन्दिरों में दीपक जलाने से सब अँधेरा मिट जाता है उसी प्रकार मनुष्य के हृदय में गुरु से ज्ञान प्राप्त होता है और वह सब विकारों को नष्ट कर देता है ॥८६॥

दोहा

यद्यपि अवनि अनेक सुख, तोय तामरस ताल।
सन्तत तुलसी मानसर, तदपि न तजहिं मराल॥८७॥

अर्थ—यद्यपि इस पृथिवी पर जल और कमल से भरे हुए अनेकों सुखमय सरोवर हैं तथापि हंस मानसरोवर को कभी नहीं छोड़ते ॥८७॥

दोहा

तुलसी तोरत तीर तरु, मानस हंस विहार।
विगत नलिनि अलि मलिन जल, सुरसरि हू बढ़ि आर ॥८८॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मानसरोवर से हंसों को उड़ाने के लिए यदि किनारे के वृक्ष तोड़ भी दिये जायँ तो भी हंस वहाँ से उड़ नहीं जाते और गंगा का जल चाहे कितना हू पवित्र हो परन्तु वह भ्रमर के लिए मलिन है क्योकि वहाँ उसका प्रेमपात्र कमल नहीं है ॥८८॥

दोहा

जो जल जीवन जगत को, परसत पावन जौन।
तुलसी सो नीचे ढरत, ताहि निवारत कौन ॥८९॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जो जल संसार का जीवन है और जिसे छूते ही सब पदार्थ पवित्र हो जाते हैं, उसीका यह भी स्वभाव है कि वह सदा नीचे को ही ढरने की चेष्टा करता है, इसका निवारण कौन कर सकता है ॥८९॥

दोहा

जो करता है करम को, सो भोगत नहिं आन।
बवनहार लुनिहै सोई, देनी लहै निदान ॥९०॥

अर्थ—जो कर्मों का कर्ता है वही भोक्ता भी होता है, दूसरा नहीं। जो बोनेवाला है वही काटता भी है, जो देता है वही अन्त में पाता भी है ॥९०॥

दोहा

निज कृत बिलसत सो सदा, बिन पाये उपदेश।
गुरु-पग पाय सुमग धरै, तुलसी हरै कलेश ॥९४॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जीव बिना उपदेश पाये अपने शुभा-शुभ कर्मों के कारण सर्वदा आवागमन में पड़ा है। परन्तु वही जब गुरु के चरणो की कृपा से सुमार्ग में पाँव रखता है तब उसके सब क्लेश नष्ट हो जाते हैं (जन्म मरणादि छूट जाते हैं) ॥९४॥

दोहा

सलिल शुक्र शोणित समुभु, पल अरु अस्थि समेत।
बाल कुमार युवा जरा, है सु समुभु करि चेत ॥९५॥

अर्थ—चेतकर भलीभाँति यह समझो कि जन्म में आने से जल, वीर्य्य, रक्त, मांस और हड्डी का संसर्ग होगा ही और बाल, कुमार, युवा और वृद्धावस्था भी अवश्य होगी ॥९५॥

दोहा

ऐसहि गति अवसान की, तुलसी जानत हेत।
ताते यह गति जानि जिय, अविरल हरि चित चेत ॥९६॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि इस प्रकार अन्तिम गति अर्थात् मरण भी अवश्यमेव होगा ही। इस कारण ऐसा ही जी में जानकर (शुभा-शुभ कर्मों को जन्म मरणादि का कारण जान) अचल भक्ति से चित्त में भगवच्चिन्तन करो ॥९६॥

दोहा

जानै राम स्वरूप जब, तब पावै पद सन्त।
जन्म मरण पद ते रहित, सुखमा अमल अनन्त ॥९७॥

अर्थ—जब यह जीव राम के स्वरूप को जान लेता है तब वह सन्त का पद पाता है और जन्म-मरण के पद (बन्धन) से रहित हो अमल अनन्त स्वरूप को प्राप्त होता है ॥९७॥

दोहा

दुखदायक जाने भले, सुखदायक भजि राम।
अब हमको संसार को, सब विधि पूरण काम ॥९८॥

अर्थ—अब हम संसार की सब कामनाओं से पूर्ण हो गये (अब इनकी इच्छा नहीं), सब को भलीभाँति जान लिया कि सब दु खदायक हैं अत. हे मन ! अब सुख देनेवाले राम का ही भजन करो ॥९८॥

दोहा

आपुहि मद को पान करि, आपुहि होत अचेत।
तुलसी विविध प्रकार को, दुख उतपति एहि हेत ॥९९॥

अर्थ—जिस प्रकार मनुष्य अपनी इच्छा से ही मद्य पीकर स्वयं अचेत हो जाता है। तुलसीदास कहते हैं कि उसी प्रकार जीवों को नाना प्रकार के दु खादि अपने ही कर्मवश होते हैं ॥९९॥

दोहा

जासों करत विरोध हठि, कह तुलसी को आन।
सो तैं सम नहिं आन तब, नाहक होत मलान ॥१००॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि दूसरा कौन है ? (भाव यह है कि सब एक हैं) जिससे अकारण विरोध करते हो। जो तुम हो वही वह भी है, समता है, द्वैत नहीं तब क्यो व्यर्थ ग्लानि में पड़ते हो ? ॥१००॥

भावार्थ—जीव स्वरूप से एक हैं तब वैर-विरोध करके दु ख उठाना व्यर्थ है।

दोहा

चाहसि सुख जेहि मारि कै, सो तो मारि न जाय।
कौन लाभ विष ते बदलि, तैं तुलसी विष खाय ॥१०१॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि तुम जिसे मारकर सुख चाहते हो, वह तो मारा नहीं जाता तब किस लाभ के लिए विष से बदलकर विष खा रहे हो ? ॥१०१॥

भावार्थ—जिस जीव को मारकर तुम आप उससे सुख उठाना चाहते हो, वह जीव तो नहीं मरता, परन्तु इतना अवश्य है कि जिसे तुम वध करोगे वह भी तुम्हें वध करेगा अत. जीव-हिंसा छोड़ दयावान बनो।

दोहा

कोह द्रोह अघ मूल है, जानत को कहु नाहिं।
दया धर्म कारण समुझि, को दुख पावत ताहि ॥१०२॥

अर्थ—क्रोध और द्रोह ये पाप के मूल हैं। यह कौन नहीं जानता ? दया को धर्म का कारण (मूल) समझकर कौन दु.ख पाता है ? अर्थात् जो मनुष्य संसार में सब के साथ दया का व्यवहार करता है उसे कोई दुःख नहीं होता ॥१०२॥

भावार्थ—क्रोध और द्वेष अधर्म के मूल हैं और दया धर्म-मूल है।

श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदास विरचितायां सतशतिकाया-
मुपासना पराभक्ति निर्देशो नाम द्वितीयस्सर्गः
श्रीमद्रामचन्द्र द्विवेदि रचित सुबोधिनी
टीका युक्तः समाप्तः।

तुलसी रचना विशद अति, पराभक्ति की खान।
श्रीपति तिलक समेत पढ़ि, पाइहिं मोद सुजान ॥

तृतीय सर्ग

अथ तृतीयस्सर्गः सार्थः प्रारभ्यते

दोहा

जनकसुता दशयानसुत, उरग ईश अभजौरि।
तुलसिदास दसपद परखि, भवसागर गये पौरि ॥१॥

व्याख्या—जनकसुता=जानकी। दशयान=दशरथ। दशयानसुत=राम। उरगईश=शेषावतार लक्ष्मण। अ=भरत। भ=शत्रुघ्न।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि श्रीसीता, राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के दस चरणों को स्मरण कर मैं इस संसार-सागर को पार कर चुका ॥१॥

दोहा

तुलसी तेरो रागधर, तात मात गुरुदेव।
ताते तोहि न उचित अब, रुचित आन पद सेव ॥२॥

व्याख्या—रागधर=रागों में सारंग एक राग है और शार्ङ्ग शब्द का यह अपभ्रंश है जिसका अर्थ धनुष है। अतः धनुर्धर शब्द से राम का ग्रहण होगा।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि श्रीराम ही तुम्हारे पिता, माता और गुरुदेव हैं। तुम्हारे लिए अब दूसरों के चरणों की सेवा करना उचित और शोभायमान नहीं है ॥२॥

दोहा

तर्क विशेष निषेध पति, उर मानस सुपुनीत।
बसत मराल ल-रहित करि, तेहि भजु पलटि बिनीत॥३॥

व्याख्या—तर्क विशेष='उ' अक्षर से तर्क का बोध होता है। निषेध='मा' से निषेध किया जाता है। अर्थात् तर्क विशेष निषेध पति=उमापति, शिव। मराल शब्द को 'ल' रहित किया तो 'मरा' शेष रह गया, जिसको उलट देने से 'राम' शब्द बना।

अर्थ—हे मन! शिवजी के पवित्र हृदयरूपी मानस में हंसवत बसने वाले राम को नम्रतापूर्वक भजो॥३॥

दोहा

शुक्लादिहि कल देहु इक, अन्त सहित सुखधाम।
दै कमला कल अन्त को, मध्य सकल अभिराम॥४॥

व्याख्या—शुक्ल=स्वच्छ, सित। इस सित शब्द के आदि और अन्त में एक एक मात्रा दे देने (अर्थात् ह्रस्व को दीर्घ करने) से सीता शब्द बना। कमला=रमा इस शब्द की अन्तिम मात्रा को बीच में दे देने से 'राम' बना।

अर्थ—हमारे लिए सीताराम ही सुख के धाम एवं अभिराम हैं॥४॥

दोहा

बीज धनंजय रवि सहित, तुलसी सहित मयंक।
प्रगट तहाँ नहिं तमतमी, समचित रहत अशंक॥५॥

व्याख्या—धनंजय=अग्नि, कृशानु। कृशानु का बीज='र'। रवि=सूर्य्य, भानु। भानु का बीज='आ'। मयंक=चन्द्रमा, हिमकर। हिमकर का बीज='म'। तम=अन्धकार। तमी=रात्रि।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सूर्य्य, अग्नि और चन्द्रमा के आदि

कारण (र, आ, म) राम को भजो, जिस से मोह और अविद्यारूपी रात्रि का नाश हो एवं चित्त में शान्ति तथा निर्भीकता आवे ॥५॥

दोहा

रंजन कानन कोकनद, वंश विमल अवतंस ।
गंजन पुरहुत अरि सदल, जगहित मानस हंस ॥६॥

व्याख्या—कोकनद=कमल । पुरहुत=इन्द्र । पुरहुत अरि=रावण ।

अर्थ—कमल-वन को प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य्यवंश के शिरोमणि, और रावण को सपरिवार नष्ट करनेवाले श्रीरघुनाथजी, संसार के हित-रूपी मानस में हंसवत विहार करनेवाले हैं ॥६॥

दोहा

जगते रहु छत्तीस ह्वै, रामचरण छत्तीन ।
तुलसी देखु बिचारि हिय, यह मत परम प्रवीन ॥७॥

व्याख्या—छत्तीस=३६ अर्थात् विमुख, विरागी । छत्तीन=६३ अर्थात् सम्मुख, अनुरागी ।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हृदय में विचारकर देखो यह परम ज्ञानशीलों का मत है कि संसार से विरक्त तथा भगवच्चरण में अनुरक्त रहना उचित है ॥७॥

दोहा

कंदिग दून नछत्र हनि, गनी अनुज तेहि कीन ।
जेहि हरिकर मनि-मान हनि, तुलसी तेहि पद लीन ॥८॥

व्याख्या—कं=सिर । दिग=दिशा, दश । कंदिग=दशसिर वाला रावण । नक्षत्र=२७ नक्षत्रों में हस्त नक्षत्र है और हस्त के अर्थ हाथ के भी हैं । दून नक्षत्र=दोनों हाथों से । हरि=वानर, हनुमान । गनी=धनी, राजा ।

अर्थ—दोनों हाथों से रावण को मारकर अथवा दश सिर और बीस भुजावाले रावण को मारकर उसके भाई विभीषण को राजा बना दिया। और हनुमान के हाथों से श्रीरघुनाथजी ने मणि के गर्व को चूर्ण कराया उन्हींके चरणों में तुलसीदास लीन हैं ॥८॥

टिप्पणी—विभीषण ने जिस मणि-माला को गर्व के साथ समर्पण किया उसे श्रीराम ने हनुमान के गले में डाल दी और हनुमान ने सब मणियों को तोड़कर देखा तो उनके भीतर 'राम' शब्द का अभाव पाया और उसको फेंक दिया। उपर्युक्त कथानक का जो भाव हो उसे उसके रचयिता जानें। पर सचाई का पहलू तो ऐसा प्रतीत होता है कि उस मणि माला को सर्वोत्तम जान विभीषण ने श्रीराम को भेंट की होगी परन्तु भक्ति के साथ न देकर गर्व के साथ समर्पित किया अत. हनुमान ने उसे तोड़ दिया होगा कि इसमें भक्ति या नम्रता का लेश नहीं अतः त्याज्य है जिसे देख विभीषण तथा मणि का मान-मर्दन हुआ कहा जाता है।

दोहा

शिला शाप मोचक चरण, हरण सकल जंजाल।
भरण करण सुख सिद्धि तर, तुलसी परम कृपाल ॥९॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि परम कृपालु श्रीरघुनाथजी के चरण अहल्या के शाप को मोचन करनेवाले हैं पुन. वे चरण मनुष्य को संसार के सब बन्धनों से मुक्त करके, सब प्रकार की सिद्धियों तथा अत्यन्त सुखों से भरपूर करनेवाले हैं ॥९॥

दोहा

मर न विपति हरधुर धरन, धरा धरण बलधाम।
शरण तासु तुलसी चहत, वरण अखिल अभिराम ॥१०॥

व्याख्या—मर न=जो न मरे अर्थात् अमर, देवता।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र देवताओं के दुःख हरण करनेवाले, धर्मधुरीण, दल के धाम और पृथिवी को धारण करनेवाले हैं। उस 'राम' के समस्त नामाक्षर अत्यन्त सुन्दर हैं। अतएव मैं उसी 'राम' की शरण चाहता हूँ ॥१०॥

दोहा

विहँग बीच रैयत त्रितय, पति पति तुलसी तोर।
तासु विमुख सुख अति विषम, सपनेहुँ होसि न भोर ॥११॥

व्याख्या—विहँग=पक्षी, शकुन। शकुन का बीचवाला अक्षर 'कु' है। रैयत=प्रजा, परजा। परजा का तीसरा अक्षर 'जा' है। दोनों को मिला देने से 'कुजा' शब्द बना। कुजा=पृथिवी की पुत्री, जानकी।

अर्थ—हे तुलसीदास! सीतापति राम ही तुम्हारे पति हैं उनके विरुद्ध आचरण से सुख अत्यन्त कठिन है तुम उन्हें स्वप्न में भी न भूलो ॥११॥

दोहा

द्वितीय कोल राजिव प्रथम, बाहन निश्चय माहि।
आदि एक कल दै भजहु, वेद विदित गुण जाहि ॥१२॥

व्याख्या—कोल=शूकर, वाराह। वाराह का द्वितीय वर्ण 'रा' है। राजिव=कमल, मकरन्द। मकरन्द का प्रथम वर्ण 'म'। वाहन=यान, जान। निश्चय=किल। किल के आदि वर्ण 'कि' में एक मात्रा मिला उसे द्वित्व कर दिया तो 'की' हुआ अर्थात् 'जानकी' शब्द बना।

अर्थ—सीताराम को भजो जिनका गुण वेद-विदित है ॥१२॥

दोहा

बसत जहाँ राघव जलज, तेहि मिति गो जेहि संग।
भजि तुलसी तेहि अरि सुपद, करि उर प्रेम अभंग ॥१३॥

व्याख्या—राघवजलज=राघव मछली। मछली का वासस्थान समुद्र है। उस समुद्र की मर्यादा रावण की संगति से नष्ट हो गयी। उस रावण के अरि रामचन्द्र। मिति=मर्यादा। गो=गयी।

अर्थ—अपने हृदय में अटूट प्रेम के साथ श्रीराम के सुन्दर चरणों का भजन करो ॥१३॥

दोहा

भजहु तरणि अरि आदि कहँ, तुलसी आत्मज अन्त।
पञ्चानन लहि पदुम मथि, गहे विमल मन सन्त ॥१४॥

व्याख्या—तरणि=सूर्य्य। अरि=शत्रु। तरणिअरि=सूर्य के शत्रु, राहु। राहु का आदि अक्षर 'रा' है। आत्मज=काम। काम का अन्त्याक्षर 'म' अर्थात् दोनो मिलने से 'राम' बना। पदुम=सौ करोड़। पञ्चानन=शिव।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि श्रीराम का भजन करो। इस राम नाम को सौ करोड़ ग्रथों के मथने पर महादेवजी ने पाया और इस 'राम' नाम को निर्मल मनवाले साधु जनों ने भी ग्रहण किया ॥१४॥

दोहा

बनिता शैल सुतास की, तासु जन्म को ठाम।
तेहि भजु तुलसीदास हित, प्रणत सकल सुखधाम ॥१५॥

व्याख्या—शैल=पर्वत, हिमाचल। सुत=पुत्र। शैलसुत=मैनाक। आस=निवास स्थान। मैनाक का निवास स्थान, समुद्र। उसकी बनिता "गंगा"। गंगा का निवास स्थान, भगवच्चरण।

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि सेवकों के लिए सब सुखों के देनेवाले भगवान के चरणों को प्रेम से भजो ॥१५॥

दोहा

भजु पतंग-सुत आदि कहँ, मृत्युंजय अरि अन्त।
तुलसी पुस्कर यज्ञ कर, चरण पांशुमिच्छन्त ॥१६॥

व्याख्या—पतंग=सूर्य। सुत=लड़का। पतंगसुत=सूर्य के पुत्र कर्ण। कर्ण को 'राधेय' भी कहते हैं। राधेय का पहला अक्षर 'रा'। मृत्युञ्जय=महादेव। महादेव का अरि 'काम'। इसका अन्तिम वर्ण 'म'। अर्थात् दोनों मिलकर 'राम' शब्द बना। पुस्कर यज्ञ कर=पुष्कर क्षेत्र में यज्ञ करनेवाले, ब्रह्माजी। पांशु=धूल। इच्छन्ति=इच्छा करते हैं।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि ब्रह्मा आदि जिनके चरणों की धूल की इच्छा करते हैं उन श्रीराम का भजन करो ॥१६॥

दोहा

उलटे तासी तासु पति, सौ हजार मन सत्थ।
एक शून्य रथ तनय कहँ, भजसि न मन समरत्थ ॥१७॥

व्याख्या—'तासी' को उलट देने से 'सीता' शब्द बना। सौ हजार मन=लक्षमन, लक्ष्मण। एक शून्य=१०। दशरथ तनय=दशरथ के पुत्र भरतादि।

अर्थ—हे मन! तू सीता, राम, लक्ष्मण, भरतादि समर्थ शीलों का भजन क्यों नहीं करता? ॥१७॥

दोहा

द्वितिय त्रितिय हरकासनहि, तेहि भजु तुलसीदास।
का कासन आसन लहै, घासन लहै उपास ॥१८॥

व्याख्या—हर के दो आसन हैं (१) वाराणसी, काशी (२) चर्म, चरम। पहले का दूसरा वर्ण 'रा' और दूसरे का तीसरा अक्षर 'म' अर्थात् 'राम' शब्द बना। कासन=कुश, कास का।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि कुशा के आसन पर बैठने और उपवास करने से दु:ख है; दु:ख है अत राम का भजन करो ॥१८॥

दोहा

आदि द्वितिय अवतार कह, भजु तुलसी नृप अन्त ।
कमल प्रथम अरु मध्य सह, वेद विदित मत सन्त ॥१९॥

व्याख्या—द्वितीय अवतार कच्छ से कूर्म का ग्रहण कर उसका आदि अक्षर 'कु' और नृप से राजा का ग्रहण कर उसका अन्त्याक्षर 'जा' लेकर 'कुजा' शब्द बना। 'कुजा' से 'सीता' का अर्थ संगृहीत होगा। कमल=राजिव। इसका प्रथम 'रा' और कमल का मध्य 'म'। इन दोनों से 'राम' शब्द बना।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि वेद में सुप्रसिद्ध है और सन्तों का भी यह मत है कि सीताराम का भजन करो ॥१९॥

दोहा

जेहि न गिन्यो कछु मानसहु, सुरपति अरि भौआस।
जेहि पद सुचिता अवधि भव, तेहि भजु तुलसीदास ॥२०॥

व्याख्या—सुरपति=इन्द्र। उसके अरि रावण, उसका निवासस्थान लंका। सुचिता=पवित्रता। भव=उत्पन्न। अवधि=सीमा।

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि हे मन! जिस रामचन्द्र ने अपने मन में लंका के विभव को कुछ नहीं समझा और जिनके चरणों से पवित्रता की सीमा गंगा निकली है तुम उसी राम का भजन करो ॥२०॥

टिप्पणी—मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने प्रथम लंकेश (रावण) के विभव का विनाश करके समस्त लंका पर अपनी विजय-पताका लहरा दी परन्तु उसका प्रलोभ न कर पुन. लंका का राज्य विभीषण को दे दिया।

दोहा

नैन करण गुण धरन बर, ता बर बरण बिचार।
चरण सतर तुलसी चहसि, उबरण शरण अधार ॥२१॥

व्याख्या—करण=कान। सतर=सत्वर, शीघ्र। नैनकरण गुणधरण बर अर्थात् कान के गुण 'शब्द' को नेत्र से धारण करनेवाले अर्थात् आँखों से सुननेवाले, 'सर्प' तिनमें श्रेष्ठ 'शेषनाग' इससे यहाँ शेषावतार 'लक्ष्मण' का ग्रहण होगा।

अर्थ—हे तुलसी! जिस शेषावतार लक्ष्मणजी ने भी वर्णों में सर्वोत्तम 'राम' ऐसे वर्ण को श्रेष्ठ जानकर धारण किया यदि तू शीघ्र भवसागर से उबार चाहता है तो शरणागतों के आधार उसी चरण को धारण कर ॥२१॥

दोहा

भजु हरि आदिहि बाटिका, भरि 'ता' राजिव अन्त।
करि तापद बिस्वास भव, सरिता तरसि तुरन्त ॥२२॥

व्याख्या—वाटिका=बाग, आराम। आराम के आदि 'आ' के हरण करने से 'राम' बचा। राजिव=चन्द्रमा, शशि, ससी। इस ससीपद के अन्त में 'ता' रखा तो ससीता शब्द बना। जिसका अर्थ है सीता सहित।

अर्थ—सीता सहित राम का भजन करो। इनके चरणों में विश्वास करने से संसाररूपी सरिता (नदी) को तुरन्त तर जावोगे ॥२२॥

दोहा

जड़ मोहन वर्णादि कहँ, सह चञ्चल चित चेत।
भजु तुलसी संसार अहि, नहिं गहि करत अचेत ॥२३॥

व्याख्या—जड़मोहन=जिसे सुनकर जड़ भी मोहित हो जाते हैं ऐसा मालकोश 'राग' इसका आदि वर्ण 'रा'। चंचल='मन' इसका

आदि वर्ण 'म' है दोनो को एकत्र करने से 'राम' शब्द बना।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि अपने चित्त में चेतकर राम का भजन करो जिसके प्रताप से यह ससाररूपी सर्प तुम्हें डँसकर अचेत नहीं कर सकता ॥२३॥

दोहा

मर न अधिप बाहन वरण, दूसर अन्त अगार।
तुलसी इषु सह रागधर, तारन तरन अधार ॥२४॥

व्याख्या—मर न=देवता, तिनके अधिप 'इन्द्र'। तिनका वाहन 'ऐरावत' इसका दूसरा वर्ण 'रा' और अगार=धाम। इसका अन्त्य वर्ण 'म' इनको एकत्र किया तो 'राम' बना। इषु= बाण। राग=सारंग, शार्ङ्ग= धनुष।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि बाण के सहित धनुष धारण करनेवाले तरण-तारण के आधार राम का भजन करो ॥२४॥

दोहा

जो उरवि न चाहसि झटित, तौ करि घटित उपाय।
सुमनस अरि अरि मर चरण, सेवन सरल सुभाय ॥२५॥

व्याख्या—उरवि=उर्वि, पृथिवी। सुमनस=सुन्दर मन हो जिनका अर्थात् देवता, उनका शत्रु 'रावण' उसके अरि 'श्रीरामचन्द्र'।

अर्थ—हे मन ! यदि तू पृथिवी नहीं चाहता अर्थात् आवागमन से छूटना चाहता है तो शीघ्र एक उपाय कर कि सुहृद् भाव से श्रीराम के चरणो की सेवा में लग जा ॥२५॥

टिप्पणी—कहीं-कहीं ऐसा पाठ भी है 'जो उरविज चाहसि' वहाँ इस प्रकार अर्थ करना चाहिये कि जो तुम 'उर्विज' (उर्वि=पृथिवी। ज=उत्पन्न, अर्थात् पृथिवी से उत्पन्न मगल तारा') अर्थात् मगल

(कल्याण) चाहते हो तो शीघ्र एक उपाय करो। शेष पूर्ववत।

दोहा

द्वितिय पयोधर परम धन, बाग अन्त युत सोय।
भजु तुलसी संसार हित, याते अधिक न कोय ॥२६॥

व्याख्या—पयोधर=मेघ, 'धाराधर' इसका द्वितीय वर्ण 'रा'। बाग=बगीचा, 'आराम' इसका अन्त्यवर्ण 'म' अर्थात् दोनों मिलाने से 'राम' बना।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि 'राम' नाम ही परमधन है, इससे बढ़कर संसार में हित करनेवाला अन्य कोई नहीं अतः उन्हींका भजन करो ॥२६॥

दोहा

पति पयोधि पावन पवन, तुलसी करहु बिचार।
आदि द्वितिय अरु अन्त युत, ता मत तव निरधार ॥२७॥

व्याख्या—पति=स्वामी, 'भर्त्ता।' पयोधि पावन=समुद्रों में पवित्र 'क्षीरसागर'। पवन=वायु 'मरुत'। भर्त्ता का आद्यक्षर 'भ', क्षीरसागर का द्वितीयाक्षर 'र' और मरुत का अन्त्याक्षर 'त' इन तीनों को एकत्रित करने से 'भरत' शब्द बना।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हे मन तू विचार कर, भरत जैसे मत से ही तेरा निस्तार होगा ॥२७॥

भावार्थ—अर्थात् जिस प्रेम से भरतजी राम का भजन करते थे उसी प्रकार तू भी कर। ऐसा करने से तेरा निर्वाह हो सकता है अन्यथा नहीं।

दोहा

हंस कपट रस सहित गुण, अन्त आदि प्रथमन्त।
भजु तुलसी तजि वाम गति, जेहि पद रत भगवन्त ॥२८॥

व्याख्या—हंस=मराल, इसका अन्त्याक्षर 'ल'। कपट=छल, इसका आद्यक्षर 'छ'। रस=मकरन्द, इसका प्रथमाक्षर 'म'। गुण=तीन, इसका अन्त्याक्षर 'न'। सब को एकत्रित करने से 'लछमन' अर्थात् 'लक्ष्मण' शब्द बना।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिन चरणों में भगवान (ऐश्वर्य-शाली) लक्ष्मणजी रत हैं तू विषम गति छोड़ उन्हींका भजन कर ॥२८॥

दोहा

कना समुझि 'क' बरन हरहु, अन्त आदि युत सार।
श्रीकर तमहर वर्णवर, तुलसी शरण उबार ॥२९॥

व्याख्या—कना=मकरा, इसका 'क' हटा लिया और अन्त्य 'रा' और आदि 'म' इन अक्षरों को मिलाया तो 'राम' बना।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि 'राम' नाम ही तत्व है जिसके उत्तम वर्ण कल्याण करनेवाले, अन्धकार नष्ट करनेवाले और शरणागतों को बचानेवाले हैं ॥२९॥

दोहा

अंक दशा रस आदि युत, पाण्डु सूनु सह अन्त।
जानि सुवन सेवक सतर, करिहैं कृपा परन्त ॥३०॥

व्याख्या—अंक दशा=अंक 'दश'। रस का आदि 'र' और पाण्डु पुत्र पारथ का अन्तिमाक्षर 'थ' मिलाने से 'दशरथ' बना।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मेरे ऊपर श्रीदशरथजी महाराज भी अपने पुत्र का सेवक जान शीघ्र ही महती कृपा करेंगे ॥३०॥

दोहा

झटिति सखा हि बिचारि हिय, आदि वर्ण हरि एक।
अन्त प्रथम स्वर दै भजहु, जा उर तत्व विवेक ॥३१॥

व्याख्या—झटिति=शीघ्र 'आसु'। सखा='मित्र'। दोनों मिला देने से 'आसुमित्र' शब्द बना, इसके आदि वर्ण 'आ' का हरण किया तो 'सुमित्र' शब्द अब शेष रहा, इसके अन्त्य 'त्र' में प्रथम स्वर आकार मिलाने से 'सुमित्रा' शब्द बना।

अर्थ—सुमित्रा का भजन करो जिनके हृदय में तत्व-ज्ञान भरा है अथवा जो तत्व-विद् हैं वे सुमित्रा का भजन करते हैं ॥३१॥

दोहा

आदि चन्द चंचल सहित, भजु तुलसी तजु काम।
अघ गंजन रंजन सुजन, भव भंजन सुखधाम ॥३२॥

व्याख्या—चन्द=चन्द्रमा, 'राजिव', इसका आदि 'रा'। चंचल=मन, इसका आदि 'म' अर्थात् 'राम'।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सब कामनाओं को छोड़कर, पाप-हारी, सज्जनों के सहायक, संसार के फन्दों को नष्ट करनेवाले और सुख-धाम राम का भजन करो ॥३२॥

दोहा

विगत देह तनुजा सपति, पद रति सहित सनेम।
यदिअतिमतिचाहसिसुगति, तदि तुलसी करु प्रेम ॥३३॥

व्याख्या—विगत देह=विदेह, जनक, तिनकी तनुजा 'सीता'। सीतापति='राम'।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यदि तू अत्यन्त बुद्धिमान है और मुक्ति चाहता है तो प्रेम के साथ नियमपूर्वक श्रीसीता-राम के चरणों में प्रीति कर ॥३३॥

दोहा

करता शुचि सुर सर सुता, शशि सारँग महिजान।
आदि अन्त सह प्रथम युत, तुलसी समुझु न आन ॥३४॥

व्याख्या—सुरसर सुता=देवताओं के तालाब 'मानसर' की पुत्री 'सरयू'। शशि=चन्द्रमा, 'राकापति' का आद्यक्षर 'रा' पुनः, सारंग=पपीहा, 'विहंगम' के अन्त्याक्षर 'म' को मिलाया तो 'राम' शब्द बना। महिजान शब्द के दो खण्ड हैं (१) महिजा, (२) आन। महिजा=अवनि कुमारी 'जानकी'।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सरयू, राम और सीता इन तीनों को अन्य मत समझो अर्थात् ये तीनों एक रूप हैं क्योंकि तीनो का काम पवित्र बनाने का है ॥३४॥

दोहा

गिरिजा पति कल आदि इक, हरि नछत्र युधि जान।
आदि अन्त भजु अन्त पुनि, तुलसी शुचि मन मान ॥३५॥

व्याख्या—गिरिजापति=शिव, अपभ्रंश होने से 'सिव' बना। इसके आद्यक्षर 'सि' में एक मात्रा और दी (अर्थात् ह्रस्व से दीर्घ किया) तो 'सी' हुआ। हरि=सूर्य्य, सविता, इसके अन्त्य वर्ण 'ता' को उसमें मिलाया तो 'सीता' शब्द बना। नक्षत्र=तारा इसका अन्त्य वर्ण 'रा' है। और युधि=युद्ध, संग्राम का अन्त्याक्षर 'म' है। अब रा में म को मिला या तो 'राम' शब्द हुआ।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यदि तू अपने मन को शुद्ध और पवित्र बनाया चाहता है तो सीता-राम को भज ॥३५॥

दोहा

ऋतु पति पद पुनि पदिक युत, प्रथम आदि हरि लेहु।
अन्त हरण पद द्वितिय महँ, मध्य वरण सह नेहु ॥३६॥

व्याख्या—ऋतुपति=वसन्त, इसका आदि वर्ण 'व' हटा दिया तो 'सन्त' रह गया इसके आगे 'पद' बढ़ाया तो सन्तपद' हुआ। पदिक=चाँदी, रजत। इस 'रजत' के अन्त्य वर्ण 'त' का हरण किया तो 'रज' अवशेष रहा। इस 'रज' को 'सन्तपद' में मिलाया तो 'सन्तपद रज' ऐसा शब्द बना जिसके अर्थ हैं 'साधुओं के चरण की धूरी'।

अर्थ—महात्माओं की पद-धूरी को प्रेमपूर्वक ग्रहण करो ॥३६॥

दोहा

बाहन शेष सु मधुप रव, भरत नगर युत जान।
हरि भरि सहित विपर्य करि, आदि मध्य अवसान ॥३७॥

व्याख्या—बाहनशेष=शेषनाग के बाहन 'कूर्म'। मधुप रव=भ्रमरों का शब्द 'गुंजार'। पहले 'कूर्म' का आदि वर्ण 'कु' और 'गुंजार' का मध्यवर्ण 'जा' मिला देने से 'कुजा' शब्द बना जिसके अर्थ हैं 'सीता'। भरत नगर=मधुरा। इस 'मधुरा' शब्द का विपर्यय अर्थात् उलटा करने से 'रामधु' शब्द बना, इसके अन्त्याक्षर 'धु' का हरण किया तो 'राम' शब्द अवशेष रहा आदि मध्य अवसान='मधुरा' शब्द के तीनों वर्णों को, विपर्य अर्थात् उलट दो।

अर्थ—सीताराम को भजो ॥३७॥

दोहा

तुलसी उडुगण को बरण, बनजसहित दोउ अन्त।
ता कहँ भजु संशय शमन, रहित एक कल अन्त ॥३८॥

व्याख्या—उडुगण=तारा इसका अन्त्यवर्ण 'रा' और बनज=जल से उत्पन्न 'चन्द्रमा' का अन्त्याक्षर 'मा', इन दोनों को एकत्र करने से 'रामा' शब्द हुआ इसकी एक अन्तिम मात्रा 'आ' का अपहरण किया तो 'राम' शब्द अवशेष रह गया।

अर्थ—सर्व संशयों के शान्त करनेवाले राम का भजन करो ॥३८॥

दोहा

बारिज बारिज बरण बर, बरणत तुलसीदास।
आदि आदिभजु आदिपद, पावे परम प्रकास ॥३९॥

व्याख्या—बारिज=कमल अर्थात् 'राजिव' इसका आदि वर्ण 'रा' और बारिज=मकरन्दी, इसका आदि वर्ण 'म' दोनों मिलने से 'राम' शब्द बना।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सब के आदि 'राम' के चरणों को भजो तो परम प्रकाश मिलेगा ॥३९॥

दोहा

भजु तुलसी कुलिशान्त कह, सह अगार तजि काम।
सुख सागर नागर ललित, बली अली परधाम ॥४०॥

व्याख्या—कुलिश=वज्र, अर्थात् 'हीरा' इसका अन्त्याक्षर 'रा' और अगार=घर, अर्थात् 'धाम' का अन्त्य वर्ण 'म' दोनों को मिलाया तो 'राम' बना। अली=सखी। फारसी में सखी को दानी कहते हैं।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सुख के समुद्र, निपुण, सुन्दर, बलवान, महादानी और परधामवासी राम का भजन करो ॥४०॥

दोहा

चंचल सहित रु चंचला, अन्त अन्त युत जान।
सन्त शास्त्र सम्मत समुझि, तुलसी करु परमान ॥४१॥

व्याख्या—चंचल=पारा। चचला=स्त्री, वाम। दोनों के अन्त-अन्त के अक्षरों को एकत्रित करने से 'राम' बना।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि प्रमाणपूर्वक, महात्माओं और शास्त्रों की सम्मति जानकर राम का भजन करो ॥४१॥

दोहा

आदि बसन्त इकार दै, आशय तासु बिचार।
तुलसी तासु शरण परे, कासु न भयो उबार ॥४२॥

व्याख्या—बसन्त के आदि मे इकार देने से 'बिसन्त' शब्द बना, विचारने से जिसका आशय हुआ 'विशेष कर सन्त अर्थात् साधु'।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि महात्मा जनों की शरण जाने से किसका निर्वाह नहीं हो गया ? अर्थात् सब का हुआ ॥४२॥

दोहा

धरा धराधर बरण युग, शरण हरण भव भार।
तरण सतर तर परम पद, तुलसी धर्माधार ॥४३॥

व्याख्या—धरा शब्द का अन्तिम वर्ण 'रा' और धराधर 'महीधर' का आदि वर्ण 'म' एकत्रित होने से 'राम' बना। सतर तर=शीघ्रतर।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि शीघ्रतर मुक्ति पद प्राप्त करानेवाले, धर्म के आधार संसार के समस्त दु:खो के हरण करनेवाले राम की शरण पकड़ो ॥४३॥

दोहा

चरण धनंजय सूनु पति, चरण शरण रति नाहिँ।
तुलसी जग बंचक बिहठि, किये विधाता ताहि ॥४४॥

व्याख्या—धनंजय एक प्रकार का वायु है उसका वर्ण 'मारुत' उसके पुत्र 'हनुमान' उनके पति श्रीरघुनाथजी।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं जिसकी शरण और प्रीति श्रीरामजी के चरणों में न हुई तो यह समझो कि ब्रह्मा ने इस संसार में उसे बलात्कार बंचक बनाया अथवा ऐसे पुरुष विशेष हठपूर्वक जग से ठगे जाते हैं अर्थात् संसार में फँस जाते हैं ॥४४॥

दोहा

तुलसी रजनी पूर्णिमा, हार सहित लखि लेहु।
आदि अन्त युत जानि करु, तासों सरल सनेहु ॥४५॥

व्याख्या—रजनी पूर्णिमा=पूर्णमासी की रात्रि अर्थात् 'राका' का आदि वर्ण 'रा' और हार के अर्थ 'दाम' का अन्त्यवर्ण 'म' इन दोनों को एकत्र किया तो 'राम' बना।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि राम से सरल स्नेह करो ॥४५॥

दोहा

भानु गोत्र तमि तासु पति, कारण अति हित जाहि।
ज्ञान सुगति युतसुख सदन, तुलसी मानत ताहि ॥४६॥

व्याख्या—भानु=सूर्य्य, गोत्र=अग्नि, तमि=रात्रि, तमि पति=रात्रि के पति, चन्द्रमा।

अर्थ—जो रामनाम भानु, कृशानु और हिमकर का आदि कारण है उसीको तुलसी अत्यन्त हितकारक मानते हैं क्योंकि वह ज्ञान, मुक्ति और आनन्द का स्वरूप है ॥४६॥

दोहा

भजु तुलसी ओघादि कह, सहित तत्व युत अन्त।
भव आयुर्जय जासु बल, मन चल अचल करन्त ॥४७॥

व्याख्या—ओघादि=ओघ का आदि अर्थात् ओघ=समूह, 'राशि' का आदि 'रा' और तत्त्व=आकाश, 'व्योम' के अन्त्य 'म' को एकत्र किया तो 'राम' शब्द बना। भव=महादेव।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिस रामनाम के भजन-प्रताप से महादेव ने आयु, जय और बल पाकर अपने चंचल मन को स्थिर किया, तू भी उसी का भजन कर ॥४७॥

दोहा

देत कहा नृप काज पर, लेत कहा इतराज।
अन्त आदि युत सहितभजु, जो चाहसि शुभ काज ॥४८॥

व्याख्या—राजा काम पड़ने पर क्या देते हैं "बीरा"। इतराज=नाराज। नाराज होकर क्या ले लेते हैं 'मर्याद'। 'बीरा' का अन्त्य वर्ण 'रा' और 'मर्याद' का आदि वर्ण 'म' मिल्कर 'राम' बना।

अर्थ—जो तुम कल्याण चाहते हो तो 'राम' का भजन करो ॥४८॥

दोहा

चन्द्र रमनि भजु गुण सहित, समुझि अन्त अनुराग।
तुलसी जो यह बनि परै, तौ तव पूरण भाग ॥४९॥

व्याख्या—चन्द्ररमणि=नक्षत्र, 'अनुराधा' इसका गुण अर्थात् तीसरा वर्ण 'रा' और अनुराग=प्रेम का अन्त्यवर्ण 'म' इन दोनों को मिलाया तो 'राम' बना।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि 'राम' का भजन करो और यदि यह तुमसे बन पड़े तो अपना अत्यन्त भाग्य समझो ॥४९॥

दोहा

जिनके हरि बाहन नहीं, दधि सुत सुत जेहि नाहिँ।
तुलसी ते नर तुच्छ हैं, बिना समीर उड़ाहिँ ॥५०॥

व्याख्या—हरि बाहन=गरुड़ अर्थात् गुरुता। दधि=समुद्र, इसका पुत्र चन्द्रमा और इसका पुत्र बुध। बुध का भाव 'बुद्धि'।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिन पुरुषों में गुरुता नहीं और जिनमें बुद्धि भी नहीं वे मनुष्य ऐसे तुच्छ हैं कि बिना पवन के ही उड़ा करते हैं अर्थात् बहुत ही हल्के होते हैं ॥५०॥

दोहा

रवि चंचल अरु ब्रह्म द्रव , बीच सुबास बिचारि ।
तुलसिदास आसन करै , अवनिसुता उर धारि ॥५१॥

व्याख्या—चचल=लोल, रवि=अर्क । दोनों मिलकर 'लोलार्क' बना । काशी मे लोलार्क घाट है । ब्रह्मद्रव=गंगा ।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि श्रीजानकी माता को हृदय में धारण कर गंगा के बीच लोलार्क घाट में आसन करना प्रशस्त है ॥५१॥

दोहा

बन बनिता दृग कोपमा , युत करु सहित विवेक ।
अन्त आदि तुलसी भजहु , परिहरि मन कर टेक ॥५२॥

व्याख्या– बन=जल अर्थात् 'सागर' का अन्त 'रा' और बनिता की आँखों की उपमा 'मछली' से होती है, इसका आदि वर्ण 'म' इन दोनों को एकत्रित किया तो 'राम' बना ।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मन के हठ को छोड़कर राम का भजन करो ॥५२॥

दोहा

उर्वी अन्तहुँ आदि युत , कुल शोभा कमलादि ।
कै विपर्य ऐसेहि भजहु , तुलसी शमन विषाद ॥५३॥

व्याख्या—उर्वी=पृथिवी, अर्थात् 'धरा' का अन्त्य वर्ण 'रा' । पुनः उर्वी='मही' का आदि वर्ण 'म' । इन दोनों को एकत्र किया तो 'राम' हुआ । कुल की शोभा 'शील' से है, सो इसके आदि वर्ण 'सी' और कमल के पर्य्यायवाचक शब्द 'तामरस' के आदि वर्ण 'ता' को एकत्रित तो 'सीता' बना । अब सब को एक स्थान पर लिखा तो 'राम

सीता' हुआ इसे विपर्य अर्थात् उलट देने से 'सीताराम' पद की सिद्धि हुई।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि 'सीताराम' का इसी प्रकार भजन करो क्योंकि ये सब दुःखों के शान्त करनेवाले हैं। दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि चाहे 'राम सीता' को विपर्य करके अर्थात् 'सीताराम' बनाकर भजन करो अथवा ऐसे ही 'राम सीता' ही रूप में भजो ॥५३॥

दोहा

तौ तोहि कहँ सब कोउ सुखद, करिहिं कहा तव पाँच।
हरब तृतिय वारिज बरन, तजब तीनि सुनु साँच ॥५४॥

व्याख्या—पाँच से भाव पञ्च तत्त्वों, पञ्चतन्मात्राओं, पञ्चेन्द्रियों अथवा काम, क्रोध, लोभ, तृष्णा और अहंकारादि पञ्चविकारों से है। वारिज=कमल, अर्थात् 'तामरस' के तृतीयवर्ण 'र' का हरण किया तो 'तामस' बचा जिसमें तीन वर्ण हैं, इन्हें भी छोड़ देना चाहिये।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यदि तू श्रीराम का भजन करेगा तो ये पाँचों तुम्हारा क्या कर सकेंगे? अर्थात् इनसे तुम्हारी कोई हानि नहीं हो सकती और सत्य ही तामस को छोड़ देना उचित है ॥५४॥

दोहा

तजहु सदा शुभ आश अरि, भजु सुमनस अरि काल।
सजु मत ईश अवन्तिका, तुलसी विमल विशाल ॥५५॥

व्याख्या—शुभआश=उत्तम कल्याणकारी कर्म तिनके अरि कुकर्म। सुमनस=देवता, तिनका अरि 'रावण' उसके काल 'राम'। अवन्तिका= उज्जयिनी, अर्थात् 'काशी' इसके ईश, शिव। शिव का मत, अर्थात् 'राममक्ति'।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि विमल विशाल राम का भजन करो

और उनकी भक्ति से अपने मन को सुसज्जित करो ॥५५॥

दोहा

एत वंश वर बरण युग , सेत जगत सरि जान ।
चेत सहित सुमिरन करत , हरत सकल अघ खान ॥५६॥

व्याख्या—एत=सूर्य्य ।

अर्थ—श्रेष्ठ सूर्य्यवंश में जिनका जन्म है और जिनके नाम के दोनो अक्षर संसाररूपी सरिता के पुल हैं, उन राम के नाम को चेत के साथ स्मरण करने से सब प्रकार के घोर पाप कट जाते हैं ॥५६॥

दोहा

मैत्री बरन यकार को , सह स्वर आदि बिचार ।
पंच पवर्गहिं युत सहित , तुलसी ताहि सँभार ॥५७॥

व्याख्या—'य र ल व' ये अन्तस्थ वर्ण हैं, इनका मैत्री अर्थात् दूसरा वर्ण 'र' है, उसे सस्वर करने से 'रा' और पवर्ग का पाँचवाँ वर्ण 'म' दोनों को एकत्र किया तो 'राम' बना ।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि राम नाम को सम्हालो अर्थात् स्मरण करो ॥५७॥

दोहा

हल जम मध्य समान युत , याते अधिक न आन ।
तुलसी ताहि विसारि सठ , भरमत फिरत भुलान ॥५८॥

व्याख्या—अब यहाँ पाणिनि सूत्रों के प्रत्याहारानुसार वर्णों की गणना निकालते हैं । हल—ह य व र ल में से 'र' जम—ञ म ङ ण न में से 'म' लेकर 'रम' बनाया और पुन समान—'अ इ उ ऋ लृ समाना' में से अकार मध्य में डालकर 'राम' शब्द की रचना की ।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं जिस राम से बढ़कर बड़ा अन्य कोई भी नहीं है उसे ऐ शठ! तू बिसार कर जहाँ-तहाँ भूला हुआ भ्रमण करता है अर्थात् मारा-मारा फिरता है ॥५९॥

दोहा

कौन जाति सीता सती, को दुखदा कटु बाम।
कोकहिये शशिकर दुखद, सुखदायक को राम ॥५९॥

व्याख्या—इस दोहे में प्रश्नोत्तर मात्र है।

अर्थ—प्रश्न०—सीता कौन जाति थी? उत्तर—सती। प्रश्न—संसार में दुःखदायिनी कौन है? उ०—कटु बाम अर्थात् अप्रिय वादिनी स्त्री। प्र०—चकवा चकई के हृदय में कौन दुःख पहुँचाता है? उ०—चन्द्र-किरण। प्र०—संसार में सुखदायक कौन है? उ०—राम ॥५९॥

दोहा

को शङ्कर गुरु बाग बर, शिवहर को अभिमान।
करता को अज जगत को, भरता को अज जान ॥६०॥

अर्थ—प्र०—कल्याण करनेवाला कौन है? उ०—गुरु के श्रेष्ठ वचन। प्र०—कल्याणों का अपहरण करनेवाला कौन है? उ०—अभिमान। प्र०—जगत का कर्त्ता कौन है? उ०—ब्रह्मा। प्र०—संसार का पोषण करने-वाला कौन है? उ०—विष्णु ॥६०॥

दोहा

स्वर श्रेयस राजीव गुण, करु तेहि दिढ़ पहिचान।
पंच पवर्गहिं युत सहित, तुलसी ताहि समान ॥६१॥

व्याख्या—राजीव=कमल, तामरस, इसका तीसरा वर्ण 'र' इसमें श्रेयस स्वर 'अ' मिलाया तो 'रा' हुआ। इसके आगे पवर्ग का पञ्चम वर्ण 'म' मिला दिया तो 'राम' शब्द बना।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि राम के साथ दृढ़ पहिचान करो अर्थात् प्रीति करो ॥६१॥

दोहा

होत हरख का पाय धन, विपति तजे का धाम।
दुखदा कुमति कुनारि तर, अति सुखदायक राम ॥६२॥

अर्थ—प्र०—क्या पाने से हर्ष होता है? उ०—धन। प्र०—क्या छोड़ने से विपत्ति होती है? उ०—धाम। प्र०—अत्यन्त दुःखदा कौन है? उ०—दुर्बुद्धि स्त्री। प्र०—अत्यन्त सुखदायक कौन है? उ०—राम ॥६२॥

दोहा

वीर कौन सह मदन शर, धीर कौन रत राम।
कौन क्रूर हरि-पद विमुख, को कामी वशवाम ॥६३॥

अर्थ—प्र०—वीर कौन है? उ०—जो काम के बाण को सहन कर सके। प्र०—धीर कौन है? उ०—जो राम में तत्पर है। प्र०—क्रूर कौन है? उ०—जो हरि के चरणों से विमुख है। प्र०—कामी कौन है? उ०—जो स्त्री के वशीभूत है ॥६३॥

दोहा

कारण को कं जीव को, खं गुण कह सब कोय।
जानत को तुलसी कहत, सो पुनि आवन होय ॥६४॥

अर्थ—प्र०—जीव का कारण क्या है अर्थात् क्यों जन्म लेता है? उ०—कं अर्थात् कामना। उस जीव का वास्तविक गुण खं अर्थात् आकाश का भाव यह है कि निर्लेप है। तुलसीदास कहते हैं उस स्वरूप को जो जान लेता है उसका आवागमन नहीं होता अर्थात् मुक्त हो जाता है ॥६४॥

दोहा

तुलसी बरण बिकल्प को, औ चप तृतिय समेत।
अन समुझे जड़ सरिस नर, समुझै साधु सचेत ॥६५॥

व्याख्या—बिकल्प का वर्ण 'वा' और चप से 'च ट त क प' का तृतीय वर्ण 'त' दोनों मिलाने से 'बात' शब्द हुआ।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि बिना बात समझे मनुष्य जड़ सदृश है और जो समझते हैं वे बुद्धिमान सन्त हैं ॥६५॥

दोहा

जासु आसु सरदेव को, अरु आसन हरि बाम।
सकल दुखद तुलसी तजहु, मध्य तासु सुख धाम ॥६६॥

व्याख्या—सरदेव=देवताओं का तालाब, 'मानसर' ही जिसका आसु अर्थात् वासस्थान है, वह मराल है। इसका मध्य वर्ण 'रा' और हरि बाम=विष्णु की स्त्री, लक्ष्मी, उनका आसन 'कमल' उसका मध्यवर्ण 'म' हुआ। दोनों को मिला देने से 'राम' शब्द बना।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सर्व दु:खद झंझटों को छोड़कर सुख-धाम राम का भजन करो ॥६६॥

दोहा

चंचल तिय भजु प्रथम हरि, जो चाहसि परधाम।
तुलसी कहहिं सुजन सुनहु, यही सयानप काम ॥६७॥

व्याख्या—चंचल=पारा, तिय=बाम। इन दोनों शब्दों के आदि वर्ण को हरण करने से 'राम' शेष रहा।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हे सज्जनो! सुनो यह चतुरता का काम है कि जो तुम परमपद की प्राप्ति चाहते हो तो 'राम' का भजन करो ॥६७॥

दोहा

कुलिश धर्म युग अन्तयुत , भजु तुलसी युतकाम ।
अशुभ हरण संशय शमन , सकल कला गुण धाम ॥६८॥

व्याख्या—कुलिश=वज्र, हीरा के अन्त्यवर्ण 'रा' और धर्म का अन्त्य-वर्ण 'म' दोनों एकत्रित करने से 'राम' शब्द बना।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सब कलाओं एवं गुणों के धाम, अशुभ के हरण करनेवाले और संशयों के शमन करनेवाले राम को प्रेम के साथ भजो ॥६८॥

दोहा

श्रीकर को रघुनाथ हर , अनयश कह सब कोय ।
सुखदा को जानत सुमति , तुलसी समता दोय ॥६९॥

अर्थ—प्र०—कल्याण करनेवाला और अपयश को हरण करनेवाला कौन है ? उ०—रघुनाथ। तुलसीदास कहते हैं कि इस बात को सब कोई जानते और कहते हैं कि सुन्दर बुद्धि तथा समता ये दोनों सुख देने-वाली हैं ॥६९॥

दोहा

बैर मूल हित हर वचन , प्रेम मूल उपकार ।
दोहा सरल सनेह मय , तुलसी करे विचार ॥७०॥

व्याख्या—दोहा=दोनों को नाश करनेवाला।

अर्थ—प्र०—बैर का मूल क्या है ? उ०—हित हरनेवाला वचन, प्र०—प्रेम का मूल क्या है ? उ०—उपकार। तुलसीदास कहते हैं विचार करके दोनों (बैर, प्रीति) को नष्ट करो और सरल स्नेहमय व्यवहार सबके साथ रखो ॥७०॥

दोहा

प्राग कवन गुरु लघु जगत, तुलसी अवर न आन।

श्रेष्ठ को हरि भक्ति सम, को लघु लोभ समान ॥७१॥

अर्थ—प्र०—इस तुच्छ संसार में ऐसा कौन प्राग (बड़ा) है जिसकी समता का दूसरा कोई नहीं है? उ०—गुरु। तुलसीदास कहते हैं कि हरि भक्ति के समान श्रेष्ठ और लोभ के समान लघु कौन है? अर्थात् कोई भी नहीं ॥७१॥

दोहा

बरन द्वितिय नाशक निरय, तुलसी अन्त रसाल।

भजहु सकल श्रीकर सदन, जनपालक खलसाल ॥७२॥

व्याख्या—निरय=नरक, उसके नाशक 'नारायण' उसका द्वितीय वर्ण 'रा' और रसाल='आम' का अन्तिम वर्ण 'म' दोनों एकत्रित करने से 'राम' बना।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सब प्रकार के कल्याणों के धाम, भक्तों के प्रतिपालक तथा दुर्जनो के विनाशक 'राम' का भजन करो ॥७२॥

दोहा

चप श्रेयस स्वर सहित गुनि, जम् युत दुखद न आन।

तुलसी हल युत ते कुशल, अन्तिकार सह जान ॥७३॥

व्याख्या—चप='चटतकप' में से 'क' लिया, उसको श्रेयस स्वर 'अकार' के साथ विचार कर मिलाया तो 'का' हुआ। पुनः जम्='जण न ङम' में से 'म' निकाल कर उस 'का' में मिलाया तो 'काम' शब्द बना। 'र' और 'ल' ये दोनों वर्ण परस्पर सवर्ण हैं अत. हल शब्द के स्थान में हर शब्द व्यवहृत हुआ इसके अन्त्य रकार को इकार के साथ किया तो 'हरि' शब्द की सिद्धि हुई।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि काम से बढ़कर अन्य कोई दुःख-दायक और 'हरि' से बढ़कर कोई कुशलकर्त्ता नहीं है ॥७३॥

दोहा

तुलसी जम गन बोध बिनु, कहु किमि मिटै कलेश।
ताते सतगुरु शरण गहु, याते पद उपदेश ॥७४॥

व्याख्या—'जम' और 'गन' ये दो शब्द हैं। इन दोनों शब्दों के आदि वर्णों को इकट्ठा करने से 'जग' और अन्त्य वर्णों को एकत्रित करने से 'मन' शब्द बनता है।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यह मन जगत में आसक्त है। अत यथार्थ बोध हुए बिना इस जीव का क्लेश नहीं मिट सकता। हे मन तू सद्‌गुरुओं की शरण जा जिनसे तुम्हारी यथार्थ स्थिति का उपदेश मिलेगा ॥७४॥

दोहा

भगण जगण कासो करसि, राम अपर नहिं कोय।
तुलसी पति पहिचान बिन, कोउ तुल कबहुँ न होय ॥७५॥

व्याख्या—भगण के आदि में गुरु होता है जैसे 'तामस' और जगण के मध्य में गुरु होता है जैसे 'विरोध'। तुल=शुद्ध।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हे मन! तू तामस में पड़कर किससे विरोध करता है? सब में राम व्यापक हैं। अतः कोई भी तुमसे अन्य नहीं अर्थात् सब प्राणि-मात्र एक हैं। पति के पहचाने बिना कोई भी जीवात्मा शुद्ध नहीं हो सकता ॥७५॥

दोहा

तुलसी तगण बिहीन नर, सदा नगण के बीच।
तिनहिं यगण कैसे लहै, परे सगण के कीच ॥७६॥

व्याख्या—तगण का देवता आकाश है और वह निर्मल है। नगण में तीनों वर्ण लघु होते हैं जैसे 'नरक'। यगण का फल बुद्धि वृद्धि है। सगण का फल मृत्यु अर्थात् जन्म मरणादि है।

अर्थ—जो निर्मलता से विहीन अर्थात् मलयुक्त पुरुष हैं वे सदा नरक के मध्य में हैं। तुलसीदास कहते हैं कि उन्हें ज्ञान की प्राप्ति कैसे हो सकती है, वे तो जन्म मरण की कीचड़ में लिथड़े हुए हैं ॥७६॥

दोहा

इन्द्र रवनि सुर देव ऋषि, रुकुमिणि पति शुभ जान।
भोजन दुहिता काक अलि, आनँद अशुभ समान ॥७७॥

व्याख्या—काव्य के आठ गणों में म, न, भ और य गण को शुभ तथा ज, र, स और त गण को अशुभ बतलाया है।

	शब्द	अर्थ	गण	आकार	देवता	फल	
शुभगण	इन्द्र रवनि	इन्द्राणी,	मगण	ऽऽऽ	भूमि	श्रीदाता	देव संज्ञक
	सुर	अमर	नगण	।।।	शेष	सुखद	
	देवऋषि	नारद	भगण	ऽ।।	चन्द्र	यशदाता	दास संज्ञक
	रुकुमिणिपति	विहारी	यगण	।ऽऽ	जल	बुद्धिवृद्धि	
अशुभगण	भोजन	अहार	जगण	।ऽ।	रवि	रोगप्रद	उदास संज्ञा
	दुहिता	पुत्रिका	रगण	ऽ।ऽ	अग्नि	दाहक	शत्रु संज्ञा
	काक	बलिभुक्	सगण	।।ऽ	कालदेव	मृत्युद	शत्रु संज्ञा
	अलि	शारङ्ग	तगण	ऽऽ।	आकाश	शून्य	उदास संज्ञा

अर्थ—प्रथम के चार गण शुभ एवं अन्त के चार आनन्द में भी अशुभ समान गण हैं।

दोहा

को हित सन्त अहित कुटिल, नाशक को हित लोभ।
पोषक तोषक दुखद अरि, शोषक तुलसी क्षोभ ॥७८॥

अर्थ—प्र०—हित कौन है? उ०—सन्त? प्र०—अहित कौन है? उ०—कुटिल। प्र०—हित नाशक कौन है? उ०—लोभ। प्र०—पुष्टि कर्त्ता कौन है? उ०—तोषक अर्थात् सन्तोषी। प्र०—दुःखद कौन है? अरि। तुलसीदास कहते हैं कि प्र०—शोषक कौन है? उ०—क्षोभ ॥७८॥

दोहा

सदा मगण पद प्रीति जेहि, जानु नगण सम ताहि।
यगण ताहि जय युत रहत, तुलसी संशय नाहिं ॥७९॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि काव्य के पद अर्थात् चरणों में मगण दो अथवा उसी के सदृश नगण भी दे सकते हो। यगण देने से जय युत रहता है इसमें संशय नहीं है अर्थात् मगण, नगण, यगण तीनों श्रेष्ठ गण हैं। अब भगण की प्रशंसा आगे लिखते हैं ॥७९॥

दोहा

भगण भक्तिकर भरम तजि, तगण सगण विधि होय।
सगण सुभाय समुझि तजो, भजे न दूषण कोय ॥८०॥

अर्थ—भगण भी भक्तिकर है अत: भ्रम छोड़कर इन चार गणों को भजने अर्थात् पदों में देने से कोई दूषण नहीं है। पुनः कहते हैं कि तगण भी सगण जैसा ही (अशुभ) है, इस कारण शेष चारों गणो (ज, र, स, त) को सगण के स्वभाव (मृत्यु) जैसा समझकर छोड़ दो ॥८०॥

दोहा

श्रृङ्ग आसन युक्त यू, विहरत तीर सुधीर।
यज्ञ पाप मय त्राण पद, राजत श्री रघुबीर ॥८१॥

व्याख्या—शक्रज=धनुष, उसका आसन बाण अर्थात् पर्याय से 'सर' लिया इसमें 'यू' मिलाया तो 'सरयू' शब्द बना। यज्ञ का पर्याय 'मख' तथा पाप का पर्याय 'मल' लेकर 'मखमल' शब्द बनाया।

अर्थ—अत्यन्त धैर्यवाले श्रीरामचन्द्र मखमल मय जूता धारण किये सरयू के तट पर विहार करते हुए सुशोभित हैं ॥८१॥

दोहा

बाण सयुत यू तट निकट, बिहरत राम सुजान।
तुलसी कर कमलन ललित, लसत शरासन बान ॥८२॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सुजान रामचन्द्र (बाण='सर' उसमें 'यू' मिलाने से) सरयू के तट और उसके निकट विहार करते हैं और उनके कमल करों में सुन्दर धनुष और बाण सुशोभित हैं ॥८२॥

दोहा

मृदु मेचक शिररुह रुचिर, शीश तिलक भ्रू बंक।
धनु शर गहि जनु तड़ित युत, तुलसी लसत मयंक ॥८३॥

अर्थ—सिर पर काले मुलायम बाल, ललाट पर सुन्दर तिलक और भौंहें टेढ़ी हैं, (कवि उत्प्रेक्षा करता है) मानो चन्द्रमा धनुषबाण धारण कर विद्युत के साथ सुशोभित है ॥८३॥

दोहा

हंस कमल बिच बरण युग, तुलसी अतिप्रिय जाहि।
तीनि लोक महँ जो भजे, लहै तासु फल ताहि ॥८४॥

व्याख्या—हंस=मराल। और कमल। इन दोनों के बीच के दो वर्ण 'रा' और 'म' एकत्रित करने से 'राम' शब्द बना।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि इन तीनों लोकों में जिस किसी

व्यक्ति ने किसी अन्य देवता को भजकर जो फल प्राप्त किया हो वही फल उस व्यक्ति को अनायास प्राप्त होता है जिसे 'राम' अत्यन्त प्यारे हैं ॥८४॥

दोहा

आदि म है अन्त हु म है, मध्य र है सो जान।
अनजाने जड़ जीव सब, समुझै सन्त सुजान ॥८५॥

व्याख्या—आदि 'म' मध्य 'र' पुन. अन्त 'म' रखने से मरम अर्थात् मर्म शब्द बनता है। मर्म=वास्तविक सत्यता।

अर्थ—गोस्वामीजी कहते हैं कि तुम सब बातों का मर्म समझो। बिना इसके जाने मनुष्य जड़वत् है और समझ जाने पर वही मनुष्य सज्जन और सन्त पद का अधिकारी बनता है ॥८५॥

दोहा

आदि द है मध्ये र है, अन्त द है सो बात।
राम विमुख ते होत है, राम भजन ते जात ॥८६॥

व्याख्या—आदि में 'द' मध्य में 'र' और पुन. अन्त में 'द' रखने से 'दरद' अर्थात् दर्द शब्द बना। दर्द=पीड़ा, वेदना, दुःखादि।

अर्थ—गोस्वामीजी कहते हैं कि राम के विरुद्ध होने से पीड़ा होती है और वह पीड़ा राम-भजन से नष्ट हो जाती है अत· यदि संसार में सुख चाहते हो तो राम-भजन करो ॥८६॥

दोहा

ललित चरण कटि कर ललित, लसत ललित बनमाल।
ललित चिबुक द्विज अधर सह, लोचन ललित विशाल ॥८७॥

अर्थ—गोस्वामीजी कहते हैं कि श्रीराम के चरण, कटि, हाथ, माला, चिबुक, दाँत, होंठ और बड़े-बड़े नेत्रादि सभी ललित अर्थात् सुन्दर शोभायमान हैं ॥८७॥

दोहा

भरण हरण अव्यय अमल, सहित विकल्प बिचार।
कह तुलसी मति अनुहरत, दोहा अर्थ अपार ॥८८॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मैंने निज बुद्धि के अनुसार भरण (अध्याहार वा वृद्धि), हरण (लोप वा अदृश्य), अव्यय (अव्ययों की सहायता से शब्दार्थ को संगठित कर) और विकल्प (अर्थात् कहीं गुरु का लघु और कहीं लघु का गुरु करके) इन विचारों से युक्त अनेकार्थ प्रतिपादन करनेवाले दोहे लिखे हैं ॥८८॥

दोहा

वशिष्ठादिलंकार महँ, संकेतादि सु रीति।
कहे बहुरि आगे कहब, समुझब सुमति बिनीत ॥८९॥

अर्थ—वशिष्ठादि अलंकारान्तर्गत सांकेतिक और कूट रीति का मैंने वर्णन किया और पुनः आगे भी करूँगा जिसे बुद्धिमान और विनीत जन ही समझेंगे ॥८९॥

दोहा

कोष अलंकृत सन्धि गति, मैत्री बरण बिचार।
हरण भरण सुविभक्ति बल, कविहिं अर्थ निरधार ॥९०॥

अर्थ—कोप, अलंकार, सन्धि, समास विचार, हरण (लोप), भरण (आदेश) और विभक्तियों के सुन्दर बल से ही कविजन अपने हृदयंगत अर्थों का प्रकाशन करते हैं ॥९०॥

दोहा

देश काल करता करम, बुधि विद्या गति हीन।
ते सुरतरु तर दारिदी, सुरसरि तीर मलीन ॥९१॥

अर्थ—जो मनुष्य देश-काल की गति नहीं जानते, व्याकरण सम्बन्धी कर्त्ता और कर्म की भी पहचान नहीं रखते और बुद्धि एवं विद्या से भी रहित हैं वे कल्पवृक्ष के नीचे जाने पर भी निर्धन अथच गंगा के तट पर निवास होने पर भी मलिन ही रहते हैं ॥९१॥

दोहा

देश काल गति हीन जे, करता करम न ज्ञान।
तेपि अर्थ मग पग धरहिं, तुलसी स्वान समान ॥९२॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जो पुरुष देश-काल की गति नहीं जानते और कर्त्ता, कर्मादि कारकों का भी जिन्हें बोध नहीं ऐसे मनुष्य यदि अर्थ करने की ओर पग धरें अर्थात् गद्य-पद्यात्मक प्रबन्धों का अर्थ करने चलें तो उन्हें कुत्ते की नाईं समझो ॥९२॥

दोहा

अधिकारी सब औसरी, भलो जानिबो मन्द।
सुधा सदन वसु बारहो, चौथे अथवा चन्द ॥९३॥

अर्थ—अवसर पाकर भले भी मन्द एवं मन्द भी भले पद के अधिकारी बन जाते हैं। (शनैश्चर ग्रह परममन्द प्रसिद्ध है वह भी समय पाकर अर्थात् तीसरे, पाँचवें, छठें, नवें और ग्यारहवें स्थानो में रहने से भला कहलाता है, और) सुधासदन चन्द्र भी चौथे, आठवें और बारहवें स्थान में पड़ने से मन्द कहलाता है ॥९३॥

दोहा

नरवर नभ सरवर सलिल, विनय वनज विज्ञान।
सुमति शुक्तिदा शारदा, स्वाती कहहिं सुजान ॥९४॥

अर्थ—श्रेष्ठ कवि जनों का नभ (हृदय) ही सुन्दर जल भरा जलाशय है, जिसमें विनय और विज्ञान के कमल खिले हुए हैं। सज्जनों

का कथन है कि स्वातीरूपी सरस्वती ही सुबुद्धिरूपी सीपी की देने हारी है ॥९४॥

भावार्थ—स्वाती का जल जब सीपी में पड़ता है तो मोती बनता है। कवि के कथन का आशय यह है कि सुन्दर बुद्धिशीलों की विद्या ही उत्तम काव्यरूपी मोतियों की उत्पादिका हो सकती है।

दोहा

शम दम समता दीनता, दान दयादिक रीति।
दोष दुरित हर दरद दर, उर वर विमल विनीत ॥९५॥

अर्थ—शम (सुख दु ख की सहन शक्ति), दम (इन्द्रियों तथा मन का वशीभूत करना), समता, दीनता (निरभिमानता), दान और दया की रीति समस्त दोषों, पापों और पीड़ाओं की दलन करनेवाली एवं हृदय में श्रेष्ठ निर्मल नम्रता की देनेहारी है ॥९५॥

दोहा

धरम धुरीण सुधीर धर, धारण बर पर पीर।
धरा धराधर सम अचल, बचन न विचल सुधीर ॥९६॥

अर्थ—जो धर्म की धुरी को धारण करनेवाले, सुन्दर धैर्यवान्, दूसरों के दुःख में दुखी होनेवाले, पृथिवी तथा पहाड़ के समान अचल (अर्थात् स्थित प्रज्ञ) तथा अपनी प्रतिज्ञा से विचलित होनेवाले नहीं हैं वे ही सज्जन हैं ॥९६॥

दोहा

चौंतिस के प्रस्तार में, अर्थ भेद परमान।
कहहु सुजन तुलसी कहहिं, यहि विधि ते पहिचान ॥९७॥

व्याख्या—व्यञ्जन कुल ३३ हैं परन्तु क्ष त्र ज्ञ मिला देने से ३६ होते

हैं। यहाँ 'क' से 'क्ष' तक ही ३४ वर्ण मानकर कवि ने ३४ का प्रस्तार लिखा। 'क' से १ 'ख' से २ एवं क्रम 'क्ष' से ३४ की गिनती जानना चाहिये।

अर्थ—चौंतीस अक्षरों के विस्तार में गिन-गिनकर मैं तुलसीदास आगे कुछ पद्य लिखता हूँ तदनुसार ही समझकर सज्जन लोग अर्थ भेद प्रमाण युक्त करें ॥९७॥

दोहा

वेद विषम कवरन सतर, सुतर राम की रीति।
तुलसी भरत न भरि हरत, भूलि हरहु जनि प्रीति ॥९८॥

व्याख्या—वेद=चौथा। विषम=बीसवाँ। सतर=शीघ्र। सुतर=कल्पवृक्ष। कवर्ग का चौथा अक्षर 'घ' और बीसवाँ अक्षर 'न' मिला देने से 'घन' शब्द बना जिसका अर्थ मेघ के है।

अर्थ—तुलीदास कहते हैं कि राम की रीति मेघ तथा कल्पवृक्ष जैसी है जो सब को भर देते हैं परन्तु भरकर हरण नहीं करते अत इनसे भूल कर भी प्रीति का ह्रास मत करो ॥९८॥

दोहा

याते गुन कह जानिये, ताते दिग द्विद तीन।
तुलसी यह जिय समुझि करि, जग जित सन्त प्रवीन ॥९९॥

व्याख्या—याते=यकार से गुण नाम तीसरा वर्ण 'म', ताते=तकार से (दिग=१०, द्वि=२ अर्थात् १०+२=१२) बारहवें 'र' और दकार से तीसरा वर्ण 'न' इन तीनों को मिलाया तो मरन, मरण शब्द बना जिसका अर्थ 'मृत्यु' के है।

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि प्रवीण सन्त जन हृदय में मृत्यु का स्मरण कर और यह समझकर कि एक दिन मरण अवश्यम्भावी है, संसार

को जीत लेते हैं अर्थात् संसार के वश नहीं होते उसे ही वश कर लेते हैं ॥९९॥

दोहा

चन्द्र अनिल नहिं है कहूँ, झूठो बिना विवेक।
तुलसी ते नर समुझि हैं, जिनहिं ज्ञान रस एक ॥१००॥

अर्थ—न कोई चन्द्रमा (शीतल) है और न कोई अग्नि (दाहक) है, ये सब मिथ्या हैं, ज्ञान बिना भिन्न-भिन्न भासित होते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जिनका ज्ञान सदा एक रस बना रहता है वही इस बात को समझ सकते हैं ॥१००॥

दोहा

सतसैया तुलसी सतर, तम हर परपद देत।
तुरित अविद्या जन दुरित, बर तुल सम करि लेत ॥१०१॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यह सतसई शीघ्र ही अज्ञानान्धकार नष्ट कर परम पद देती है तथा शीघ्र अविद्याजन्य पापों को विनष्ट कर श्रेष्ठ जनों की तुल्यता में कर लेती है ॥१०१॥

श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदास विरचितायां सप्तशतिकायां सांकेत
वक्रोक्ति राम रस पूर्णः तृतीयस्सर्गः श्रीमद्रामचन्द्र द्विवेदि
रचित सुबोधिनी टीका युक्तः समाप्तः ॥३॥

रासि शलभ विज्ञान निधि, कंज चरण अभिराम।
रासि शलभ अघ दीप दस, परम शान्ति सुखधाम ॥
सर्ग तृतिय तुलसी रचित, 'श्रीपति' तिलक समेत।
भयो पूर्ण पुनि पुनि पढ़े, अधिक अधिक सुख देत ॥

चतुर्थ सर्ग

अथ चतुर्थस्सर्गः सार्थः प्रारभ्यते

दोहा

त्रिविध भाँति को शब्द वर , बिघटन लट परमान ।

कारन अविरल अल पियत , तुलसी अविध भुलान ॥१॥

व्याख्या—शब्द तीन प्रकार के होते हैं—(१) व्यापक, (२) ध्वन्यात्मक, (३) वर्णात्मक । बिघटन=बिखरा हुआ । लट=जटा की नाईं सटा हुआ । अविरल=अचल, स्थिर । अल=पूर्ण । अविध=निषेधात्मक ।

जिस प्रकार केश एक व्यापक शब्द है वह दो रूप में दीख पड़ता है (१) लट रूप में, (२) बिखरे रूप में । तदनुसार ही 'शब्द' एक व्यापक शब्द है वह दो प्रकार से सुनने में आता है (१) ध्वन्यात्मक, जैसे—पशुओं की बोली, सहनाई आदि वाद्यों के शब्द और (२) वर्णात्मक, जैसे—मनुष्यों की बोली । वर्णात्मक शब्द के दो भेद हैं—(१) विधि-वाक्य और (२) निषेध-वाक्य ।

अर्थ—श्रेष्ठ शब्द तीन प्रकार के लट और बिथुरे रूप में सुने जाते हैं । तुलसीदास कहते हैं कि यह जीव स्थिर भाव से अविध अर्थात् निषेधात्मक शब्दों को ही पूर्णरूप से पान करता है । इस कारण भूला हुआ है ॥१॥

भावार्थ—शास्त्रोक्त विधि वाक्यों को न मानकर निषेधपरक वाक्यो को ही अज्ञानी जीव विधिवत् मानते और करते हैं। इस कारण सदा अज्ञान और अकर्म में पडे हैं।

दोहा

दिग भ्रम जा विधि होत है, कौन भुलावत ताहि।
जानि परत गुरु-ज्ञान ते, सब जग संशय माहि ॥२॥

अर्थ—जिस प्रकार मनुष्य को दिशा का भ्रम स्वयं हो जाता है उसे कोई भुलवाता नहीं तदनुसार ही सब संसार स्वयं सशय में पडा है जो गुरुओं के उपदेश से जान पड़ता है ॥२॥

दोहा

कारण चारि विचारु वर, वर्णन अपर न आन।
सदा सोऊ गुण दोषमय, लखि न परत विन ज्ञान ॥३॥

व्याख्या—जीव के भूलने के चार प्रधान कारण हैं—(१) जात्य-भिमान, (२) कुलाभिमान, (३) गुणाभिमान और (४) कर्माभिमान। ये चारों गुण और दोषमय हैं जैसे—किसी को यह अभिमान हो कि मैं ब्राह्मण हूँ, कपिल-कणाद के कुल में जन्म हुआ, विद्वान हूँ और वैदिक कर्मों का करनेवाला हूँ अत मुझे कदापि अनाचार की ओर पैर धरना उचित नहीं तो यहाँ ये चारों अभिमान गुणमय हैं और तद्विपरीत व्यर्थ अभिमान रखकर नीच कर्म में प्रवृत्त होना दोषमय है।

अर्थ—श्रेष्ठ विचार द्वारा देखो येही चार कारण हैं अन्य कोई नहीं। वे भी सदा गुण और दोष से मिले हुए हैं जो बिना ज्ञान के समझ में नहीं आते ॥३॥

दोहा

यह करतब सब ताहि को, यहि ते यह परमान।
तुलसी मरम न पाइ हौ, बिनु सद्गुरु बरदान ॥४॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि ये सब उपर्युक्त कर्तव्य उसी जीव के हैं अत यही प्रमाण करना पड़ता है कि बिना सद्गुरुओं के वरदान पाये वास्तविक मर्म नहीं मिल सकता ॥४॥

दोहा

दिग्भ्रम कारण चारि ते, जानहिं सन्त सुजान।
ते कैसे लखि पाइ हैं, जे वहि विषय भुलान ॥५॥

अर्थ—उपर्युक्त चारों ही कारण इस जीव के दिग्भ्रम के हैं जिन्हें चतुर सन्त ही जानते हैं। जो उसी विषय में भूले हुए हैं वे कैसे समझ पावेंगे ? ॥५॥

दोहा

सुख दुख कारण सो भयो, रसना को सुत वीर।
तुलसी सो तब लखि परै, करै कृपा बरधीर ॥६॥

अर्थ—वही वीर रसना-सुत (शब्द) ही सुख-दुःख का कारण बना हुआ है। तुलसीदास कहते हैं जब बरधीर (राम) कृपा करें तभी यह बात समझ में आती है ॥६॥

दोहा

अपने खोदे कूप महँ, गिरे यथा दुख होइ।
तुलसी सुखद समुझ हिये, रचत जगत सब कोइ ॥७॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिस प्रकार अपने खोदे कूप में भी गिर जाने से दुःख ही होता है परन्तु जगत में सब कोई सुखदायक जान कर ही कूप खुदवाते हैं ॥७॥

दोहा

ता बिधि ते अपने विभव, सुख दुख दे करतार।
तुलसी कोउ कोउ सन्तवर, कीन्हें विरति बिचार ॥८॥

अर्थ—उसी प्रकार अपने ऐश्वर्य्य में भूलकर मनुष्य जैसे कर्म करता है तदनुसार ही सुख-दुःख परमात्मा देता है। तुलसीदास कहते हैं कि कोई-कोई सन्त महात्मा विचारपूर्वक वैराग्य धारण कर लेते हैं ॥८॥

दोहा

रसना ही के स्रुत उपर, करत करन तर प्रीति।
तेहि पाछे जग सब लगे, समझ न रीति अरीति ॥९॥

अर्थ—शब्दो के ऊपर भूल कर ही कान अत्यन्त प्रीति मान लेता है। उसीके पीछे रीति-अरीति बिना समझे ही सारा ससार पडा हुआ है ॥९॥

दोहा

माया मन जिव ईश भनि, ब्रह्मा विष्णु महेश।
सुर देवी औ ब्रह्म लों, रसना स्रुत उपदेश ॥१०॥

अर्थ—माया, मन, जीव, ईश्वर कथन, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवता, देवी और ब्रह्म तक ये सब शब्दोपदेश से ही जाने जाते हैं ॥१०॥

दोहा

वर्ण-धार वारिधि अगम, को गम करै अपार।
जन तुलसी सतसंग बल, पाये विशद विचार ॥११॥

अर्थ—शब्द-धार अथाह समुद्र है उस सीमा-रहित सागर का थाह कौन पा सकता है? तुलसीदास कहते हैं कि शब्द-शास्त्र का निर्मल विचार हरिभक्त जन सतसङ्ग के बल जान जाते हैं ॥११॥

दोहा

गहि सुबेल बिरले समुझि, बहिगे अपर हजार।
कोटिन डूबे खबरि नहिँ, तुलसी कहहिँ बिचार ॥१२॥

अर्थ—तुलसीदास विचार कर कहते हैं कि कोई-कोई समझदार इस समुद्र में किनारा पकड़कर बच गये अन्यथा अन्य तो सहस्त्रों बह गये और पता नहीं करोड़ों तो डूब गये ॥१२॥

दोहा

श्रवण सुनत देखत नयन, तुलत न विविध बिरोध।
कहहु कहो केहि मानिये, केहि बिधि करिय प्रबोध॥१३॥

अर्थ—कानों से सुनते और आँखों से देखते हुए भी अनेक प्रकार के विरोधों की तुलना (सङ्गति) नहीं लगती। कहिये किसका कथन माना जाय और किस प्रकार सत्यासत्य का प्रबोध (ज्ञान) किया जाय ॥१३॥

दोहा

श्रवणात्मक ध्वन्यात्मक, वर्णात्मक विधि तीन।
त्रिबिध शब्द अनुभव अगम, तुलसी कहहिं प्रवीन ॥१४॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि श्रवणात्मक, ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक ये तीन प्रकार के शब्द हैं जिनका जानना बड़ा ही अगम है और प्रवीण जन भी यही कहते हैं ॥१४॥

दोहा

कहत सुनत आदिहि बरण, देखत वर्ण विहीन।
दृष्टिमान चर अचर गण, एकहि एक न लीन ॥१५॥

अर्थ—कथन और श्रवणमात्र के लिये ही सब जीव एक वर्ण अर्थात् एक हैं परन्तु देखने में तो सब भिन्न-भिन्न प्रतीत हो रहे हैं। चराचर दृष्टिमान जीव एक दूसरे को लीन अर्थात् नष्ट कर रहा है ॥१५॥

दोहा

पञ्च भेद चर गण विपुल, तुलसी कहहिं विचार।
नर पशु स्वेदज खग कृमी, बुध जन मति निरधार ॥१६॥

अर्थ—तुलसीदास विचारपूर्वक कहते हैं कि इन समस्त चर गण के पाच भेद हैं और बुद्धिमान जनों ने यही निश्चय भी किया है—(१) मनुष्य, (२) पशु, (३) स्वेदज, खटमल, जूँ इत्यादि, (४) पक्षि-गण और (५) कीड़े-मकोड़े ॥१६॥

दोहा

अति विरोध तिन महँ प्रबल, प्रगट परत पहिचान।
असथावर गति अपर नहिँ, तुलसी कहहिँ प्रमान ॥१७॥

अर्थ—इन उपर्युक्त पाच प्रकार के चर जीवों में प्रत्यक्ष ही अत्यन्त प्रबल विरोध दिखाई देता है। तुलसीदास प्रमाणपूर्वक कहते हैं कि स्थावरों में भी वही बात अर्थात् विरोध है, यह बात अन्यथा नहीं है ॥१७॥

टिप्पणी—स्थावरों मे परस्पर विरोध इस प्रकार प्रत्यक्ष है कि बड़े वृक्ष अपनी छाया तले दूसरे छोटे पौधे को नहीं फूलने-फलने देते।

दोहा

रोम रोम ब्रह्माण्ड बहु, देखत तुलसीदास।
बिन देखे कैसे कोऊ, सुनि माने विश्वास ॥१८॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि श्रीभगवान के प्रत्येक रोम-रोम में अनेक ब्रह्माण्ड स्थित हैं जिन्हें भक्त जन देखते हैं। अपनी आखों बिना देखे कोई किस प्रकार सुननेमात्र से विश्वास करे ॥१८॥

दोहा

वेद कहत जहँ लगि जगत, तेहि ते अलग न आन।
तेहि अधार व्यवहरत लखु, तुलसी परम प्रमान ॥१९॥

अर्थ—वेद कहते हैं कि जहाँ तक यह चराचर जगत है वह उस

विराटरूप भगवान से पृथक नहीं अर्थात् उसीके अन्तर्गत है। तुलसीदास कहते हैं कि यह परम प्रमाण है और देख भी रहे यह सारा जगत-व्यवहार उसीके आधार पर है ॥१९॥

दोहा

सर्षप सूझत जासु कहँ, ताहि सुमेरु असूझ।
कहे न समुझत सो अबुध, तुलसी विगत विसूझ ॥२०॥

अर्थ—(आश्चर्य तो यह है कि) जिन्हें सरसो तो सूझ रहा है उन्हींकी दृष्टि मे सुमेरु पर्वत नहीं दीख पड़ता। तुलसीदास कहते हैं कि कहने पर भी जिन्हे नहीं सूझता वेही मूर्ख और बुद्धिहीन हैं ॥२०॥

भावार्थ—प्रकृति से बने हुए सूक्ष्म पदार्थ को भी हम नेत्र से देखते हैं परन्तु सब मे व्यापक और सब से बड़े ब्रह्म को हम आँखों से नहीं देख सकते। कवि के कथन का भाव यह है कि सच्चे गुरुओं के उपदेश से ज्ञानी जन तो उस ब्रह्म के स्वरूप को समझ लेते हैं पर अज्ञानियो को समझ में नहीं आता।

दोहा

कहत अवर समुझत अवर, गहत तजत कछु और।
कहेउ सुनै समुझै नहीं, तुलसी अति मति बौर ॥२१॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि लोग ऐसी भोली मति के हो गये कि वे कहते हैं आन, समझते हैं आन, ग्रहण करते हैं आन, त्याग करते हैं आन और कहने सुनने पर भी यथार्थ नहीं समझते ॥२१॥

दोहा

देखो करै अदेख इव, अनदेखो विश्वास।
कठिन प्रबलता मोह की, जल कहँ परम पियास ॥२२॥

अर्थ—(इस जीव की जड़ता देखो) देखी हुई वस्तु में भी अदेख की नाईं करके विश्वास कर लेता है कि यह वास्तव में अदेख ही है। अज्ञान की ऐसी प्रबलता देखिये कि जल को परम प्यास लगी है ॥२२॥

भावार्थ—यह जीव ऐसा अज्ञानी बन गया कि जानी हुई वस्तु को भी अनजान सा देखता है। यह स्वभाव से तो आनन्दस्वरूप है परन्तु अपने स्वरूप को ऐसा भूल गया है कि तनिक-तनिक सुख के लिए तरसता है पर वह भी नहीं प्राप्त होता। यही जल को जल की प्यास है:—

आनँद सिन्धु मध्य तव वासा।
सीकर जल लगि मरत पियासा॥

दोहा

सोइ सेमर सोई सुवा, सेवत पाइ बसन्त।
तुलसी महिमा मोह की, बिदित बखानत सन्त॥२३॥

अर्थ—वही सुग्गा वसन्त आने पर पुन. उसी सेमर का सेवन करता है। तुलसीदास कहते हैं कि अज्ञान की ऐसी प्रबल महिमा है, यह सब पर विदित ही है और सज्जन लोग वर्णन भी करते हैं ॥२३॥

भावार्थ—एक बार सेमर को लोभ के साथ सुग्गे ने सेवन किया पर देख लिया कि इसके फल में कुछ नहीं है, सब रुई धीरे-धीरे उड़ गई और हमें कोई फल का स्वाद न मिला पर अज्ञान ऐसा है कि फिर भी वसन्त आने पर वही सुग्गा उसी सेमर के फूल की लालिमा पर मोहित हो उस पर आश्रित होकर लोभ में बैठा रहता है। उसी प्रकार जीव को बार-बार यह अनुभव होता है कि जगत में कोई आनन्द नहीं पर यह अज्ञानी पुन.-पुन. आनन्द की खोज में संसार में ही अनुरक्त होता जाता है।

दोहा

सुन्यौ श्रवण देख्यो नयन , संशय समन समान ।
तुलसी समता असम भो , कहत आन कहँ आन ॥२४॥

अर्थ—कान से सुना कि अमुक ग्राम में अमुक स्त्री परम सुन्दरी है तब उसे देखने की इच्छा उत्पन्न हुई । पुन: विषय-वश प्रेरित हो, जाकर नेत्रों से देख आये और देखने पर उससे मिलने की इच्छा उत्पन्न हुई । अत: मन में नाना प्रकार की कुतर्कनाएँ तथा वासनाएँ उद्‌भूत हुई और सारी समता (शान्ति) असम (नष्ट) हो गयी और विक्षिप्त होकर कुछ का कुछ कहने लगे ॥२४॥

भावार्थ—विषय की ओर प्रवृत्ति मनुष्य को नीच बना देती है ।

दोहा

वसहीभव अरि हित अहित , सोपि न समुझत हीन ।
तुलसी दीन मलीन मति , मानत परम प्रवीन ॥२५॥

अर्थ—यह ससाररूपी शत्रु मनुष्यों के हृदय में बस गया है अत: हित भी अहित एवं अहित ही हित सूझ पड़ता है । इस बात को भी यह हीन मति नहीं समझता । तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे दीन और मलिन मतिवाले मनुष्य अपने को परम प्रवीण (चतुर) मानते हैं ॥२५॥

दोहा

भटकत पद अद्वैतता , अटकत ज्ञान गुमान ।
सटकत वितरन ते विहठि , फटकत तुष अभिमान ॥२६॥

अर्थ—बहुतेरे मनुष्य अद्वैतवाद में भटकते हुए ज्ञान के गर्व में सब के साथ अटकते (वाद-विवाद करते) फिरते हैं परन्तु वितरन (विशेष तारनेवाली, भक्ति) से हठपूर्वक सटकते हैं और अभिमानवश तुष (भूसा) फटकते हैं ॥२६॥

भावार्थ—"तत्वमसि" इत्यादि वाक्यों के यथार्थ भाव न समझ जो लोग 'अहं ब्रह्मास्मि' की कपोल कल्पना करते हैं उन्हींके विषय में कवि का कथन है कि ऐसे लोगों से मुक्ति देनेवाली भगवद्भक्ति तो बन नहीं पड़ती केवल शुष्क वाद-विवाद में संलग्न रहते हैं।

दोहा

जो चाहत तेहि बिनु दुखित, सुखित रहित ते होइ।
तुलसी सो अतिशय अगम, सुगम राम ते सोइ ॥२७॥

अर्थ—जीव जो चाहता है उसके मिले बिना दुखी रहता है पर जब उसकी वासना से रहित हो जाय तब सुखी हो सकता है। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा होना अत्यन्त कठिन है परन्तु राम की शरण जाने से सुगम ही है ॥२७॥

दोहा

मातु पिता निज बालकहिँ, करहिँ इष्ट उपदेश।
सुनि माने बिधि आप जेहि, निज सिर सहै कलेश ॥२८॥

अर्थ—माता-पिता अपने बालकों को ऐसे ही इष्ट का उपदेश करते हैं कि जिस आज्ञा को सुन और मानकर बालक स्वय अपने सिर पर क्लेश ही सहन करते हैं। अर्थात् ऐसे मूर्ख माता-पिता की उलटी शिक्षा मानने से बालकों का कल्याण नहीं होता ॥२८॥

दोहा

सब सों भलो भनाइबो, भलो होन की आस।
करत गगन को गेंडुवा, सो सठ तुलसीदास ॥२९॥

अर्थ—जो लोग सब देवी-देवताओं से अपनी भलाई याचते फिरते हैं और उनसे भलाई होने की आशा रखते हैं वे अज्ञानी हैं। तुलसीदास कहते हैं कि ये लोग आकाश को गेंडुवा (मुट्ठी) में किया चाहते हैं ॥२९॥

दोहा

बलि मिसु देखत देवता , करनी समता देव ।
मुये मार अविचार रत , स्वारथ साधक एव ॥३०॥

अर्थ—सब देवता तो बलि (उपहार, भेंट अथवा पूजा) के बहाने से प्रसन्न होकर दृष्टि देते हैं और जैसी करनी करो वैसा ही फल देते भी हैं। और सब मनुष्य निश्चय ही स्वार्थसाधक हैं, तथा ऐसे अविचार में रत हैं कि मुये जीव अर्थात् बकरे भेड़े आदि पराधीन, निर्बल पशुओं को मार कर देवताओं की भेंट दे उन्हें प्रसन्नकर अपना काम निकालना चाहते हैं ॥३०॥

टिप्पणी—पशु-बलि का स्पष्ट शब्दों में निषेध किया गया है।

दोहा

बिनहिँ बीज तरु एक भव , शाखा दल फल फूल ।
को बरनै अतिशय अमित , सब बिधि अकल अतूल ॥३१॥

अर्थ—बिना बीज के ही एक पेड़ उत्पन्न हुआ जिसमें सब प्रकार अगणित अनुपम शाखा, पत्ते, फल और फूल हो आये जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥३१॥

भावार्थ—ससार ही एक वृक्ष है जिसमें मनुष्यों की नाना प्रकार की इच्छाएँ शाखा, फल, फूल और पत्तो की नाईं हैं।

दोहा

शुक पिक मुनिगण बुध बिबुध, फल आश्रित अति दीन ।
तुलसी ते सब बिधि रहित , सो तरु तासु अधीन ॥३२॥

अर्थ—मुनि, पंडित और देवतादि ही सुग्गे और कोयल हैं जो फल के आधीन हो अत्यन्त दु खी हैं। तुलसीदास कहते हैं कि दुख से सब प्रकार वे ही रहित हैं जिनके अधीन वह वृक्ष है ॥३२॥

भावार्थ—जो कर्म के फल की आशा रखते हैं वे दुखी और जो फल की आशा नहीं रखते, निष्काम कर्म करते हैं वे ही सुखी हैं।

दोहा

को नहिं सेवत आइ भव, को न सेय पछताइ।
तुलसी वादिहि पचत है, आपहि आप नसाइ ॥३३॥

अर्थ—इस संसाररूपी वृक्ष को कौन सेवन नहीं करता और कौन सेवन कर पश्चात्ताप नहीं करता। तुलसीदास कहते हैं कि सब व्यर्थ मरते-पचते और आप से आप नष्ट हो जाते हैं ॥३३॥

दोहा

कहत विविध फल विमल तेहि, बहत न एक प्रमान।
भरम प्रतिष्ठा मानि मन, तुलसी कथत भुलान ॥३४॥

अर्थ—इस संसाररूपी वृक्ष के अनेक प्रकार के फलों को विमलरूप में वर्णन करते हैं परन्तु एक भी पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। तुलसीदास कहते हैं कि सभी जन भ्रमवश मन से इसकी प्रतिष्ठा (अस्तित्व) मानकर भूले हुए कथनमात्र करते हैं ॥३४॥

दोहा

मृगजल घट भरि विविध विध, सींचत नभ तरु मूल।
तुलसी मन हरषित रहत, बिनहिँ लहे फल फूल ॥३५॥

अर्थ—लोग ऐसे भ्रम में हैं कि मृगतृष्णा के जल को घड़े में भर-भर कर अनेक प्रकार से आकाशरूपी वृक्ष को सींच रहे हैं और तुलसीदास कहते हैं कि विना फल-फूल पाये ही मन में सब प्रसन्न हो रहे हैं अर्थात् मन के सकल्प-विकल्प से ही मनुष्य संतुष्ट रहा करते हैं ॥३५॥

दोहा

सोपि कहहिं हम कहँ लह्यौ, नभ-तरु को फल फूल।
ते तुलसी तिनते बिमल, सुनि मानहिं मुद मूल ॥३६॥

अर्थ—ऐसे लोग यह भी कहते फिरते हैं कि हमें तो आकाशरूपी वृक्ष के फूल और फल प्राप्त हुए हैं। तुलसीदास कहते हैं कि उनसे तो विमल (विचित्र) वे हैं जो श्रवणमात्र से ही परमानन्द मान बैठते हैं ॥३६॥

भावार्थ—यहाँ कवि की व्यङ्गोक्ति मात्र है। भाव यह कि "अहं-ब्रह्मास्मि" इत्यादि अद्वैत कथन और उससे सचाई पाने की कपोल-कल्पना आकाश पुष्पवत् है।

दोहा

तेपि तिन्हैं यांचहि बिनय, करि करि बार हजार।
तुलसी गाडर की ढरनि, जाने जगत बिचार ॥३७॥

अर्थ—वे सुननेवाले भी कथन करनेवाले से हजार बार प्रार्थना करके उसी फूल-फल की याचना करते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि इस जगत का विचार भेंडधसान सा है ॥३७॥

दोहा

ससिकर स्रग रचना किये, कत शोभा सरसात।
स्वर्ग सुमन अवतंस खलु, चाहत अचरज बात ॥३८॥

अर्थ—आश्चर्य की बात तो यह है कि निश्चयपूर्वक ऐसे लोग आकाश फूल को चन्द्रमा की किरणरूपी धागे में पिरोकर माला बना-कर उसीको भूषण समझ रहे हैं ॥३८॥

भावार्थ—चन्द्रमारूपी चंचल मन को शुष्कवादरूपी आकाश पुष्प से पिरोकर जीवात्मा का कल्याण चाहना सर्वथा असम्भव है।

दोहा

तुलसी बोल न बूझई, देखत देख न जोय।
तिन शठ को उपदेश का, करब सयाने कोय ॥३९॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जो ऐसे अज्ञानी लोग हैं कि स्वयं अपने नेत्रों से तो देखने की योग्यता नहीं रखते और अन्यों के उपदेश को भी नहीं समझते उन्हें कोई ज्ञानी जन क्या उपदेश देंगे ? ॥३९॥

दोहा

जो न सुनै तेहि का कहिय, कहा सुनाइय ताहि।
तुलसी तेहि उपदेश ही, तासु सरिस मति जाहि ॥४०॥

अर्थ—जो सुनते ही नहीं उन्हें क्या सुनाया जाय और क्या कहा जाय ? तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे (चपाटों) को जो उपदेश देने जाते हैं, उनकी बुद्धि भी उन्हीं मूर्खों जैसी होगी ॥४०॥

भावार्थ—जो निरे अज्ञानी हैं उन्हें उपदेश देने के लिए जो जाते हैं वे भी अज्ञानी हैं।

दोहा

कहत सकल घट राममय, तौ खोजत केहि काज।
तुलसी कह यह कुमति सुनि, उर आवत अति लाज ॥४१॥

अर्थ—कहते तो ऐसा हैं कि राम सर्वव्यापी हैं जब ऐसा है तो किस काम के लिए अर्थात् क्यों खोजते फिरते हो ? तुलसीदास को, ऐसी दुर्बुद्धि सुनकर मन में अत्यन्त लज्जा आती है ॥४१॥

दोहा

अलख कहहिँ देखन चहहिँ, ऐसे परम प्रवीन।
तुलसी जग उपदेशहीं, बनि बुध अबुध मलीन ॥४२॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि कितने मलिनात्मा अज्ञानी परमात्मा को कहते तो अलख (निराकार) हैं परन्तु ऐसे प्रवीण हैं कि उसे भी देखना चाहते हैं और संसार को उपदेश देते फिरते हैं ॥४२॥

दोहा

हहरत हारत रहित विद, रहत धरे अभिमान।
ते तुलसी गुरुआ बनहिँ, कहि इतिहास पुरान ॥४३॥

अर्थ—आप तो ज्ञान-रहित, सन्मार्ग में चलने से हहर कर हारे हुए और अभिमान से फूले हुए रहते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि आप तो कुछ तत्त्व जानते नहीं पर कथा-पुराण बाँचते फिरते हैं और आप गुरु बनकर अन्यो को शिष्य बनाते चलते हैं ॥४३॥

दोहा

निज नैनन दीसत नहीं, गही आँधरे बाँह।
कहत मोह वश तेहि अधम, परम हमारे नाह ॥४४॥

अर्थ—स्वयं जिन्हे अपनी आँखों से तो सूझता नहीं तिस पर तुर्रा यह कि एक दूसरे अन्धे का हाथ पकड लिया (कि चलो तुम्हें अभीष्ट स्थान पर पहुँचा दूँगा) अब यह दूसरा अन्धा अज्ञानवश उस पहले अधमान्ध को समझ लेता है कि ये तो हमारे परम स्वामी, हितू और गुरु हैं ॥४४॥

टिप्पणी—यहाँ पर श्रीगोस्वामीजी ने आजकल के पाखण्डी गुरुओं का अच्छा चित्र खींचा है। स्पष्ट देख लीजिये जो लोग निरन्तर कुकर्म-कीचड़ में लिथडे हुए नाना प्रकार के अनाचार में रत हो रहे हैं, उन्होंने भी सहस्रों शिष्य बना डाले और अर्थलोलुपता वश कितनों को मूड़ रहे हैं। ऐसे अज्ञानी कि स्वयं तो मुक्ति की परिभाषा तक न जानें और अन्यों को धडाधड मुक्ति लुटा रहे हैं। कविवर का आशय यह है कि ऐसे अधमों से सचेत रहना चाहिये।

दोहा

गगन बाटिका सीचहीं, भरि भरि सिन्धु तरंग।
तुलसी मानहिँ मोद मन, ऐसे अधम अभङ्ग ॥४५॥

अर्थ—आकाश-वाटिका का मन में विचार करते और उसे समुद्र-तरङ्गों से परिपूर्ण सींचते भी हैं। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे निठाह नीच हैं कि मन ही मन प्रसन्न भी होते हैं ॥४५॥

दोहा

दृषद करत रचना विहरि, रंग रूप सम तूल।
विहँग बदन विष्ठा करे, ताते भयो न तूल ॥४६॥

अर्थ—पत्थर को तोड़कर रंगरूप में तदाकार मूर्त्ति बनायी गयी और उसके शरीर पर पक्षी विष्ठा कर देते हैं, परन्तु वह मूर्ति क्रोध नहीं करती ॥४६॥

टिप्पणी—चेतन हो तब तो क्रोध करे?

दोहा

चाह तिहारो आपु ते, मान न आन न आन।
तुलसी करु पहिचान पति, याते अधिक न आन ॥४७॥

अर्थ—हे जीव! तेरी यह वासना आप से आप है इसे कदापि अन्यथा मत मानो (पुष्टि के लिये न आन न आन दोबारा कहा है)। तुलसीदास कहते हैं कि पति (परमात्मा) की पहचान करो इसके अतिरिक्त कुछ नहीं ॥४७॥

दोहा

आतम बोध विचार यह, तुलसी करु उपकार।
कोउ कोउ राम प्रसाद ते, पावत परमत पार ॥४८॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सच्चा आत्मबोध और विचार तो यही है कि परोपकार करो। भगवत्कृपा से कोई-कोई मनुष्य इस सर्वोत्तम मत (परोपकार) को पाकर संसार-समुद्र को पार कर जाते हैं ॥४८॥

दोहा

जहाँ तोष तहँ राम है, राम तोष नहिं भेद।
तुलसी देखी गहत नहिं, सहत विविध विधि खेद॥४९॥

अर्थ—जहाँ सन्तोष है वहीं राम हैं। अतः राम और सन्तोष में कोई द्वैत नहीं है। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा अनेक बार देख चुके कि अमुक भक्त ने सन्तोष किया और उसे राम मिले परन्तु यह हठी जीव देखी बात को भी ग्रहण नहीं करता और अनेक प्रकार के कष्ट सहन कर रहा है ॥४९॥

दोहा

गोधन गजधन बाजिधन, और रतन धन खान।
जब आवै सन्तोष धन, सब धन धूरि समान॥५०॥

अर्थ—जब हृदय में सन्तोषरूपी धन का आगमन हो जाता है तो गौ, हाथी, घोड़े और अनेक प्रकार के रत्न तथा धन की खान ही धूल समान प्रतीत होती है ॥५०॥

दोहा

कथि रति अटत विमूढ़ लट, घट उद्घटत न ज्ञान।
तुलसी रटत हटत नहीं, अतिशय गति अभिमान॥५१॥

अर्थ—इस संसार में सन्तोषहीन मनुष्य वासना में बँधे हुए हैं उसी की प्रीति का कथन भी करते हैं और दीन होकर अज्ञानावस्था में घूमते-फिरते हैं। परन्तु उनके घट (हृदय) में ज्ञान प्रकाशित नहीं होता।

तुलसीदास कहते हैं कि इस प्रकार दक-झक करने से अत्यन्त गहरी अभिमान की प्रवृत्ति हृदय से हटती नहीं ॥५१॥

दोहा

भू भुअँग गत दाम भव, कामन विविध विधान।
तो तन में वर्तमान यव, तत तुलसी परमान ॥५२॥

अर्थ—पृथिवी पर पड़ी हुई रस्सी भ्रमवशात् सर्प प्रतीत होती है। तुलसीदास कहते हैं कि तदनुसार ही तुम्हारे शरीर में जितनी ही अनेक प्रकार की कामनाएँ उत्पन्न होंगी उतनी ही वासना की पुष्टि होती जायगी ॥५२॥

दोहा

भो उर शुक्ति विभव पटिक, मत गत प्रगट लखात।
मन भो उर अपि शुक्ति ते, बिलग विजानव तात ॥५३॥

अर्थ—सीपी के हृदय में जिस प्रकार चाँदी की झलक दिखलाई पड़ती है उसी प्रकार मन में संसार की मिथ्या चमक-दमक प्रतीत हो रही है। हे तात! जब इस सीपीरूपी हृदय के भ्रम से मन पृथक हो गया तब विज्ञानी बन सकता है ॥५३॥

दोहा

रामचरण पहिचान बिनु, मिटी न मन की दौर।
जन्म गँवाये बादिही, रटत पराये पौर ॥५४॥

अर्थ—श्रीराम के चरण को पहचाने विना मन की दौड़ (गति) नहीं मिट सकती। निरन्तर अन्य देवी-देवताओं के द्वार दीन होकर रटते-रटते व्यर्थ जन्म गँवा रहे हो ॥५४॥

दोहा

सुनै बरण मानै बरण, बरण बिलग नहिं ज्ञान।
तुलसी गुरु परसाद बल, परत बरण पहिचान ॥५५॥

अर्थ—कोई भी ज्ञान अक्षरों से पृथक नहीं, जो कुछ सुनाई पड़ता है वह अक्षर ही है और जितने प्रमाणादि माने जाते हैं वे सब अक्षर ही हैं। तुलसीदास कहते हैं कि उस अक्षर (नाशरहित, परमात्मा) का ज्ञान गुरुओं के कृपा-बल से ही हो सकता है ॥५५॥

दोहा

विटप बेलि गन बाग के, मालाकार न ज्ञान।
तुलसी ता विधि विद बिना, कर्त्ता राम भुलान ॥५६॥

अर्थ—जिस प्रकार बाग के वृक्षों और लता समूह को माली का ज्ञान नहीं होता, उसी प्रकार तुलसीदास कहते हैं कि ज्ञान बिना यह जीव अपने कर्त्ता राम को भूला हुआ है ॥५६॥

दोहा

कर्तब ही सो कर्म है, कह तुलसी परमान।
करनहार कर्तार सो, भोगै कर्म निदान ॥५७॥

अर्थ—तुलसीदास प्रमाणपूर्वक कहते हैं कि मनुष्य को कर्त्तव्य (करने योग्य, शुभ) कर्मों को ही करना चाहिये क्योंकि कर्म करनेवाला (जीव) अन्त में परमात्मा के द्वारा अपने कर्म का ही फल भोगता है ॥५७॥

दोहा

तुलसी लट पद ते भटक, अटक अपितु नहिं ज्ञान।
ताते गुरु उपदेश बिनु, भरमत फिरत भुलान ॥५८॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यह जीव लट (नीच, अशुभ) कर्मों में अटककर चंचल हो गया है अतः सच्चा ज्ञान नहीं प्राप्त कर पाता और सद्गुरुओं के उपदेश बिना भूला हुआ मारा-मारा फिरता है ॥५८॥

दोहा

ज्यों बरदा बनिजार के, फिरत घनेरे देश।
खाँड़ भरे भुस खात हैं, बिनु गुरु के उपदेश ॥५९॥

अर्थ—जिस प्रकार बनिजारों के बैल पीठ पर खांड लदी होने पर भी भूसा ही खाते हैं उसी प्रकार गुरु के सदुपदेश बिना यह (आनन्द स्वरूप, जीव) अनेक देश-देशान्तर में ठोकरें खाता फिरता है ॥५९॥

दोहा

बुद्ध्या बारत अनय पद, श्वपिन पदारथ लीन।
तुलसी ते रासभ सरिस, निजमन गहहिं प्रवीन ॥६०॥

अर्थ—अनीति मार्ग पर चलने से बुद्धि मन्द होती है और बुद्धि मन्द होने से उत्तम कर्मों में प्रवृत्ति नहीं होती। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे अशुभ कर्मी अपने को निज मन में तो प्रवीण समझते हैं परन्तु वास्तव में गर्दभ सदृश हैं ॥६०॥

दोहा

कहत विविध देखे बिना, गहत अनेक न एक।
ते तुलसी सोनहा सरिस, वाणी वदहिं अनेक ॥६१॥

अर्थ—बिना देखे हुए अनेक प्रकार के कथन करते हैं और स्वयं उन अनेक कथनों में से एक का भी ग्रहण नहीं करते हैं (अर्थात् आप तो उस पथ पर चलते नहीं पर अन्यों को बड़े-बड़े उपदेश करते हैं)। तुलसीदास कहते हैं कि वे सोनारों की तरह ठगने के लिये भांति-भांति की भाषाएँ बोलते हैं ॥६१॥

दोहा

बिन पाये परतीति अति, करै यथारथ हेत।
तुलसी अबुध अकाश इव, भरि भरि मूठी लेत ॥६२॥

अर्थ—बिना प्रतीति पाये ही जिस-तिस देवता से जो यथार्थ में अत्यन्त प्रीति कर लेते हैं (और समझ लेते हैं कि ये देवता हमें सब कुछ दे देंगे उनके विषय में) तुलसीदास कहते हैं कि वे ऐसे अज्ञानी हैं कि आकाश को मुट्ठियों में भरना चाहते हैं ॥६२॥

दोहा

बसन बारि बाँधत बिहठि, तुलसी कौन बिचार।
हानि लाभ बिधि बोध बिनु, होत नहीं निरधार ॥६३॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यह कौन सा ज्ञान है कि हठकर के वस्त्र में जल बाँधने का यत्न करते हैं। किसी कार्य्य की विधि जाने बिना उसके हानि-लाभ का निश्चय नहीं हो सकता ॥६३॥

दोहा

काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि मन में खान।
का पंडित का मूरखै, दोनों एक समान ॥६४॥

अर्थ—जब तक मन में काम, क्रोध, अभिमान और अहंकार की खान भरी हुई है तब तक पण्डित अथवा मूर्ख दोनों एक समान हैं ॥६४॥

भावार्थ—जो परम पण्डित होकर निज आचरण नहीं सुधारता तो समझिये कि वास्तव में वह मूर्ख ही है।

दोहा

इत कुल की करनी तजे, उत न भजे भगवान।
तुलसी अधवर के भये, ज्यों बघूर को पान ॥६५॥

अर्थ—इधर तो अपने कुल की परम्परा छोड़ दी और उधर भगवद् की आराधना भी न की। तुलसीदास कहते हैं कि जिस प्रकार लवणजल का पान अधमरा होता है वही दशा उनकी हो गयी ॥६५॥

दोहा

कीर सरिस बाणी पढ़त, चाखन चाहत खाँड़।
मन राखत बैराग महँ, घर महँ राखत राँड़ ॥६६॥

अर्थ—सुग्गे की नाईं बिना अर्थ जाने-बूझे वाणी बोलते और खांड़ (उत्तमोत्तम भोजन) खाना चाहते हैं। मन तो दिखावे के लिए वैराग्य में रखते हैं परन्तु घर में कुलटा बैठाये हुए हैं ॥६६॥

भावार्थ—गोसाईं जी कहते हैं कि अनेक दुराचारी ऊपर से वेश बनाये अच्छी-अच्छी बातें सुना-सुना संसार को ठग-ठग कर पूए, मालपूए उड़ाते फिरते हैं परन्तु मन में वैराग्य हो तब तो समझें? काम के वशी-भूत हो व्यभिचार में तत्पर हो जाते हैं, ऐसे पतितों से बचना चाहिये।

दोहा

राम-चरण परचै नहीं, बिन साधन पद नेह।
मूड़ मुड़ायो बादि ही, भाँड़ भयो तजि गेह ॥६७॥

अर्थ—भगवत चरण की तो पहचान नहीं, पर बिना साधन और पद-स्नेह के ही व्यर्थ घर छोड़कर मूड़ मुड़ा भांड बन गये ॥६७॥

दोहा

काह भयो बन बन फिरे, जो बनि आयो नाहिं।
बनते बनते बनि गयो, तुलसी घर ही माहिं ॥६८॥

अर्थ—बन-बन घूमने से क्या हुआ जो कुछ (भजन) नहीं बन पड़ा। तुलसीदास कहते हैं कि घर में ही सुधरते-सुधरते सुधर जाता है ॥६८॥

दोहा

जो गति जानै बरण की, तन गति सो अनुमान ।
बरण बिन्दु कारण यथा, तथा जानु नहिं आन ॥६९॥

अर्थ—अक्षरों की जो गति है वही दशा शरीर की भी समझो । वर्ण में परिवर्त्तन का कारण बिन्दु ही है वैसा ही शरीर में परिवर्त्तन का कारण भी (वासना को ही) समझो दूसरा नहीं है ॥६९॥

टिप्पणी—'ढ' एक अक्षर लिखा, इसके नीचे बिन्दु दिया तो 'ड़' बन गया इसी के सामने बिन्दु दिया तो 'ढ' बन गया इत्यादि । उसी प्रकार मनुष्य तो सब एक आकार के हैं परन्तु वासना के वशीभूत हो भिन्न-भिन्न भाँति के हो गये हैं ।

दोहा

वर्ण योग भव नाम जग, जानु भरम को मूल ।
तुलसी करता है तुही, जान मान जनि भूल ॥७०॥

अर्थ—जिस प्रकार बिन्दु योग से वर्णों के भिन्न-भिन्न नाम होते गये उसी प्रकार मन की वासना से इस संसार में मनुष्य वासना वश नाना प्रकार के लोभी, क्रोधी, कामी इत्यादि नाम पाता है, परन्तु ये नाम उसके असली नहीं प्रत्युत भ्रम के मूल हैं । तुलसीदास कहते हैं कि हे मन ! इन सब नामों का कर्त्ता तुम्हीं इसे जानो परन्तु भूलकर भी इन्हें अपना सच्चा नाम मत जानो ॥७०॥

दोहा

नाम जगत सम जानु जग, वस्तुन करि चित चैन ।
बिन्दु गये जिमि गैन ते, रहत ऐन को ऐन ॥७१॥

अर्थ—जिस प्रकार जगत अस्थायी है वैसे ही नाम चिर स्थिर नहीं है उसी प्रकार जग की वस्तुओं को भी स्थिर न समझो । जिस प्रकार ऐन (ع)

लिखकर एक बिन्दु उसके माथे पर दे दो तो गैन (غ) बन जाता है और गैन (غ) के बिन्दु को मेंट दो तो पुनः ऐन (ع) का ऐन ही रह जाता है ॥७१॥

भावार्थ—वासना और अल्पकालिक प्रवृत्यनुसार मनुष्य की कामी, क्रोधी और लोभी संज्ञा होती है पुन जब वासना जाती रही तो वह शुद्ध हो गया। कथन का भाव यह है कि जीव शुद्ध स्वरूप है परन्तु वासना के वशीभूत हो मलिन प्रतीत होता है। मलिनता उसका स्वरूप-भूत गुण नहीं है।

दोहा

आपुहि ऐन विचार विधि, सिद्धि विमल मति मान।
आन वासना विन्दु सम, तुलसी परम प्रमान ॥७२॥

अर्थ—जीव को उचित है कि अपने स्वरूप को ऐन की भांति शुद्ध और विमल मतिवाला निर्लेप समझे। तुलसीदास इसको दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि अन्य वासनाएं विन्दु तुल्य हैं अर्थात् जीव के साथ वासना का कोई स्वरूप से सम्बन्ध नहीं है। वासना प्रकृति के संसर्ग से आती है ॥७२॥

दोहा

धन धन कहे न होत कोउ, समुझि देखु धनवान।
होत धनिक तुलसी कहत, दुखित न रहत जहान ॥७३॥

अर्थ—हृदय में विचार कर देखो 'धन'-'धन' कहनेमात्र से कोई धनवान नहीं बन जाता। तुलसीदास कहते हैं कि यदि इस प्रकार कथन-मात्र से कोई धनी बन सकता तो संसार में कोई भी दुखी नहीं रह जाता ॥७३॥

भावार्थ—तत्वमसीत्यादि वाक्यों के कथनमात्र से जीव में शुद्धता

प्रकट नहीं हो सकती प्रत्युत् इसके लिए शुभ कर्मों का अनुष्ठान करना पड़ेगा।

दोहा

हिम की मूरति के हिये, लगी नीर की प्यास।
लगत शब्द गुरुतर निकर, सो मै रही न आस ॥७४॥

अर्थ—आश्चर्य तो यह है कि बर्फ की मूर्ति के हृदय में पानी की प्यास लगी हुई है अर्थात् शुद्धानन्दस्वरूप जीव दुःख पा रहा है। यदि गुरु के उत्तम शब्द समूह उसके हृदय में लगें तो उसमें विषय-वासना की आशा न रहे, अर्थात् नष्ट हो जाय ॥७४॥

दोहा

जाके उर बर बासना, भई भास कछु आन।
तुलसी ताहि बिडम्बना, केहि बिधि कथहिँ प्रमान ॥७५॥

अर्थ—जिनके हृदय में उत्तम वासनाएँ (ज्ञान, भक्ति आदि) हैं उनकी बात नहीं कहते परन्तु जिनके हृदय में कुछ अन्यान्य वासनाभास है उनकी लोक-विडम्बना (अपमान) के विषय में तुलसीदास कैसे निश्चयरूप से कहें कि कितनी अप्रतिष्ठा होगी? ॥७५॥

दोहा

रुज तन भव परचे विना, भेषज कर किमि कोय।
जान परै भेषज करै, सहज नाश रुज होय ॥७६॥

अर्थ—शरीर में आए हुए रोग की पहचान किये विना इस संसार में कोई मनुष्य उसकी कैसे औषधि कर सकता है? जब रोग का निदान हो जाय तब यदि उसकी औषधि की जाय तो सरलतापूर्वक रोग का नाश हो जाय ॥७६॥

दोहा

मानस व्याधि कुचाह तव, सद्गुरु वैद्य समान।
जासु वचन जल बल अवश, होत सकल रुज हान ॥७७॥

अर्थ—हे मन! तुम्हारी कुचेष्टाएँ ही मानसिक व्याधियाँ हैं और सदुपदेष्टा गुरु ही वैद्य हैं जिनके पूर्ण दत्युक्त स्वतन्त्रोपदेश से तुम्हारे सब रोगों का उन्मूलन (नाश) होगा ॥७७॥

दोहा

रुचि बाढ़ै सत संग महँ, नीति क्षुधा अधिकाय।
होत ज्ञान बल पीन अल, वृजिन विपति मिटि जाय॥७८॥

अर्थ—तब नीतिरूप क्षुधा की वृद्धि होने के कारण सतसंगरूपी भोजन की ओर रुचि बढ़ी और ज्ञानरूपी बल बढ़कर (हरिभक्तिरूपी) पूर्ण पुष्टता आयी एवं सर्व दुःखों और पापों का मटियामेट हुआ ॥७८॥

दोहा

शुक्ल पक्ष शशि स्वच्छ भो, कृष्ण पक्ष द्युति-हीन।
बढ़त घटत बिधि भाँति बिबि, तुलसी कहहिं प्रवीन ॥७९॥

अर्थ—शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कला बढ़ते-बढ़ते पूर्णिमा में पूर्ण स्वच्छता आ जाती है और कृष्ण पक्ष में कला घटते-घटते अमावस्या में पूर्ण अन्धकार आ जाता है। तुलसीदास कहते हैं कि प्रवीणों का कथन है कि चन्द्रमा के घटने-बढ़ने की ये ही दो रीतियां हैं ॥७९॥

भावार्थ—कवि के कहने का आशय यह है कि सुकर्म करते-करते जीव पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान पूर्ण और विमल हो जाता है और कुकर्म करते-करते उसका जीवन अमावस्या के चन्द्रमा के समान अन्धकारमय हो जाता है।

दोहा

सत संगति सित पक्ष सम, असित असन्त प्रसंग।
जान आप कहँ चन्द्र सम, तुलसी बदत अभंग ॥८०॥

अर्थ—सतसंग को शुक्ल पक्ष, दुर्जन संग को कृष्ण पक्ष तथा अपने को चन्द्रमा के समान समझो। तुलसीदास का ऐसा कथन अमिट है ॥८०॥

दोहा

तीरथ-पति सतसंग सम, भक्ति देवसरि जान।
बिधि उलटी गति राम की, तरनि-सुता अनुमान ॥८१॥

अर्थ—सतसंग एक प्रयाग है जहां भक्तिरूपी गंगा बहती हैं और विधि तथा निषेध (राम-भक्ति की उलटी गति) की जो कर्म-कथा है वही यमुना जानो ॥८१॥

दोहा

बर मेधा मानहुँ गिरा, 'धीर धर्म निग्रोध।
मिलन त्रिवेणी मल हरणि, तुलसी तजहु विरोध ॥८२॥

अर्थ—श्रेष्ठ सदसद्विवेकिनी बुद्धि ही मानो सरस्वती और धर्म की स्थिरता निग्रोध अर्थात् अक्षयवट है। इन तीनों का सम्मेलन ही पाप-हारी संगम है अतः तुलसीदास कहते हैं कि सबसे विरोध त्यागो ॥८२॥

दोहा

समुझब सम मज्जन विशद, मल अनीति गद धोय।
अवशि मिलन संशय नहीं, सहज राम-पद होय ॥८३॥

अर्थ—सब को समान भाव समझना ही इस सतसंगतिरूपी त्रिवेणी में स्नान करना है जिससे अनीतिरूपी मल का नाश होता है। तब इनमें

सन्देह नहीं कि अवश्य अनायास ही रामपद (मुक्ति वा भक्ति) की प्राप्ति होगी ॥८३॥

दोहा

छमा बिमल बाराणसी , सुर अपगा सम भक्ति ।
ज्ञान विशेश्वर अति विशद , लसत दया सह शक्ति ॥८४॥

अर्थ—क्षमा ही एक निर्मल काशी है जहां भक्ति ही गंगा तुल्य और ज्ञानरूप विश्वेश्वर दयारूप शक्ति (भगवती) के साथ सुशोभित हैं ॥८४॥

दोहा

बसत छमा गृह जासु मन , बाराणसी न दूरि ।
बिलसति सुरसरि भक्ति जहँ , तुलसी नय कृत भूरि ॥८५॥

अर्थ—जिसका मन क्षमा के गृह (मध्य) में निवास करता है उससे काशी दूर नहीं है और जहां गंगारूपी भक्ति विराजमान है वहाँ नीति मय कर्मों का ढेर है ॥८५॥

दोहा

सित काशी मगहर असित , लोभ मोह मद काम ।
हानि लाभ तुलसी समुझि , बास करहु बसु याम ॥८६॥

अर्थ—ऐसी दीप्तिमान काशी ही सित (शुक्लपक्ष), तथा लोभ, मोह, मद, कामरूपी मगध देश ही असित (कृष्ण पक्ष) है । तुलसीदास कहते हैं कि अपना हानि-लाभ समझकर जहाँ मन में आवे वहीं आठों पहर निवास करो ॥८६॥

दोहा

गये उलटि आवै नहीं , है सो कस पहचान ।
आजु जेई सोइ कालिह है , तुलसी मर्म न मान ॥८७॥

अर्थ—जो समय बीत गया वह फिर पलटकर आ नहीं सकता। अब जो जीवन शेष है उसी में प्रभु की पहचान करो। तुलसीदास कहते हैं कि भ्रम में मत पड़ो। जो आज है वही कल भी है अर्थात् भगवद्भक्ति करने में आलस्यवश आज-कल मत करो, शीघ्र लग जाओ ॥८७॥

दोहा

वर्तमान आधीन दोउ, भावी भूत बिचार।
तुलसी संशय मन न करु, जो है सो निरवार ॥८८॥

अर्थ—भूत तो गत ही हो गया अब वर्तमान और भविष्य तो तुम्हारे आधीन हैं इन्हें सुधारो। तुलसीदास कहते हैं कि मन के संशय और कुतर्कों को छोड़, जो शेष जीवन है उसका तो सुधार करो ॥८८॥

दोहा

मानस उरबर सम मधुर, राम सुयश शुचि नीर।
हटेउ वृजिन बुधि बिमल भइ, बुध नहिं अगम सुधीर ॥८९॥

अर्थ—सज्जनों के शुद्ध पवित्र हृदय ही मानसरोवर हैं जिनमें मधुर राम का सुयश ही पवित्र जल है। जहां जल के स्थिर होते ही सब पाप हट जाते हैं और बुद्धि निर्मल हो जाती है। वह ज्ञानियों के लिये अगम नहीं अर्थात् सुगम है ॥८९॥

दोहा

अलंकार कवि रीति युत, भूषण दूषण रीति।
बारि जात बरणन विविध, तुलसी बिमल बिनीति ॥९०॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि उक्त मानसर में काव्य के दोष-गुण जानकर अलङ्कार तथा कवित्वशक्ति युक्त निर्मल विनीत भांति-भांति के वर्णन ही नाना प्रकार के कमल हैं ॥९०॥

दोहा

विनय बिचार सुहृदयता, सो पराग रस गन्ध।

कामादिक तेहि सर लसत, तुलसी घाट प्रबन्ध ॥९१॥

अर्थ—विनय, विचार तथा सहृदयता ही इस कमल के पराग, रस और गन्ध हैं। तुलसीदास कहते हैं कि इस सरोवर में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ही चार घाट के प्रबन्ध जैसे हैं ॥९१॥

दोहा

प्रेम उमँग कवितावली, चली सरित शुचिधार।

राम बराबरि मिलन हित, तुलसी हर्ष अपार ॥९२॥

अर्थ—मानसर में प्रेमरूपी उमंग अर्थात् बाढ आने से कवितावली-रूपी पवित्र धारा की नदी (सरयू) बह निकली। वहां तुलसीदास का अपार हर्ष ही राम से मिलने के लिए चलने के समान है ॥९२॥

दोहा

तरल तरंग सु छन्द वर, हरत द्वैत तरु मूल।

वैदिक लौकिक बिधि बिमल, लसत बिशद बर कूल ॥९३॥

अर्थ—सुन्दर श्रेष्ठ छन्द ही तीखे तरंग हैं जो द्वैतरूप किनारे के वृक्षों को जड़ सहित उखाड़ गिराते हैं और श्रेष्ठ लौकिक तथा वैदिक विधि-रूप पवित्र दोनों तट सुशोभित हैं ॥९३॥

दोहा

सन्त सभा विमला नगरि, सिगरि सुमंगल खान।

तुलसी उर सुरसर-सुता, लसत सुथल अनुमान ॥९४॥

अर्थ—सरयू नदी का माहात्म्य अयोध्या में विशेष हो गया है अत तुलसीदास कहते हैं कि तुलसी के उररूप मानसर से उद्भूत कवितारूप

सरयु के लिये संतों की सभा ही सब सुमंगल की खान अयोध्या नगरी जैसी पवित्र भूमि के समान है अर्थात् जिस प्रकार सरयू-तट पर अयोध्या नगरी स्थित है उसी प्रकार हमारी रचित कविता को संतों की सभा जो पढ़ने के लिए एकत्रित होती है वह अयोध्या के समान है जिससे इस कविता का महत्त्व विशेष हो गया है ॥९४॥

दोहा

सुक्त मुमुक्षू बर विषय, श्रोता त्रिबिध प्रकार।
ग्राम नगर पुर युग सुतट, तुलसी कहहिं बिचार ॥९५॥

अर्थ—तुलसीदास विचार कर कहते हैं कि जीवन्मुक्त, श्रेष्ठ मुमुक्षु तथा विषयी तीन प्रकार के श्रोता ही दोनों तट के स्थित ग्राम तथा नगरादि के समान हैं ॥९५॥

दोहा

बाराणसी बिराग नहिं, शैलसुता मन होय।
तिमि अवधहिं सरयु न तजै, कहत सुकवि सब कोय ॥९६॥

अर्थ—जिस प्रकार काशी से गंगा के मन में उपरति (उचाट वा अनिच्छा) नहीं होती उसी प्रकार सरयूजी अयोध्या को नहीं छोड़तीं ऐसा ही सब सुकवि कहते हैं ॥९६॥

दोहा

कहब सुनब समुझब पुनः, सुनि समुझायब आन।
श्रम-हर घाट प्रबन्ध बर, तुलसी परम प्रमान ॥९७॥

अर्थ—तुलसीकृत परम प्रामाणिक सतसई के उत्तम निबन्धों को बारम्बार कहना, सुनना, समझना और समझकर अन्यों को समझाना ही दुःखों के हरण करनेवाले घाटों के पवित्र सोपान हैं ॥९७॥

श्रीमद् गोस्वामि तुलसीदास विरचितायां सप्तशतिकायां
आत्मबोध निर्देशोनाम चतुर्थः सर्गः श्रीमद्रामचन्द्र
द्विवेदि रचित सुबोधिनी टीका युक्तः समाप्तः।

तुलसी उर मानस द्रवित, रचना सरित समान।
राम सुयश जल तहँ तिलक, 'श्रीपति' लघुता जान॥
फिर्अहि वारिचर जीव जे, अमिय समान सुजान।
आत्मबोध लहि तृप्त ह्वै, पावहिं गति परमान॥

पञ्चम सर्ग

अथ पञ्चमस्सर्गः सार्थः प्रारभ्यते

दोहा

यत्न अनूपम जानि बर, सकल कला गुणधाम।
अविनाशी अब यह अमल, भो यह तनु धरि राम ॥१॥

अर्थ—सकल कलाओं और गुणों के धाम, अविनाशी और अमल राम जो शरीर धारी हैं, उन्हींकी भक्ति करना अनुपम और श्रेष्ठ यत्न है ॥१॥

दोहा

सदा प्रकाश स्वरूप बर, अस्त न अपर न आन।
अप्रमेय अद्वैत अज, याते दुरत न ज्ञान ॥२॥

अर्थ—वे राम सदा प्रकाशस्वरूप और श्रेष्ठ हैं। उनका कभी अस्त नहीं होता, और न उनसे बडा कोई दूसरा ही है। वे अज, अद्वैत और तुलना-रहित हैं। अत. उनके ज्ञान का कभी लोप नहीं होता ॥२॥

दोहा

जानहि हंस रसाल कहँ, तुलसी सन्त न आन।
जाकी कृपा कटाक्ष ते, पाये पद निर्बान ॥३॥

अर्थ—सूर्य्य और जल में जो सम्बन्ध है वही सन्तों और श्रीरघुनाथ-जी में भी है, अन्य नहीं। जिन रघुनाथजी की कृपादृष्टि से सन्तों को निर्वाण (मुक्ति) पद की प्राप्ति होती है ॥३॥

दोहा

तजत सलिल अपि पुनि गहत, घटत बढ़त नहिं रीति।
तुलसी यह गति उर निरखि, करिय राम-पद प्रीति ॥ ४ ॥

अर्थ—सूर्य्य जल को पृथिवी पर छोड़ता और फिर उसे ग्रहण भी कर लेता है। यह नियम उसका कभी घटता बढ़ता नहीं। तुलसीदास कहते हैं कि अपने हृदय में श्रीराम की गति भी ऐसी ही समझ कर उनके चरणों में प्रीति करो ॥४॥

दोहा

चुम्बक आहन रीति जिमि, सन्तन हरि सुखधाम।
जान तिरीछर सम सफरि, तुलसी जानत राम ॥ ५ ॥

अर्थ—चुम्बक और लोहे में जो सम्बन्ध है वही सम्बन्ध सुख-धाम हरि और सन्त जनों में है। जल की तीक्ष्ण और साधारण धाराओं में तैरने की गति जिस प्रकार मछलियाँ जानती हैं उसी प्रकार राम की अथाह भक्ति की गति यह तुलसी भी जानता है ॥५॥

दोहा

भरत हरत दरसत सबहिँ, पुनि अदरस सब काहु।
तुलसी सुगुरु प्रसाद वर, होत परम पद लाहु ॥ ६ ॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जब सूर्य्य वृष्टि द्वारा जगत को जल से परिपूर्ण कर देता है तो उसे सब कोई देखते हैं और पुन जब वाष्प बनाकर उसी जल को हरण कर लेते हैं तो वह सब के लिए

अदृश्य हो जाता है। इसी प्रकार श्रेष्ठ गुरुओं की कृपा से भक्तों को परम-पद की प्राप्ति होती है ॥६॥

दोहा

यथा प्रतच्छ स्वरूप बहु, जानत है सब कोय।
तथाहि लय गति को लखब, असमंजस अति सोय ॥ ७ ॥

अर्थ—जिस प्रकार देखने में संसार में बहुतेरे स्वरूप प्रत्यक्ष होते हैं जिन्हें सब कोई देख रहा है, तदनुसार ही निश्चय पूर्वक लय की दशा भी समझिये, परन्तु वहां बड़ा ही असमञ्जस है ॥७॥

भावार्थ—कवि के कथन का भाव यह है कि जिस प्रकार ससार की सृष्टि और उसका प्रलय हुआ करता है, उसी प्रकार जीवों की सृष्टि और प्रलय नहीं होता। इसमें बहुत कुछ अन्तर है। वह अन्तर आगे दर्शाते हैं।

दोहा

यथा सकल अपि जात अप, रवि मण्डल के माहिँ।
मिलत तथा जिव रामपद, होत तहाँ लय नाहिँ ॥ ८ ॥

अर्थ—जिस प्रकार निश्चय पूर्वक जल की वृष्टि होती है और वाष्प बनकर पुन॰ वही जल सूर्य्य-मण्डल में चला जाता है, उसी प्रकार ये जीव भी जाकर राम-पद में मिलते अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति करते हैं; वहां जाकर वे लय नहीं हो जाते ॥८॥

दोहा

कर्म कोष सँग ले गयो, तुलसी अपनी बानि।
जहाँ जाय बिलसै तहाँ, परै कहा पहिचानि ॥ ९ ॥

अर्थ—अपने अभ्यास से यह जीव सदा कर्मों का ख़ज़ाना साथ लिये जन्मता है और जहाँ जाता है कर्मानुसार सुख-दु.ख प्राप्त करता

है। और उस समय यह पहचान में भी नहीं आता कि यह पहले क्या था और अब क्या हो गया ॥९॥

दोहा

क्यों धरणी महँ हेतु सब, रहत यथा धरि देह।
त्यों तुलसी लै राम महँ, मिलत कबहुं नहिं एह ॥१०॥

अर्थ—जैसे सब वस्तुओं के मूल कारण पृथिवी में ही रहते हैं और वे काल पाकर प्रगट होते एवं अन्त में फिर उसी में मिल जाते हैं अर्थात् तदाकार हो जाते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि जीव उसी प्रकार कदापि 'राम' में लय नहीं हो जाता प्रत्युत मिल जाता है परन्तु उसका अस्तित्व बना रहता है ॥१०॥

दोहा

शोषक पोषक समुझ शुचि, राम प्रकाश स्वरूप।
यथा तथा बिनु देखिबे, जिमि आदर्श अनूप ॥११॥

अर्थ—जिस प्रकार सूर्य्य की शोषण तथा पोषण की रीति पवित्र और सदा एक रस रहने वाली है और जिस प्रकार आदर्श (आईने) में किसी वस्तु का प्रतिबिम्ब तदाकार ही पड़ता है यह उसकी अनुपम रीति है, इसके विरुद्ध नहीं होता, तदनुसार ही प्रकाश-स्वरूप राम को भी समझो ॥११॥

भावार्थ—कवि का आशय यह है कि वह राम एक रस रहनेवाले हैं और जीव निज-निज कर्मानुसार उनमें व्याप्त मात्र हैं उनका लय नहीं होता।

दोहा

कर्म मिटाये मिटत नहिं, तुलसी किये बिचार।
करतब ही को फेर है, या विधि सार असार ॥१२॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जीवों का कर्म कभी नष्ट नहीं होता और यह सदा कर्मों के बन्धन में रहता है। अतः असार है और परमेश्वर में कर्म-फल लिप्त नहीं होता अतएव इस प्रकार वह सार है। इसे विचार पूर्वक देखो ॥१२॥

दोहा

एक किये हो दूसरो, बहुरि तीसरो अंग।
तुलसी कैसेहु ना नसै, अतिशय कर्म-तरंग ॥१३॥

अर्थ—जिस प्रकार वायु के झकोरे से जल में एक लहर उठी, उसने धक्के देकर दूसरी लहर उठायी और उससे पुनः तीसरी, चौथी और पांचवीं आदि लहरें उठती जाती हैं, उसी प्रकार कर्म-तरङ्ग के भी सञ्चित, क्रियमाण और प्रारब्ध वश एक से दूसरा और दूसरे से तीसरा अङ्ग बना करता है। तुलसीदास कहते हैं कि जीव के साथ कर्म सदा लगा रहता है, कभी भी नष्ट नहीं होता ॥१३॥

दोहा

इन दोउन ते रहित भो, कोउ न राम तजि आन।
तुलसी यह गति जानि हैं, कोउ कोउ सन्त सुजान ॥१४॥

अर्थ—इन दो प्रकार के कर्मों (अर्थात् सकाम और निष्काम) से रहित आज तक श्रीरघुनाथजी को छोडकर अन्य कोई नहीं हुआ। तुलसीदास कहते हैं कि इस रहस्य को कोई-कोई साधुमहात्मा ही जानते हैं ॥१४॥

दोहा

सन्तन को लय अमि सदन, समुझहिं सुगति प्रवीन।
कर्म विपर्यय कबहुँ नहिँ, सदा रामरस लीन ॥१५॥

अर्थ—यह सुगति प्रवीण अर्थात् मुक्ति के इच्छुक पुरुष ही समझते हैं कि सन्तों को अन्त काल में अमृत-गृह मिलता है अर्थात् अमर पद की प्राप्ति होती है जहां वे कभी विपर्यय (उल्टे) कर्म नहीं करते प्रत्युत सदा भक्ति में लीन रहते हैं ॥१५॥

दोहा

सदा एक रस सन्त सिय, निश्चय निशिकर जान।
राम दिवाकर दुख हरन, तुलसी शील निधान ॥१६॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सन्तों के लिये (अर्थात् उनके हृदयस्थ अविद्या-रात्रि के निमित्त) सीता जी सदा एक रस रहनेवाले चन्द्रमा के समान और शील-निधान सर्व दुःख हरण करनेवाले श्रीराम सूर्य्य के समान हैं। ऐसा निश्चय पूर्वक जानो ॥१६॥

दोहा

सन्तन की गति रविजा, जानहु शशि परमान।
रमित रहत रस मय सदा, तुलसी रति नहिँ आन ॥१७॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सन्तों के लिये श्रीजानकीजी चन्द्रमा के समान हैं जिनको पाकर वे सदा रसमय प्रसन्न बने रहते हैं और अन्यों से प्रीति भी नहीं करते हैं ॥१७॥

दोहा

जातरूप जिमि अनल मिलि, ललित होत तन ताय।
सन्त शीतकर सीय तिमि, लसहिँ रामपद पाय ॥१८॥

अर्थ—जिस प्रकार सोना अग्नि में पड़ने और तपने से अत्यन्त सुन्दर हो जाता है उसी प्रकार सन्त जन सीता और राम के सुखद चरणों को पाकर सुशोभित होते हैं अर्थात् निष्पाप हो जाते हैं ॥१८॥

दोहा

आपुहिँ बांधत आपु हठि, कौन छुड़ावत ताहि।
सुख दायक देखत सुनत, तदपि सुमानत नाहिं ॥१९॥

अर्थ—यह जीव अपने ही हठ से अपने को बांधे हुए है अर्थात् माया के फन्दे में पड़ा हुआ है, इसे कौन छुड़ावे (आप ही छोड़ दे तो छूट जाय)। यह सुखदायक भगवान की भक्ति को देख और सुनकर उसे नहीं मानता ॥१९॥

दोहा

कौन तारते अधम गति, उर्ध्व तौन गति जात।
तुलसी मकरी तन्तु इव, कर्म न कबहुँ नसात ॥२०॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मकरी के ताने-बाने की नाईं कर्म की गति तो कभी रुकनेवाली नहीं अतः जब अशुभ कर्मों के करने से जीव नीच गति को प्राप्त होता है तब शुभ कर्मों को करते हुए उर्ध्व गति अर्थात् परम-पद की प्राप्ति क्यों नहीं करता ? ॥२०॥

दोहा

जहाँ रहै तहँ सह सदा, तुलसी तेरी बानि।
सुधरै बिधि बश होइ जब, सत संगति पहिचानि ॥२१॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हे मन ! तेरी सदा यह आदत है कि तू जहां रहता है, वहां कर्म के साथ रहता है अर्थात् कर्म करना तेरा स्वभाव है। जब संयोग वश सतसंगति पहचान कर उसमें पड़े तो सुधर सकता है ॥२१॥

दोहा

रवि रजनीश धरा तथा, यह अस्थिर अस्थूल।
सूछम गुण को जीव कर, तुलसी सो तन मूल ॥२२॥

अर्थ—इस स्थिर तथा स्थूल पृथिवी के सूर्य्य और चन्द्रमा ही पालन-पोषण करनेवाले हैं। तुलसीदास कहते हैं कि इस जीव की सूक्ष्म वासनाएँ तो शरीर का कारण हैं (परन्तु उन दोनों शरीरों के पालन-पोषण कर्त्ता श्रीरघुनाथजी और जानकीजी ही हैं) ॥२२॥

दोहा

आवत अप रवि ते यथा, जात तथा रवि माँहि।
जहँ ते प्रकट तहीं दुरत, तुलसी जानत ताहि ॥२३॥

अर्थ—जिस प्रकार जल सूर्य्य से ही आता और पुन सूर्य्य-लोक को ही चला जाता है तुलसीदास कहते हैं कि उसी प्रकार यह जीव जहा से आता है और पुन प्रलयावस्था में जहां व्याप्य रहता है, उसी राम को मैं जानता हूँ अर्थात् उसी का भजन करता हूं ॥२३॥

दोहा

प्रगट भये देखत सकल, दुरत लखत कोइ कोइ।
तुलसी यह अतिशय अगम, बिनु गुरु सुगम न होइ ॥२४॥

अर्थ—जीव जब शरीर धारण करता है तब सब देखते हैं परन्तु जब शरीर त्याग कर देता है तो उसे कोई-कोई देखते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि यह दशा ही अगम है जो बिना गुरुओं की शिक्षा पाये सुगम नहीं हो सकता ॥२४॥

भावार्थ—कवि के कथन का यह आशय है कि जीव को निज स्वरूप का बोध होना बड़ा कठिन है।

दोहा

या जग में नय हीन नर, बरबस दुख मग जाहिं।
प्रगटत दुरत महा दुखी, कहँ लगि कहियत ताहि ॥२५॥

अर्थ—इस संसार में जो नीति-हीन मनुष्य (अर्थात् जो अनीति पथ में चलनेवाले) हैं वे बलात्कार दुःख के ही मार्ग में जाते हैं और जन्म तथा मृत्यु काल में भी ऐसे घोर दुःख उठाते हैं कि कहां तक उसका कथन किया जाय ॥२५॥

दोहा

सुख दुख मग अपने गहे, मग केहु लगत न धाय।
तुलसी राम प्रसाद बिनु, सो किमि जानो जाय ॥२६॥

अर्थ—सुख और दुःख का मार्ग जीव स्वयं ग्रहण करता है, कुछ शुभाशुभ कर्म ही दौड़कर जीव में नहीं लगाते। तुलसीदासजी कहते हैं कि बिना रामकृपा के कर्म-मार्ग कैसे जाना जा सकता है? ॥२६॥

गीता में भी कहा है—

"गहना कर्मणो गतिः"

दोहा

महि ते रवि रवि ते अवनि, सपनेहुँ सुख कहुँ नाहि।
तुलसी तब लगि दुखित अति, शशि मग लहत न ताहि ॥२७॥

अर्थ—पृथिवी का जल वाष्प बनकर सूर्य-लोक में जाता है और पुनः वहां से वृष्टि द्वारा भूलोक में आता है। यह चक्कर बराबर बना हुआ है। स्वप्न में भी जल को सुख नहीं। तुलसीदास कहते हैं कि जब तक चन्द्रमा की किरणें इस पर नहीं पड़तीं तब तक यह अति दुखी ही बना रहता है ॥२७॥

भावार्थ—कवि के कथन का आशय यह है कि भक्तों पर जब तक श्री जानकीजी की दया नहीं होती तब तक वे जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त नहीं हो सकते।

दोहा

सन्तन की गति शीतकर, लेश कलेश न होय।
सो सिय-पद सुखदा सदा, जानु परम पद सोय ॥२८॥

अर्थ—सन्त जनों की गति चन्द्रमारूप श्रीसीताजी के चरणों से ही होती है जो सर्वदा सुखदायक हैं और जिनकी शरण में लेशमात्र भी क्लेश नहीं है, प्रत्युत उसी को परम-पद समझो ॥२८॥

दोहा

तजत अमिय शशि जान जग, तुलसी देखत रूप।
गहत नहीं सब कहँ विदित, अतिशय अमल अनूप ॥२९॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि समस्त संसार पर यह विदित है कि चन्द्रमा अत्यन्त निर्मल और अनूप अमृत की वर्षा करता है और सभी उसके स्वरूप को देखते भी हैं तथापि सभी उस अमृत का ग्रहण नहीं करते ॥२९॥

भावार्थ—श्रीसीताजी की परमपद-दायिनी भक्ति सभी नहीं करते, यदि करें तो सुखी हों।

दोहा

शशि-कर सुखद सकल जगत, को तेहि जानत नाहिं।
कोक कमल कहँ दुखद कर, यदपि दुखद नहिँ ताहि ॥३०॥

अर्थ—यह कौन नहीं जानता कि चन्द्र किरणें समस्त संसार को सुखद प्रतीत होती हैं। यद्यपि चकवा तथा कमल को वे दुःखदा प्रतीत तो होती हैं तथापि उनके लिये भी वे दुःख दायिनी नहीं हैं ॥३०॥

भावार्थ—जिस प्रकार स्त्री-वियोग होने से चक्रवाक को चन्द्रमा दुःखद प्रतीत होता है और कमल सूर्य्य की प्रखर किरणों का अभ्यासी

होने के कारण चन्द्र-किरणो से संकुचित हो जाता है परन्तु वास्तव में ये दोनो अपनी अपनी प्रवृत्ति के कारण ही चन्द्रमा को दु:खद समझते हैं जो वास्तव मे उनके लिये दुखद नहीं है उसी प्रकार विषयी और शुष्क-वादी मनुष्य श्रीसीताजी की भक्ति से दूर भागते हैं।

दोहा

बिन देखे समुझे सुने, सोउ भव मिथ्यावाद।
तुलसी गुरु गम कै लखे, सहजहिँ मिटै विषाद ॥३१॥

अर्थ—ससार बिना निज नेत्रों से देखे केवल कवियो के लेख सुन कर ही यह समझ गया है कि चन्द्रमा चक्रवाक तथा कमल को दु:खद है, वास्तव में यह मिथ्यावाद है। तदनुसार ही विषयियो और शुष्क-वादियों की यह भूल है कि वे श्रीजानकीजी को दु:खदा समझ बैठें। तुलसीदास कहते हैं कि गुरु के गम कराने और लखाने से यह विषाद सहज ही मिट जा सकता है ॥३१॥

दोहा

बरषि विश्व हर्षित करत, हरत ताप अघ प्यास।
तुलसी दोष न जलद कर, जो जड़ जरत जवास ॥३२॥

अर्थ—जब मेघ वृष्टि द्वारा संसार को प्रसन्न करता है और जीवों के ताप, पाप एवं प्यास हरण कर लेता है तब यदि जड जवास (हिंगुआ) वर्षा ऋतु में जल जाता है तो मेघ का इसमें क्या दोष है ? ॥३२॥

दोहा

चन्द्र देत अमि लेत विष, देखहु मनहिं विचार।
तुलसी तिमि सिय सन्त बर, महिमा विशद अपार ॥३३॥

अर्थ—जिस प्रकार चन्द्रमा समस्त संसार के ताप को हरण कर अमृत की वृष्टि करता है उसी प्रकार मन में विचार कर देखो और तुलसीदास भी कहते हैं कि श्रीसीताजी भक्त जनों के दूषण नष्ट कर उन्हें श्रेष्ठ बना उनकी महिमा को स्वच्छ और अपार बना देती हैं ॥३३॥

दोहा

रसम बिदित रवि रूप लखु, शीत शीतकर जान।
लसत योग यश कार भव, तुलसी समुझु समान ॥३४॥

अर्थ—सूर्य्य-रश्मि को देखो, वह सूर्य्य के समान ही प्रखर एवं चन्द्र-रश्मि चन्द्रमा के समान ही शीतल होती है तुलसीदास कहते हैं कि इन दोनों किरणों को समान समझो क्योंकि इन दोनों का अस्तित्व ही एक दूसरे के यश का कारण है ॥३४॥

भावार्थ—कवि के कथन का आशय यह है कि यदि दिन में सूर्य्य की किरणों का ताप जगत को न लगे तो रात्रि में चन्द्र-किरणें आनन्ददात्री प्रतीत न होंगी और यदि शीत-काल की रात्रि में चन्द्र-किरणें अत्यन्त शीत न दें तो दिन में सूर्य्य रश्मि सुखदा न प्रतीत हों अर्थात् दोनों से दोनो का यश है। तदनुसार ही श्रीराम-रूप-ज्ञान तथा श्रीजानकीरूपा भक्ति ये अन्योन्याश्रय से दोनों ही अपेक्षित हैं।

दोहा

लेति अवनि रवि अंशु कहँ, देति अमिय अपसार।
तुलसी सूक्ष्म को सदा, रवि रजनीश अधार ॥३५॥

अर्थ—सूर्य्य की किरणें पृथिवी को तप्त कर देती हैं और चन्द्र-किरणें अपसार (शीतता) और अमृत (जीवन) देती हैं। तुलसीदास कहते हैं कि सूक्ष्म जीवों के लिये सदा सूर्य्य और चन्द्रमा ही आधार हैं। अर्थात् यदि दोनों में से एक न रहे तो जीवों का नाश हो जाय ॥३५॥

दोहा

भूमि भानु अस्थूल अप, सकल चराचर रूप।
तुलसी बिनु गुरु ना लहै, यह मत अमल अनूप ॥३६॥

अर्थ—जिस प्रकार यह स्थूल जल भूलोक से सूर्य्य-लोक में सूक्ष्म वाष्प बनकर जाता है उसी प्रकार यह चराचर जगत प्रलय-काल में ब्रह्म मे स्थित रहता है। तुलसीदास कहते हैं कि यह अनुपम एवं निर्मल विचार बिना गुरुओं के बतलाये समझ में नहीं आता ॥३६॥

टिप्पणी—कहीं-कहीं पर कवि ने स्थूल शब्द को ही पद बैठने के लिये 'अस्थूल' लिखा है।

दोहा

तुलसी जे नय लीन नर, ते निशिकर तन लीन।
अपर सकल रवि गत भये, महाकष्ट अति दीन ॥३७॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जो प्रवीण लोग हैं वे चन्द्रमा के शरीर में लीन हैं अर्थात् भक्ति-मार्ग में मग्न हैं। और अन्य जो तीव्र सूर्य्य की प्रखर रश्मि में पड गये हैं अर्थात् शुष्कवादादि में रत हैं वे अत्यन्त दुखी और कष्ट-भाजन हो रहे हैं ॥३७॥

दोहा

तुलसी कवनेहुँ योग ते, सत संगति जब होइ।
राम मिलन संशय नहीं, कहहिं सुमति सब कोइ ॥३८॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं और ऐसा ही सभी बुद्धिमानो का भी कथन है कि यदि किसी संयोग से सतसंग प्राप्त हो जाय तो राम की प्राप्ति में सन्देह नहीं रह जाता ॥३८॥

दोहा

सेवक पद सुखकर सदा, दुखद सेव्य पद जान।
यथा विभीषण रावणहिं, तुलसी समुझ प्रमान ॥३९॥

अर्थ—अपने को सेवक समझना सदा सुख-दायक है और अनधिकार चेष्टा से अपने को स्वामी समझना बड़ा ही दुःखद है। तुलसीदास कहते हैं कि इस बात के स्पष्ट समझने के लिये विभीषण और रावण का उदाहरण ही प्रमाण है ॥३९॥

दोहा

शीत उष्ण कर रूप युग, निशि दिन कर करतार।
तुलसी तिन महँ एक नहिं, निरखहु करि निरधार ॥४०॥

अर्थ—दिन में उष्णता और रात्रि में शीत की प्रबलता रहती है। अर्थात् शीत और उष्ण ये दो भेद ब्रह्मा ने बनाये हैं वास्तव में ईश्वर के लिये शीत और उष्ण तथा प्रकाश और अन्धकार कोई वस्तु नहीं। अर्थात् वह सदा एक रस रहनेवाला प्रकाशान्धकार से परे और निर्लेप है ॥४०॥

दोहा

नहिँ नैनन काहू लख्यौ, धरत नाम सब कोइ।
ताते साँचो है समुझु, झूठ कबहुँ नहिँ होइ ॥४१॥

अर्थ—उस व्यापक ब्रह्म को आज तक किसी ने आंखों नहीं देखा परन्तु नाम सब कोई धरते हैं अत· यह समझो कि वह सत्य है, मिथ्या कदापि नहीं ॥४१॥

दोहा

वेद कहत सबको विदित, तुलसी अमिय स्वभाव।
करत पान अपि रुज हरत, अविरल अमल प्रभाव ॥४२॥

अर्थ—यह बात सब पर विदित है कि "पान करने से सर्व रोगों का नाश कर आनन्द देना" यह अमृत का स्वाभाविक गुण है तदनुसार ही तुलसीदास कहते हैं और वेदों का भी यही कथन है कि अमृत (अमर) ब्रह्म का भी यही प्रभाव है कि जीवों को निर्मल बना अविरल अर्थात् शाश्वत सुख की प्राप्ति कराता है ॥४२॥

दोहा

गन्ध शीत अपि उष्णता, सबहिं विदित जग जान।
महि बन अनल सो अनिलगत, बिन देखे परमान ॥४३॥

अर्थ—गन्ध, शीतलता और उष्णता का ज्ञान सब को होता है और ये गुण क्रमशः पृथिवी, जल और अग्नि-वायु में प्राप्त हैं जिनको विना नेत्रों से देखे ही समस्त जगत प्रमाण मान रहा है ॥४३॥

भावार्थ—कवि के कथन का आशय यह है कि निराकार ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है परन्तु कितने अज्ञानी कहते हैं कि जिसको नेत्र से देखते ही नहीं उसे मानें कैसे ? उन्हीं का निराकरण यहाँ किया गया है कि गर्मी-सर्दी और सुगंध-दुर्गन्धादि का ज्ञान कैसे करते हो ? ये भी तो साकार नहीं। भिन्न-भिन्न इन्द्रियों से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान होता है तदनुसार ही निराकार ब्रह्म का ज्ञान आत्मा के द्वारा करो।

दोहा

इन महँ चेतन अमल अल, बिलखत तुलसीदास।
सो पद गुरु उपदेश सुनि, सहज होत परकास ॥४४॥

अर्थ—इन पृथिव्यादि पञ्चतत्वों के भीतर निर्मल सर्वत्र पूर्ण चेतन ब्रह्म को तुलसीदास देखते हैं और गुरुजनों के उपदेश श्रवण करने से इस पद का सहज ही बोध हो जाता है ॥४४॥

दोहा

एहि विधिते वर बोध यह, गुरु प्रसाद कोउ पाव।
है ते अल तिहुँ काल महँ, तुलसी सहज प्रभाव ॥४५॥

अर्थ—इस प्रकार इस सर्वोपरि ज्ञान की प्राप्ति कोई-कोई जन गुरुजनों की कृपा से पाते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि उसका प्रभाव त्रय काल में सर्वत्र परिपूर्ण है ॥४५॥

दोहा

काक-सुता सुत वा सुता, मिलत जननि पितु धाय।
आदि मध्य अवसान गत, चेतन सहज स्वभाय ॥४६॥

अर्थ—काक-सुता (कोयल) के पुत्र अथवा पुत्री जिस प्रकार माता पिता से दौड़कर मिलते हैं तदनुसार ही चेतन जीवात्मा को उचित है कि आदि (प्रात काल), मध्य (मध्यान्ह काल) और अवसान (सायंकाल) अवश्यमेव परमात्मा की उपासना किया करे ॥४६॥

भावार्थ—कोयल का नियम है कि वह अपने लिये खोते नहीं बनाती, जब वह अण्डे देती है तो अपने अण्डो को कौवे के खोते में रख आती है और उसके अण्डों को गिरा देती है कौवे कोयल के अण्डो को अपना अण्डा समझकर पालते-पोसते हें। जब कोयल के बच्चे सयाने हो जाते हैं तो उड़कर अपने माता-पिता के पास चले जाते हैं। कवि के कथन का भाव यह है कि जब एक तुच्छ पक्षी के अन्दर ऐसा गुण पाया जाता है तो जो मनुष्य शरीर पाकर प्रकृति से पृथक हो परम पिता परमात्मा की प्राप्ति नहीं करते वे तो कोयल से भी तुच्छ हैं।

दोहा

ममता स्वारथ हीनते, होत सुविशद विवेक।
तुलसी यह तिनहीं फबे, जिनहिं अनेक न एक ॥४७॥

अर्थ—स्वार्थ-हीन होने से समता आती है और उससे निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है। तुलसीदास कहते हैं कि यह ज्ञान भी उन्हीं को शोभा देता है जिन्हें अनेकों के बीच एकता का बोध है ॥४७॥

दोहा

सब स्वारथ स्वारथ रटत, तुलसी घटत न एक।
ज्ञान रहित अज्ञान रत, कठिन कुमन कर टेक ॥४८॥

अर्थ—संसार मे सब लोग अपने-अपने मतलब की गांठनें में लगे हुए हैं अत किसी की मनः कामना पूर्ण नहीं होती। तुलसीदास कहते हैं कि मन का यह कठिन हठ है कि वह ज्ञान-रहित हो अज्ञान मे तत्पर हो रहा है ॥४८॥

दोहा

स्वारथ सो जानहु सदा, जासों विपत्ति नसाय।
तुलसी गुरु उपदेश बिनु, सो किमि जानो जाय ॥४९॥

अर्थ—सच्चा स्वार्थ तो उसी में है जिसकी प्राप्ति से सदा के लिये विपत्ति का सर्वनाश हो। तुलसीदास कहते हैं बिना गुरु-उपदेश के उसका ज्ञान नहीं होता ॥४९॥

दोहा

कारज स्वारथ हित करै, कारण करै न होय।
मनवा ऊख विशेष ते, तुलसी समुझहु सोय ॥५०॥

अर्थ—सब कोई स्वार्थ के वशीभूत होकर कार्य्य ही चाहते हैं उसके कारण करना नहीं चाहते। तुलसीदास कहते हैं कि बिनौले और ऊख को ही विशेष समझो ॥५०॥

भावार्थ—उत्तमोत्तम वस्त्र पहनना तथा उत्तम सुस्वादु मिठाई खाना

जो कार्य्य रूप है सब चाहते हैं। पर इनके मूल कारण कपास तथा ईख की खेती करना लोग नहीं चाहते तो वस्त्र और मिठाई की प्राप्ति कैसे होगी? सब मनुष्य सुख चाहते हैं परन्तु सुख के साधक और कारणरूप शुभ कर्म करना नहीं चाहते तो उन्हें सुख कैसे मिले?

दोहा

कारण कारज जान तो, सब काहू परमान।
तुलसी कारण कार जो, सो तैं अपर न आन ॥५१॥

अर्थ—कार्य्य जितने हैं उनका कुछ न कुछ कारण अवश्य होता है इस बात को सब कोई जानते हैं और वेदादि सच्छास्त्रों में इसका प्रमाण भी प्रस्तुत है। तुलसीदास कहते हैं कि हे मन! सब कार्य्य कारण का करनेवाला तूही है तेरे सिवाय अन्य कोई नहीं। अर्थात् सब कार्य्यों के मूलकारण संकल्प और विकल्प मन से ही उठा करते हैं ॥५१॥

दोहा

बिन करता कारज नहीं, जानत है सब कोइ।
गुरु मुख श्रवण सुनत नहीं, प्राप्ति कवनि विधि होइ ॥५२॥

अर्थ—यह सब कोई जानते हैं कि बिना कर्त्ता के कार्य्य नहीं हो सकता। इस कर्म-काण्ड की बात को गुरुजनों के मुख से यदि तू नहीं सुनता तो तुझे सचाई की प्राप्ति किस प्रकार होगी? ॥५२॥

दोहा

करता कारण कारज हु, तुलसी गुरु परमान।
लोपत करता मोह बस, ऐसो अबुध मलान ॥५३॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि गुरु प्रमाण अर्थात् गुरु-उपदेशानुसार कारण के विचारपूर्वक यदि कर्त्ता कार्य्य करे तो उसकी सिद्धि हो परन्तु

यह कर्त्ता (जीव) ऐसा अज्ञानी और मलिन है कि मोहवश सब शुभ उपदेशों को लुप्त कर बैठता है ॥५३॥

दोहा

अनिल सलिल विवियोग ते, यथा बीचि बहु होय ।
करत करावत नहिँ कछुक, करता कारण सोय ॥५४॥

अर्थ—जिस प्रकार जल और पवन इन दोनों के संयोग होने से ही आप से आप जल में बहुतेरी लहरें उठने लगती हैं उसी प्रकार कारण और कर्त्ता के संयोग होने से ही कार्य्य होने लगता है अन्य कोई कुछ करता कराता नहीं ॥५४॥

दोहा

छेम धरण करतार कर, तुलसी पति परधाम ।
सो बरतर ता सम न कोउ, सब बिधि पूरण काम ॥५५॥

अर्थ—यह कर्त्ता जो जीव है उसे कल्याण की प्राप्ति तभी हो सकती है जब वह परमात्मा के परमधाम की प्राप्ति करे। तुलसीदास कहते हैं कि वह परमात्मा सर्व प्रकार पूर्णकाम सर्वोच्च और सर्वश्रेष्ठ है ॥५५॥

दोहा

कर्त्ता कारण सार पद, आवै अमल अभेद ।
कर्म घटत अपि बढ़त है, तुलसी जानत वेद ॥५६॥

अर्थ—कर्त्ता और कारण ही मुख्य पद हैं। यदि कारण (इच्छा) पवित्र हो और कर्त्ता उसकी सिद्धि में लग जाय तो वह निर्मल और संशयहीन हो जाता है। तुलसीदास कहते हैं कि कर्म तो न्यूनाधिक होता रहता है, इसे वेद जानते हैं, अर्थात् कारण प्रबल होने से कर्म प्रबल और कारण की दुर्बलता से कर्म भी दुर्बल रहता है अतः कारण तथा कर्त्ता ये ही दो मुख्य हैं ॥५६॥

दोहा

स्वेदज जौन प्रकार ते, आप करै कोउ नाहिं।
भये प्रगट तेहि के सुनो, कौन बिलोकत ताहि ॥५७॥

अर्थ—स्वेदज (चीलर-जूँ आदि) जीवों को कोई पैदा नहीं करता ये कारण पाकर आप से आप उत्पन्न हुआ करते हैं और प्रगट होने में कौन देखता फिरता है कि ये कब पैदा हुए ? उसी प्रकार कारण पाकर कार्य्य हुआ ही करते हैं ॥५७॥

दोहा

भये विषमता कर्म महँ, समता किये न होय।
तुलसी समता समुझ कर, सकल मान मद धोय ॥५८॥

अर्थ—कर्मों की विषमता होने अर्थात् कुत्सित कर्मों के करने से चित्त में कभी समता (शान्ति) नहीं आती। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा समझ सब मान-मद को धोकर समता करो ॥५८॥

दोहा

सम हित संहित समस्त जग, सुहृद जान सब काहु।
तुलसी यह मत धारु उर, दिनप्रतिअतिसुखलाहु॥५९॥

अर्थ—समस्त संसार को समान दृष्टि से देखते हुए सब प्राणीमात्र को मित्र समझो। तुलसीदास कहते हैं कि जब ऐसा विचार हृदय में धारण करो तो प्रतिदिन अत्यन्त सुख का लाभ होगा ॥५९॥

दोहा

यह मन महँ निश्चय धरहु, है कोउ अपर न आन।
कासन करत बिरोध हठि, तुलसी समुझ प्रमान ॥६०॥

अर्थ—मन में इस बात को दृढ़ भाव से समझ लो कि कोई तुम्हारे अतिरिक्त अन्य नहीं अर्थात् सभी आत्मा तुम्हारे ही जैसे हैं। तुलसीदास कहते हैं कि इस बात का प्रमाण मानो कि सब आत्मा एक हैं तब हठ-पूर्वक किसके साथ वैर-भाव रखते हो? ॥६०॥

दोहा

महि जल अनल सो अनिल नभ, तहाँ प्रगट तव रूप।
जानि जाय बर बोधते, अति शुभ अमल अनूप ॥६१॥

अर्थ—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पञ्चतत्वों से ही जीव का स्वरूप दृष्टिगत होता है अर्थात् शरीर में आने पर ही प्रगट जान पड़ता है परन्तु उसके कल्याणकारी अनुपम और निर्मल रूप का ज्ञान श्रेष्ठ बोध से ही हो सकता है, अर्थात् ज्ञान के द्वारा ही जीवात्मा अपने सत्य स्वरूप को जानता है ॥६१॥

दोहा

जो पै आकस्मात ते, उपजै बुद्धि विशाल।
नातो अति छल हीन ह्वै, गुरु-सेवन कछु काल ॥६२॥

अर्थ—यदि अकस्मात् ही विशाल बुद्धि पैदा हो जाय तब आत्म-ज्ञान होना सम्भव है नहीं तो अत्यन्त छल-हीन होकर कुछ काल तक गुरु की सेवा करो तब आत्म-ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है ॥६२॥

दोहा

कारज युग जानहु हिये, नित्य अनित्य समान।
गुरु गमते देखत सुजन, कह तुलसी परमान ॥६३॥

अर्थ—हृदय में विचार कर देखो—कार्य्य दो प्रकार के होते हैं (१) नित्य और (२) अनित्य। तुलसीदास कहते हैं कि यह प्रामाणिक बात है

और सज्जन गुरुओं के बोध कराने पर जान जाते हैं ॥६३॥

भावार्थ—पुत्र-कलत्रादि में प्रेम रखना अनित्य कार्य्य और ईश्वर में भक्ति-बुद्धि रखना नित्य कार्य्य है।

दोहा

महि मयंक ग्रहनाथ को, आदि ज्ञान भव भेद।
ता विधि तेई जीव कहँ, होत समुझ बिन खेद ॥६४॥

अर्थ—पृथिवी को चन्द्रमा तथा सूर्य्य का आदि से ही भेद-ज्ञान है अर्थात् एक को शीतकर और दूसरे को तापकर समझती है अतः एक शीत और दूसरा ताप देता भी है। उसी प्रकार यह जीव किसी से राग और किसी से द्वेषबुद्धि रखता है अतः ज्ञानहीन होकर दुःख पाता है ॥६४॥

दोहा

परो फेर निज कर्म महँ, भ्रम भव को यह हेत।
तुलसी कहत सुजन सुनहु, चेतन समुझ अचेत ॥६५॥

अर्थ—अपने कर्मों के फेर में पड़ना ही जीव के लिये भ्रम और भव-सागर का कारण है। तुलसीदास कहते हैं कि हे सज्जनो सुनो! इस कर्म की गति समझने में बड़े-बड़े ज्ञानी भी मूर्खवत् चूक जाते हैं ॥६५॥

टिप्पणी—श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है—

'किं कर्म किं कर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिता'।

अर्थात् क्या कर्म और क्या अकर्म है, इसके निर्णय करने में बड़े-बड़े विद्वान भी भ्रम में पड़ जाते हैं।

दोहा

नाम कार दूषण नहीं, तुलसी किये बिचार।
कर्मन की घटना समुझि, ऐसे बरण उचार ॥६६॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि इस कर्म की गति पर बहुतेरे जन विचार नहीं करते, इसमें नाम करने की इच्छा का होना ही दूषण है। अतएव मनुष्यों को उचित है कि कर्मों की घटना को समझकर तब वर्णोच्चारण करें ॥६६॥

भावार्थ—कोई बात बोलने के पूर्व ही विचार कर लिया करो कि इसका क्या फल होगा।

दोहा

सुजन कुजन महि गत यथा, तथा भानु शशि माहिं।
तुलसी जानतही सुखी, होत समुझ बिन नाहिं ॥६७॥

अर्थ—जिस प्रकार सूर्य्य के पास जाने से चन्द्रमा अपना प्रकाश खो बैठता है उसी प्रकार इस संसार में दुर्जनो की संगति में पड़कर सज्जन भी निन्दित हो जाते हैं तुलसीदास कहते हैं। कि इस बात को जानकर जो दुष्टजनों की कुसंगति से बचे रहते हैं वे ही तो सुखी हैं और जो नहीं समझते वे दु:खी रहते हैं ॥६७॥

टिप्पणी—अमावस्या के दिन सूर्य्य और चन्द्रमा एक राशि में रहते हैं अत: चन्द्रमा का प्रकाश क्षीण हो जाता है।

'अधिक अँधेरी जग करै, मिलि मावस रविचन्द'।

दोहा

मातु तात भव रीति जिमि, तिमि तुलसी गति तोरि।
मात न तात न जान तव, है तेहि समुझ बहोरि ॥६८॥

अर्थ—जिस प्रकार माता-पिता इस संसार की रीति के अनुसार शरीर के ही जन्मदाता हैं उसी प्रकार हे जीव! तुम्हारी भी दशा है अर्थात् निमित्त मात्र से उनकी माता-पिता संज्ञा मात्र होती है। तुलसीदास कहते हैं कि जब तुम यह समझ लो कि ये सांसारिक माता-पिता

तुम्हारे नित्य जीव के माता-पिता नहीं है तब तू अपने पूर्व रूप को जान सकेगा ॥६८॥

भावार्थ—आत्मा नित्य है।

दोहा

सर्व सकल ते है सदा, विश्लेषित सब ठौर।
तुलसी जानहिं सुहृद ये, ते अति मति शिर मौर ॥६९॥

अर्थ—वह आत्मा सब स्थानो पर पूर्ण, अखण्ड और सब काल में सर्व वस्तुओं में रमा हुआ है। तुलसीदास कहते हैं कि जो सुहृद, बुद्धिमानों के शिरोमणि हैं वे ही ऐसा जानते हैं ॥६९॥

दोहा

अलंकार घटना कनक, रूप नाम गुण तीन।
तुलसी राम-प्रसाद ते, परखहिं परम प्रवीन ॥७०॥

अर्थ—सोना जब किसी गहने के आकार में लाया जाता है तो उसका वैसा ही नाम प्रसिद्ध होता है यद्यपि उसमें सोने के रूप, नाम और गुण तीनों विद्यमान रहते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि श्रीरामजी की कृपा से परम प्रवीण लोग यह जानते हैं ॥७०॥

भावार्थ—वही सोना कभी अँगूठी और कभी कंकण के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है यद्यपि उनमें सोने के रूप, नाम और गुण तीनों विद्यमान हैं। उसी प्रकार यह जीव नाना योनियों में जाकर नाना प्रकार का प्रतिभासित हो रहा है परन्तु यथार्थ में सब में एक आत्मा है।

दोहा

एक पदारथ विविध गुण, सज्ञा अगम अपार।
तुलसी सु गुरु प्रसाद ते, पाये पद निरधार ॥७१॥

अर्थ—एक ही पदार्थ अनेक प्रकार के गुणों के कारण अनेक प्रकार की संज्ञा पाता है (परन्तु उस वस्तु में कोई भेद नहीं आता) तुलसीदास कहते हैं कि श्रेष्ठ गुरुओं की कृपा से इस निश्चयात्मक पद की प्राप्ति होती है॥७१॥

भावार्थ—गुण भेद होने से एक ही मृतिका की घटादि संज्ञा होती है परन्तु मृतिका ही सब है। तदनुसार ही मनुष्य, पशु-पक्षी आदि संज्ञा में परिवर्त्तन होने से आत्मा में कोई परिवर्तन नहीं होता।

दोहा

गन्धन मूल उपाधि बहु, भूषण तन गण जान।
शोभा गुण तुलसी कहहिं, समुझहि सुमति निधान॥७२॥

अर्थ—शरीर के अनेक स्थानों पर गहने पहने जाते हैं, उन-उन स्थानों के नाम सहित उपाधि भेद से गन्धन (सोना) जो मूल है उसके कई नाम पड़ जाते हैं और उन भूषणों में केवल शोभा गुण है। तुलसीदास कहते हैं कि तदनुसार ही बड़े-बड़े बुद्धिमान समझते हैं कि आत्मा केवल उपाधि-भेद से भिन्न-भिन्न नामों से प्रसिद्ध होता है। अपितु आत्मा में कोई भेद नहीं ॥७२॥

दोहा

जैसे जहाँ उपाधि तहँ, घटित पदारथ रूप।
तैसो तहाँ प्रभास मन, गुण गण सुमति अनूप॥७३॥

अर्थ—जहाँ जैसी उपाधि होती है वहाँ वैसा ही उस पदार्थ का रूपमात्र घटित होता है अर्थात् उपाधि-भेद से भिन्न-भिन्न रूपमात्र प्रतीत होता है प्रत्युत वस्तु एक ही है तदनुसार ही उपाधि-भेद से मन को भिन्न-भिन्न वस्तुओं का प्रभास-मात्र होता है। इसे विशेष गुणी, सुन्दर अनूप बुद्धिवाले ही जानते हैं ॥७३॥

दोहा

जासु वस्तु कहँ स्थिर सदा, मिटत मिटाये नाहिं।
रूप नाम प्रगटत दुरत, समुझि बिलोकहु ताहि॥७४॥

अर्थ—वस्तु को सर्वदा स्थिर समझो। उसका अस्तित्व मिटाने से भी नहीं मिटता परन्तु रूप और नाम ये प्रगट और नाश होते रहते हैं, उसे समझ कर देखो॥७४॥

भावार्थ—सोने की अँगूठी बनायी फिर उसे गलाकर कंकण बना दिया। इन दोनों ही अवस्थाओं में सोने का अस्तित्व नष्ट नहीं हुआ केवल उपाधि-भेद से नाम बदलता गया। उसी प्रकार नाना शरीर में जाने से आत्मा नाना प्रकार का नहीं हो जाता और न उसमें कोई परिवर्तन ही होता है, केवल रूप और नाम में परिवर्तन होता रहता है।

दोहा

पेखि रूप संज्ञा कहब, गुण सुविवेक विचार।
इतनोई उपदेश वर, तुलसी किये विचार॥७५॥

अर्थ—रूप देखकर नाम तो कह दिया जाता है पर गुणों का पता सुन्दर विवेक से विचारने पर ही लगता है। तुलसीदास कहते हैं कि विचारपूर्वक देखो यही उपदेश श्रेष्ठ है॥७५॥

भावार्थ—आत्मा के गुण देखो शरीर के रूप और नाम में कोई तत्व नहीं।

दोहा

सदा सगुण सीता-रमण, सुख सागर बल धाम।
जन तुलसी परखे परम, पावै पद विश्राम॥७६॥

अर्थ—सुख के समुद्र और बल के धाम श्रीरामजी सदा सगुण रूप

हैं। तुलसीदास कहते हैं कि उनके स्वरूप की पहचान हो जाने से परमानन्द पद की प्राप्ति होती है ॥७६॥

टिप्पणी—गोसाईं जी महाराज 'सगुण' शब्द को सम्भवतः साकार अर्थ में प्रयुक्त करते थे जो अशुद्ध है।

दोहा

सगुण पदारथ एक नित, निर्गुण अमित उपाधि।
तुलसी कहहिं विशेष ते, समुझ सुगति सुठि साधि ॥७७॥

अर्थ—सगुण पदार्थ नित्य एक स्वरूप रहते हैं और निर्गुण पदार्थ में अनेक उपाधि-भेद से अनेक रूप भासता है। तुलसीदास कहते हैं कि इसी कारणवश निर्गुण की अपेक्षा अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धिवाले सगुण को ही विशेष मानते हैं ॥७७॥

टिप्पणी—कवि का ईश्वर विषयक विचार बड़ा ही विचित्र था। इनके लेख में कहीं तो साकारवाद, कहीं मायावाद, कहीं अद्वैतवाद और कहीं-कहीं विशिष्टाद्वैतवाद की झलक आती है। परन्तु साकारोपासना ही इनकी मुख्य थी। यहाँ तो निराकार में ही आप अनेक उपाधियों के अध्यारोप कर साकार को ही महत्ता प्रदान करते हैं। साकार पदार्थ कदापि नित्य नहीं हो सकते, और उनके स्वरूप में भी सदा परिवर्तन देखा जाता है।

दोहा

यथा एक महँ वेद गुण, ता महँ को कहु नाहिं।
तुलसी वर्तत सकल है, समुझत कोउ कोउ ताहि ॥७८॥

अर्थ—एक श्रीरघुनाथजी में चार गुण हैं (जिनके अन्तर्गत अनेक हैं) इन चार गुणों में कहो कौन नहीं है अर्थात् इन्हीं चारों के भीतर

जगत बसता है। तुलसीदास कहते हैं कि इन्हीं गुणों से वह चराचर जगत में भी बर्त रहे हैं जिन्हें कोई-कोई समझते हैं ॥७८॥

टिप्पणी—(१) संसार की सृष्टि, उसका पालन तथा नाश, (२) भजनोपयोगिता, (३) आश्रित शरणोपयोगिता और (४) सुन्दर स्वरूपता ये चार गुण श्रीरामजी में कवि ने बतलाये हैं।

दोहा

तुलसी जानत साधु जन, उदय अस्त गत भेद।
बिन जाने कैसे मिटै, विविध जनन मन खेद ॥७९॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सन्त जन सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त पर्यन्त अर्थात् समस्त संसार का भेद जानते हैं। बिना संसार के सच्चे मर्म को पाये लोगों के चित्त का क्लेश कैसे मिट सकता है ? ॥७९॥

भावार्थ—संसार के भेद को जाननेवाले उसे हेय समझकर त्याग देते हैं और उपादेय ईश्वरोपासन में लीन हो जाते हैं अतः उनके सारे क्लेश मिट जाते हैं और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

दोहा

संशय शोक समूल रुज, देत अमित दुख ताहि।
अहि अनुगत सपने विविध, चाहि पराय न जाहि ॥८०॥

अर्थ—संशय और शोक ये प्रबल रोग हैं जो जीव को बहुत दुःख देते हैं। स्वप्न में सर्प से भेंट हुई और बहुतेरी इच्छा करने पर भी भाग नहीं जाता॥८०॥

भावार्थ—यद्यपि सर्प का अस्तित्व नहीं तथापि दुःख की प्राप्ति होती है वैसे ही जब तक मन के सारे संशय नहीं मिटते तब तक दुःखों की निवृत्ति का होना सम्भव नहीं।

दोहा

तब लगि साँचो साँप है, जब लगि खुलै न नैन।
सो तब लगि अब लगि नहीं, सुनै सु गरुवर बैन ॥८१॥

अर्थ—उपर्युक्त स्वप्न का सर्प जब तक नींद नहीं खुलती तब तक सत्य ही सत्य जान पड़ता है और जब तक सुन्दर गुरुवर के बचन नहीं सुनता तब तक नींद भी नहीं खुलती ॥८१॥

भावार्थ—स्वप्न में सर्प दुःख दे रहा है और जब किसी के पुकारने से नींद खुली तब न सर्प है और न तज्जनित दुःख ही है प्रत्युत मन में बड़ा ही हर्ष होता है तदनुसार यह जीवात्मा भ्रमवश संसार को सत्य मान नाना प्रकार क्लेश सहन कर रहा है परन्तु जब गुरु के उपदेश से सत्य का ज्ञान हो गया तो सारे भवजनित दुःखों की निवृत्ति हो गयी।

दोहा

पूरण परमारथ दरस, परसत जौ लगि आश।
तौ लगि खन उदपान नर, जब लगि जल न प्रकाश ॥८२॥

अर्थ—जब तक पूर्ण परमार्थ पद की प्राप्ति नहीं हुई रहती तभी तक आशा स्पर्श करती है अर्थात् सांसारिक वासना, तभी तक मन में रहती है जब तक जीव को परमात्मा की प्राप्ति नहीं हुई रहती। नियम है मनुष्य कुआँ तब तक खनते जाते हैं जब तक जल न दीख पड़े ॥८२॥

दोहा

तब लगि हमते सब बड़ो, जबलगि है कुछ चाह।
चाह-रहित कह को अधिक, पाय परम पद थाह ॥८३॥

अर्थ—जब तक मन में इच्छा बनी है तब तक हमसे सभी बड़े हैं और जब इच्छाहीन बन गये तब कौन बड़ा है? इसी प्रकार परमपद की प्राप्ति में जीव चाह-हीन बन जाते हैं ॥८३॥

दोहा

कारण करता है अचल, अपि अनादि अज रूप।
ताते कारज विपुल तर, तुलसी अमल अनूप ॥८४॥

अर्थ—कर्त्ता और कारण का सम्बन्ध स्थिर, अनादि और नित्य रूप है अतः कर्त्ता के द्वारा अनेक कार्य्य होते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि वे कार्य्य यदि अमल और अनूप हों तो कर्त्ता का कल्याण है अर्थात् सुकर्मों के करने से जीव को उत्तम गति की प्राप्ति होती है ॥८४॥

दोहा

करता जानि न परत है, बिन गुरु वर परसाद।
तुलसी निज सुख बिधि रहित, केहि बिधि मिटै विषाद ॥८५॥

अर्थ—विना गुरु की कृपा के कर्त्ता (जीव) को अपना बोध नहीं होता। तुलसीदास कहते हैं कि वह अपने सुखप्राप्ति की विधि से रहित है अर्थात् जब तक सच्चे सुख की प्राप्ति की रीति वह नहीं जानता तब तक उसका दुःख किस प्रकार मिट सकता है? ॥८५॥

दोहा

मृन्मय घट जानत जगत, बिनु कुलाल नहिँ होय।
तिमि तुलसी कर्त्ता रहित, कर्म करै बहु कोय ॥८६॥

अर्थ—संसार जानता है कि घड़ा मिट्टी का होता है परन्तु वह बिना कुम्हार के स्वयं नहीं बन गया। तुलसीदास कहते हैं कि बिना कर्त्ता के बहुतेरे कार्य्य क्या स्वयं हो गये हैं? ॥८६॥

भावार्थ—कवि के कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार घट, पटादि को देखकर ही अनुमान द्वारा कुलाल (कुम्हार) और तन्तुवाय (जोलाहे) का निश्चय होता है, तदनुसार ही जगत को देखकर उसके रचयिता (ईश्वर) का दृढ़ अनुमान और निश्चय होता है।

दोहा

ताते करता ज्ञान कर, जाते कर्म प्रधान।
तुलसी ना लखि पाइहौ, किये अमित अनुमान ॥८७॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिस कर्ता से कर्म की प्रधानता है उसका ज्ञान अनेक प्रकार के अनुमान करने से नहीं हो सकता ॥८७॥

दोहा

अनूमान साक्षी रहित, होत नहीं परमान।
कह तुलसी परतच्छ जो, सो कहु अपर को आन ॥८८॥

अर्थ—क्योंकि साक्षीहीन होने से अनुमान का भी प्रमाण नहीं माना जाता और वह साक्षी प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अन्य कौन है? ॥८८॥

भावार्थ—अनुमान का भी मूल प्रत्यक्ष ही है क्योंकि बिना प्रत्यक्ष के अनुमान हो नहीं सकता अत आत्मा का जब तक प्रत्यक्ष नहीं हो तब तक अनुमान प्रमाण की वहाँ पहुँच नहीं हो सकती।

दोहा

तिमि कारण करता सहित, कारज किये अनेक।
जो करता जानै नहीं, तो कहु कवन विवेक ॥८९॥

अर्थ—इसी प्रकार कारण युक्त होकर कर्त्ता जो कि अनेक कार्य्य कर रहा है यदि उसको नहीं जाना तो ज्ञान ही क्या हुआ? ॥८९॥

भावार्थ—कर्त्ता का ज्ञान नितान्त आवश्यक है।

दोहा

स्वर्णकार करता कनक, कारण प्रगट लखाय।
अलंकार कारज सुखद, गुण शोभा सरसाय ॥९०॥

अर्थ—स्वर्णकार कर्त्ता, सोना कारण और अलंकार ही कार्य्य है जो सुखदायक होकर गुण और शोभा प्रगट करता है ॥९०॥

दोहा

चामीकर भूषण अमित, कर्त्ता कह तव भेद।
तुलसी जे गुरु गम रहित, ताहि रमित अति खेद ॥९१॥

अर्थ—एक सोने के अनेकों गहने बनते हैं और तदनुसार ही सोने के भिन्न-भिन्न अनेक नाम पड़ते हैं। उसी प्रकार एक कर्त्ता के अनेक भेद मात्र हैं (वस्तुत कर्त्ता में कोई अन्तर नहीं आया) तुलसीदास कहते हैं कि जो गुरु के ज्ञान से वञ्चित हैं उन्हे अत्यन्त दु.ख प्राप्त हो रहा है, अर्थात् वे अविद्या में फँसकर नाना प्रकार के क्लेश पा रहे हैं ॥९१॥

दोहा

तन निमित्त जहँ जो भयो, तहाँ सोई परमान।
जिन जाने माने तहाँ, तुलसी कहहिं सुजान ॥९२॥

अर्थ—यह आत्मा जहाँ जैसा निमित्त शरीर पाता है वहाँ वैसा ही प्रमाण मान लेता है अर्थात् जिस शरीर में जाता है वहाँ अपने को वही समझ लेता है। तुलसीदास कहते हैं कि सज्जनों का कथन है कि जब यह अपने सच्चे स्वरूप को जान लेगा तब अपने को सबसे पृथक् और निर्लेप समझेगा ॥९२॥

दोहा

मृन्मय भाजन विविध बिधि, करता मन भव रूप।
तुलसी जाने ते सुखद, गुरु गम ज्ञान अनूप ॥९३॥

अर्थ—कर्त्ता (कुम्हार) के मन में जैसा स्वरूप आता है वैसे ही वह मृत्तिका के अनेक प्रकार के बर्तन बनाता है। तुलसीदास कहते हैं

कि सच्चे गुरुओं के सदुपदेश से जब इसे अपने अनुपम स्वरूप का ज्ञान हो जाय तो वही ज्ञान इसे वास्तविक सुख दे सकता है ॥९३॥

दोहा

सब देखत मृत भाजनहिँ, कोइ कोइ लखत कुलाल ।
जाके मन के रूप बहु, भाजन बिलघु बिशाल ॥९४॥

अर्थ—उन मृतिका के बने पात्रों को तो सब देखते हैं परन्तु उस कुम्हार को कोई-कोई पहचानते हैं जिसके मन के अनुरूप ही अनेक प्रकार के छोटे और बड़े बर्त्तन बने हैं। अर्थात् जगत की विविध रचना को देखकर तो सभी मुग्ध हो रहे हैं पर उसके रचयिता ईश्वर को कोई-कोई जन जानते हैं ॥९४॥

दोहा

एकै रूप कुलाल को, माटी एक अनूप ।
भाजन अमित बिशाल लघु, सो कर्त्ता मन रूप ॥९५॥

अर्थ—कुलाल का स्वरूप एक और मृतिका भी एक ही विचित्र स्वरूप है परन्तु कर्त्ता के मन के अनुरूप वर्त्तन छोटे और बड़े अनेक प्रकार के बनते हैं ॥९५॥

भावार्थ—कवि ने दर्शाया है कि एक ही प्रकृति से परमात्मा अनेक प्रकार की रचना रचता है।

दोहा

जहाँ रहत बर्तत तहाँ, तुलसी नित्य स्वरूप ।
भूत न भावी ताहि कहँ, अतिशय अमल अनूप ॥९६॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि नित्य स्वरूप अनादि, अनन्त, अत्यन्त निर्मल और अनूप आत्मा जहाँ रहता है वहाँ निज कर्त्तव्यानुसार फल भोगता है ॥९६॥

दोहा

श्वास समीर प्रतच्छ अप, स्वच्छादरस लखात।
तुलसी राम-प्रसाद बिन, अविगति जानि न जात॥९७॥

अर्थ—यह शरीर अप अर्थात् माता-पिता के रज-वीर्य्य का घना है उसमें जब तक प्राण वायु की गति है तभी तक यह आत्मा जीवित प्रतीत होता है और श्वास निकलने पर लोग कहते हैं कि मर गया परन्तु वास्तव में आत्मा स्वच्छादर्श (साफ आईने) जैसा है। तुलसीदास कहते हैं कि उसका वास्तविक ज्ञान गम्य से परे है अत. वह बिना भगवत्कृपा के जाना नहीं जाता॥९७॥

दोहा

तुलसी तुल रहि जात है, युग तन अचल उपाधि।
यह गति तेहि लखि परत जेहि, भई सुमति सुठि साधि॥९८॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि कारण और स्थूल शरीर तथा स्थिर उपाधि सो नष्ट हो जाती है परन्तु अन्त में केवल पवित्र जीवात्मा सूक्ष्म शरीर युक्त रह जाता है। यह अवस्था वही देख सकता है जिसकी बुद्धि साधना से अत्यन्त निर्मल हो गयी है॥९८॥

दोहा

करता कारण काल के, योग करम मत जान।
पुनः काल करता दुरत, कारण रहत प्रमान॥९९॥

अर्थ—ऐसा सिद्धान्त जानो कि काल, कारण और कर्त्ता के योग से ही कार्य्य हो सकता है अन्यथा नहीं। परन्तु काल और कर्त्ता के अदर्शन में भी कारण की विद्यमानता रहती है॥९९॥

भावार्थ—स्वर्णकार कर्त्ता और स्वर्ण ही कारण है जिनसे काल

पाकर नाना प्रकार के कार्य्यरूपी आभूषण बनते हैं परन्तु कर्त्ता और काल न भी तुलें तो इसमें स्वर्ण का अस्तित्व सन्दिग्ध नहीं। भाव यह कि प्रकृति नित्य है।

श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदास विरचितायां सप्तशतिकायां कर्म सिद्धांत योगो नाम पञ्चमः सर्गः श्रीमद्रामचन्द्र द्विवेदि रचित सुबोधिनी टीका युक्तः समाप्तः॥

कविवर तुलसीदास कृत, पंचम सर्ग समाप्त।
भयो तिलक 'श्रीपति' सहित, सुखदायक मत आप्त॥

षष्ठ सर्ग

अथ षष्ठस्सर्गः सार्थः प्रारभ्यते

दोहा

जल थल तन गत है सदा, ते तुलसी तिहुँ काल।
जन्म मरण समुझे बिना, भासत शमन विशाल ॥ १ ॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि यह आत्मा भूत, वर्त्तमान और भविष्य त्रयकाल में जल, स्थल और शरीरादि से सर्वथा पृथक् है, ऐसा समझे बिना जन्म और मरण की शान्ति (आवागमन की निवृत्ति) कठिन प्रतीत होती है ॥१॥

भावार्थ—देहादि से आत्मा भिन्न है, ऐसा बोध होने से ही मुक्ति हो सकती है।

दोहा

तैं तुलसी कर्त्ता सदा, कारण शब्द न आन।
कारण संज्ञा सुख दुखद, बिनु गुरु तेहि किमि जान ॥ २ ॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हे जीव ! तू सदा कर्मों का कर्त्ता है और कारण शब्द भी तुम से पृथक् नहीं है अर्थात् कर्मों का कारण (वासना) तुम से पृथक् नहीं होता और वही वासना सुख दुख की देनेवाली है, इसका यथार्थ ज्ञान बिना गुरु के कैसे हो सकता है ॥२॥

दोहा

कारज रत कर्त्ता समुझु, दुख सुख भोगत सोय।
तुलसी श्री गुरुदेव बिन, दुखप्रद दूरि न होय ॥ ३ ॥

अर्थ—कर्त्ता ही कार्य्य में तत्पर होता है और वही सुख-दुःख का भोग करता है। तुलसीदास कहते हैं कि श्रीगुरु देव की कृपा बिना वह दुख दायिनी वासना जीव से पृथक् नहीं होती ॥३॥

दोहा

कारण शब्द स्वरूप में, सञ्ज्ञा गुण भव जान।
करता सुर गुरु ते सुखद, तुलसी अपर न आन ॥ ४ ॥

अर्थ—स्वरूप अर्थात् आत्मा में कारण (वासना) होने से ही भव (जन्म मरण) संज्ञा (मनुष्य पशु आदि) और गुण (सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण) आदि हैं ऐसा जानो। तुलसीदास कहते हैं कि कर्त्ता (जीवात्मा) यदि स्वयं अपने स्वरूप को जाने तब तो वह स्वयं सुरगुरु के समान सुखद अर्थात् स्वाभाविक सुख स्वरूप है, इससे परे कोई दूसरा नहीं है ॥४॥

दोहा

गन्ध विभावरि नीर रस, सलिल अनल गत ज्ञान।
वायु बेग कहँ बिन लखे, बुध जन कहहिं प्रमान ॥ ५ ॥

अर्थ—गन्ध गुण पृथिवी का है उसमें आसक्त हो जीवात्मा विभावरी (रात्रि) अर्थात् अज्ञान में फँसता है; और जलमय होने के कारण रस (विषय) में फँसता है इसी प्रकार अग्नि, वायु और वेग अर्थात् शब्द गुणवाले आकाशादि तत्वों में आसक्त होकर नाना प्रकार के सुख दु.खादि सहन करता है इसे बिना जाने इस की मुक्ति नहीं, ऐसा पण्डित लोग प्रमाण कहते हैं ॥५॥

टिप्पणी—कवि के कहने का यह आशय है कि मनुष्य को जब तक पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पंच तत्वों; गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द इन पंच तन्मात्राओं; सत्त, रज और तम इन त्रय गुणो तथा आत्मा और परमात्मा का यथार्थ बोध नहीं होता तब तक इसे मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। और प्राच्य शास्त्रकार भी इस विषय में एकमत हैं तथा श्रुति में भी कहा है—

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।

दोहा

अनुस्वार अक्षर रहित, जानत है सब कोय।
कह तुलसी जहँ लगि बरण, तासु रहित नहिं होय ॥ ६ ॥

अर्थ—यद्यपि अनुस्वार की गणना अक्षरों में नहीं है इसे सभी वर्ण-ज्ञानी जानते हैं तथापि तुलसीदास कहते हैं कि जितने वर्ण हैं वे अनुस्वार से पृथक् भी नहीं हो सकते अर्थात् अनुस्वार सब वर्णों के सिर पर विराजमान हो जाता है ॥६॥

भावार्थ—जिस प्रकार अनुस्वार की गणना अक्षरों में नहीं है अर्थात् वह वर्ण से भिन्न रहता हुआ भी सब वर्णों से मिल जाता है उसी प्रकार परमात्मा शरीर-रहित होता हुआ भी समस्त साकार जगत में व्यापक है। परन्तु उसमें जगत के गुण लिप्त नहीं होते।

दोहा

आदिहु अन्तहु है सोई, तुलसी और न आन।
बिन देखे समुझे बिना, किमि कोइ करै प्रमान ॥ ७ ॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि आदि-मध्य और अन्त अर्थात् सब समय और सब स्थान में वही परमात्मा व्यापक है, कोई भी स्थान नहीं

जो उससे रहित हो परन्तु उसको बिना जाने और देखे कोई किस प्रकार प्रमाण मान सकता है ? ॥७॥

टिप्पणी—यद्यपि श्रुतियों और दर्शनो मे योगाभ्यास द्वारा निराकार ईश्वर के ही दर्शन की विधि बतलायी गयी है, परन्तु गोस्वामीजी साकारवादी थे अत उन्होंने इस दोहे में शका उठाकर अगले दोहे में अपने पक्ष की पुष्टि की है जो युक्त्याभास मात्र हैं।

दोहा

रहित बिन्दु सब वरण ते, रेफ सहित सब जान।
तुलसी स्वर संयोग ते, होत बरण पद मान ॥ ८ ॥

अर्थ—जिस प्रकार अनुस्वार सब वर्णों से पृथक् है अर्थात् उसकी गणना वर्णमाला में नहीं है और रेफ सब वर्णों के किसी न किसी अङ्ग में मिल जाता है (जैसे कर्म, धर्म, स्पर्शादि में ऊपर तथा श्रम, शक्र और शुभ्रादि में नीचे मिला हुआ है) और स्वर के संयोग से वही अनुस्वार और रेफ वर्णपद की प्राप्ति करके साकार हो जाते हैं अर्थात् अनुस्वार में स्वर मिलने से 'म' हो जाता है एवं रेफ में 'अ' मिलने से 'र' हो जाता है तदनुसार ही व्यापक ब्रह्म सब से पृथक् रहता हुआ भी मायोपहित (माया से घिरा हुआ) हो साकार भासता है ॥८॥

दोहा

अनुस्वार सूछम यथा, तथा बरण अस्थूल।
जो सूछम अस्थूल सो, तुलसी कबहुँ न भूल ॥ ९ ॥

अर्थ—अनुस्वार का स्वरूप सूक्ष्म है परन्तु वही जब वर्ण पद की प्राप्ति करता है तब स्थूल हो जाता है। तुलसीदास कहते हैं कि पहले जो सूक्ष्म था वही स्थूल हुआ इसे कभी मत भूलो ॥९॥

भावार्थ—कवि के कथन का भाव यह है कि निराकार ब्रह्म ही साकाररूप में परिणत होता है।

दोहा

अनिल अनल पुनि सलिल रज, तनगत तनवत होय।
बहुरि सो रजगत जल अनल, मरुत सहित रवि सोय॥१०॥

अर्थ—पृथिवी, जल, वायु और अग्नि आदि तत्व शरीर में आने से शरीरवत् हो जाते हैं अर्थात् इन्हीं तत्वों से शरीर बना हुआ है और पुनः इस शरीर के नष्ट हो जाने पर ये पृथक् पृथक् हो पृथिव्यादि तत्व फिर अपने-अपने आकार और स्वरूप में आ जाते हैं। यह बात रवि अर्थात् प्रत्यक्ष है॥१०॥

दोहा

और भेद सिद्धान्त यह, निरखु सुमति करि सोय।
तुलसी सुत भव योग बिनु, पितु संज्ञा नहिं होय॥११॥

अर्थ—सृष्टिकर्त्ता और सृष्टि के भेद तथा अन्यान्य सिद्धान्तों को समझने के लिये अपनी बुद्धि को निर्मल बनाओ। तुलसीदास कहते हैं कि संसार में जब तक किसी को पुत्र का योग नहीं होता तब तक उसकी पिता संज्ञा नहीं होती॥११॥

भावार्थ—जब तक किसी मनुष्य को सन्तान उत्पन्न नहीं होती तब तक वह पिता नहीं कहला सकता उसी प्रकार ईश्वर जब तक सृष्टि नहीं करे तब तक वह सृष्टिकर्त्ता नहीं कहा सकता। अतः ईश्वर से सृष्टि प्रादुर्भूत हुई और सृष्टि होने से ही वह उसका पिता हुआ।

दोहा

संज्ञा कहतब गुण समुझ, सुनब शब्द परमान।
देखब रूप विशेष है, तुलसी वेष बखान॥१२॥

अर्थ—पदार्थों की संज्ञा कथनमात्र के लिये, उनके गुण समझने के लिये, शब्द श्रवण करके प्रमाण मानने के लिये, रूप दर्शनमात्र के लिये और वेष (आकार) वर्णन करने के लिये है अर्थात् शब्द, रूप और आकारादि सब उपाधिमात्र हैं, सार नहीं ॥१२॥

दोहा

होत पिता ते पुत्र जिमि, जानत को कहु नाहिं।
जब लगि सुत परसो नहीं, पितु-पद लहै न ताहि ॥१३॥

अर्थ—पिता से ही पुत्र की उत्पत्ति होती है इसे कौन नहीं जानता? अर्थात् सभी जानते हैं परन्तु जब तक किसी मनुष्य को पुत्र नहीं हुआ रहता तब तक उसकी पिता पदवी भी नहीं होती अर्थात् मनुष्य, पिता उसी समय कहलाता है जब उसे पुत्र उत्पन्न हो ॥१३॥

दोहा

तिमि बरगान बरगान करै, संज्ञा बरग सँयोग।
तुलसी होय न बरग कर, जब लगि बरग वियोग ॥१४॥

अर्थ—जिस प्रकार पुत्रोत्पत्ति होने से ही मनुष्य की पिता संज्ञा हो जाती है परन्तु उसमें कोई परिवर्त्तन नहीं आता तदनुसार ही वर्णों के परस्पर सम्बन्ध होने से ही शब्द बनते हैं और उनसे कोई संज्ञा बनती है अर्थात् वर्ण ही एकत्रित होकर सब विषयों का वर्णन करते हैं। जैसे 'र' आ, और 'म' इन तीन वर्णों के पृथक्-पृथक् रहने से केवल ये वर्णमात्र हैं परन्तु जब तीनों एकत्रित हो गये तो 'राम' शब्द बनकर व्यक्ति विशेष की संज्ञा उत्पन्न हुई, जब तक इन वर्णों का पृथक्-पृथक् वियोग था तब तक कोई संज्ञा नहीं बनी थी ॥१४॥

भावार्थ—गोस्वामीजी महाराज के कथन का भाव यह है कि सभी संज्ञा परक पदार्थ शब्दमात्र हैं और वे शब्द अक्षरों से बने हैं परन्तु सभी

लोग पदार्थ के गुण-दोषानुसार शब्दों से प्रेम वा घृणा करते हैं जैसे मिश्री, मिष्ठान्नादि के शब्द सुनकर सब लोग प्रसन्न एवं मल-मूत्रादि शब्दों से घृणा करते हैं पर वास्तव में विचारकर देखिये तो अक्षरों में कोई विकार नहीं तदनुसार अक्षर परमात्मा जगतमय भासता है पर वह सब से पृथक् है।

दोहा

तुलसी देखहु सकल कहँ, यहि बिधि सुत आधीन।
पितु-पद परखि सुदृढ़ भयो, कोउ कोउ परम प्रवीन ॥१५॥

अर्थ—इस प्रकार सारा संसार पुत्र के अधीन हो गया। तुलसीदास कहते हैं कि कोई-कोई विज्ञ जन पिता-पद की खोजकर उसमें दृढ़ता प्राप्त करते हैं ॥१५॥

भावार्थ—जिस प्रकार शब्दों के अनुसार उसके संज्ञा परक पदार्थों के गुण-दोषानुसार ही लोग राग-द्वेष करते हैं, अक्षरों की निर्विकारता पर कोई ध्यान नहीं देता तदनुसार ही सारा जन समुदाय पुत्र रूप जगत में आसक्त हो रहा है, पिता परमात्मा की ओर किसी-किसी विज्ञ जन की प्रवृत्ति देखी जाती है।

दोहा

जहँ देखो सुतपद सकल, भयो पिता-पद लोप।
तुलसी सो जानै सोई, जासु अमौलिक चोप ॥१६॥

अर्थ—जहाँ देखिये वहाँ पुत्र पद (जगतरूपी शब्द) की ही प्रधानता है और पिता (परमात्मारूपी अक्षर) पद का लोप हो गया अर्थात् जगत ही में सब आसक्त होकर पिता परमात्मा को भूल बैठे। तुलसीदास कहते हैं कि इस बात को वे ही पुरुष जान सकते हैं जिन्हें अमूल्य प्रीति है ॥१६॥

टिप्पणी—चतुर्थ पद में यदि 'अमौलिक' के स्थान में 'अलौकिक' पाठ होता तो अच्छा था।

दोहा

ख्यात सुवन तिहुँ लोक महँ, महा प्रबल अति सोइ।
जो कोइ तेहि पाछे करै, सो पर आगे होइ ॥१७॥

अर्थ—तीनों लोकों में अर्थात् सर्वत्र पुत्र (संसार) ही प्रसिद्ध हो गया क्योंकि वह महाप्रबल है अर्थात् जगत में ही सारा जन समुदाय आसक्त हो रहा है। परन्तु जो कोई महाभाग उसकी ओर से मुँह मोड़ उसे पीठ की ओर कर लेते हैं वे ही सबसे आगे हो जाते हैं ॥१७॥

भावार्थ—जगत में जो आसक्त नहीं होते उन्हीं को विष्णुपद की प्राप्ति होती है।

दोहा

तुलसी होत नहीं कछुक, रहित सुवन व्यवहार।
ताही ते अग्रज भयो, सब बिधि तेहि परचार ॥१८॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि पुत्र की कामना से संसार में कोई भी रहित नहीं है अर्थात् पुत्र की इच्छा सभी को है। यही कारण है कि पुत्र की सर्वत्र ही श्रेष्ठता वा प्रधानता है और सब प्रकार वही मान्य है ॥१८॥

दोहा

सुवन देखि भूले सकल, भय अति परम अधीन।
तुलसी जेहि समुझाइये, सो मन करत मलीन ॥१९॥

अर्थ—सारा विश्व पुत्र को देखकर मोहित हो उसके अत्यन्त अधीन हो गया। तुलसीदास कहते हैं कि जिसको समझाया जाता है कि

पुत्र के अधीन होना ठीक नहीं है तो वह सुनकर उदास मन हो जाता है ॥१९॥

भावार्थ—कविवर के कथन का भाव यह है कि सारा जन समुदाय संसार में आसक्त हो रहा है। ऐसी दशा में यदि कहा जाता है कि संसार से अपनी प्रवृत्ति हटाकर पिता परमात्मा में भक्ति दृढ़ करो तो ऐसा सुन कर लोग उदास हो जाते हैं।

दोहा

मानत सो साँचो हिये, सुनत सुनावत बादि।
तुलसी ते समुझत नहीं, जो पद अचल अनादि ॥२०॥

अर्थ—सुननेमात्र के लिए यह उपदेश कि ब्रह्म ही सत्य और जगत मिथ्या है लोग सुन भी लेते हैं और अन्यो को ऐसा ही सुनाते और उप-देश भी देते फिरते हैं। परन्तु सब सुनना-सुनाना व्यर्थ है क्योंकि कथन-मात्र के लिए संसार को मिथ्या कहते हैं पर वास्तव में उसे हृदय में सच्चा समझ पूर्ण आसक्त हैं। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसे लोग अचल अनादि परमात्मापद को नहीं समझ सकते ॥२०॥

दोहा

जाहि कहत हैं सकल सो, जेहि कहतव सो ऐन।
तुलसी ताहि समुझि हिये, अजहुँ करहु चित चैन ॥२१॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि सब वेदादि सच्छास्त्र उसी परमात्मा की प्रशंसा करते हैं अतः उन्हीं के कथनानुसार निश्चय करके उसी परब्रह्म को हृदय में समझकर हे जीव! अब भी चित्त में चैन (आनन्द) का अनुभव करो ॥२१॥

दोहा

तुलसी जो है सो नहीं , कहत आन सब कोय ।
एहि विधि परम बिडम्बना , कहहु न का कहँ होय ॥२२॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान जैसा होना चाहिये वह तो वास्तव में कोई कहता नहीं। अन्यान्य कथनोपकथन में ही सब लगे हुए हैं। इस कारण किसका इस प्रकार अत्यन्त अपमान नहीं हो रहा है अर्थात् जो ईश्वर की भक्ति और कथा छोड़कर अन्यान्य कर्मों में आसक्त हैं उनका अवश्य तिरस्कार होगा ॥२२॥

दोहा

गुरु करिबो सिद्धान्त यह , होय यथारथ बोध ।
अनुचित उचित लखाइ उर , तुलसी मिटै बिरोध ॥२३॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि गुरु करने का यह सिद्धान्त अर्थात् उद्देश्य है कि सब पदार्थों अर्थात् पृथिवी से लेकर परमेश्वर तक का यथार्थ बोध हो, उचितानुचित (सत्यासत्य) का ज्ञान हो और सब प्रकार की कुशङ्काओं अथच कुतर्कनाओं की निवृत्ति हो जिससे चित्त में शान्ति का सञ्चार हो ॥२३॥

दोहा

सत संगति को फल यही , संशय लहै न लेश ।
हृै अस्थिर शुचि सरल चित , पावै पुनि न कलेश ॥२४॥

अर्थ—महात्मा जनों की संगति का फल यही है कि हृदय में लेश मात्र संशय न रह जाय अर्थात् सब संशयों की निवृत्ति हो जाय और चित्त में सरलता शुद्धि तथा शान्ति आवे अथच पुनः क्लेश न हो ॥२४॥

भावार्थ—सतसंगति से संशयों तथा तीनों प्रकार के दुःखों की निवृत्ति होकर चित्त में सरलता, शुद्धि और शान्ति आती है।

दोहा

जो मरबो पद सबन को, जहँ लगि साधु असाधु।
कवन हेतु उपदेश गुरु, सत संगति भव बाध ॥२५॥

अर्थ—अज्ञानियों का कथन है कि संसार में जब साधु अथच असाधु सब को मरना ही है तब गुरु का उपदेश लेना किस काम का है, उलटे सतसंगति में फँसने मे सांसारिक कार्य्यों में बाधा ही आती है ॥२५॥

दोहा

जो भावी कछु है नहीं, झूठो गुरु सतसंग।
ऐसि कुमति ते झूठ गुरु, संतन को परसंग ॥२६॥

अर्थ—जो भाग्य में बदा है वही होता है, जो भावी ही में कुछ नहीं है तो गुरु करना और महात्मा जनों का सङ्ग भी झूठा है। इस प्रकार दुर्मति लोग गुरुपरम्परा तथा सतसङ्ग को मिथ्या और अनावश्यक बतलाया करते हैं ॥२६॥

दोहा

जौ लगि लखि नाहीं परत, तुलसी पर पद आप।
तौ लगि मोह विवश सकल, कहत पुत्र को बाप ॥२७॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जब तक इन अज्ञानियों को स्वयं परपद (ब्रह्मपद) का साक्षात् ज्ञान नहीं होता तब तक सब के सब अज्ञानवश पुत्र को ही पिता समझते हैं। अर्थात् संसार में ही सब प्रकार आसक्त हैं, परमात्मा को नहीं जानते ॥२७॥

दोहा

जहँ लगि संज्ञा बरण भव, जासु कहे ते होय।
तैं तुलसी सोहै सबल, आन कहा कहुँ होय ॥२८॥

अर्थ—कई वर्णों के एकत्रित होने से ही संज्ञा बनती है। जैसे स्, ई, त्, आ, र्, आ, और म के एकत्रित होने से 'सीताराम' संज्ञा वाचक शब्द हुआ। ये अक्षरों के द्वारा ही होते हैं अर्थात् अक्षर ही प्रबल हैं। तुलसीदास कहते हैं कि उसी प्रकार जीव के मनोरथानुसार ही इसे देहादि की प्राप्ति होती है और तदनुसार ही उसकी जगत में मनुष्य, पशु, कीटादि संज्ञा भी हो जाती है। तथापि जीवात्मा ही प्रबल है क्योंकि कर्त्ता है। यदि यह आत्मपद की ओर झुके तो वास्तव में इसके सम्मुख कोई दूसरा नहीं अर्थात् देहादि इसके साधन में बाधा नहीं पहुँचा सकते प्रत्युत सहायक हो जाते हैं ॥२८॥

दोहा

अपने नैनन देखि जे, चलहिं सुमति बर लोग।
तिनहिं न बिपति बिषाद रुज, तुलसी सुमति सुयोग ॥२९॥

अर्थ—श्रेष्ठ महापुरुष और बुद्धिमान वे ही मनुष्य हैं जो स्वयं अपने नेत्रों से देखकर चलते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि उनके सब कार्य्य सुमति के सुयोग अर्थात् विचारपूर्वक होते हैं अत संसार में उन्हें दुःख, शोक और रोग नहीं होता ॥२९॥

दोहा

मृगा गगन चर ज्ञान बिन, करत नहीं पहचान।
पर बश शठ हठ तजत सुख, तुलसी फिरत भुलान ॥३०॥

अर्थ—पशु और पक्षी इत्यादि तो ज्ञान शून्य होने के कारण आत्म-पहचान नहीं करते और पराधीन होकर हठपूर्वक सुखहीन हो भूले फिरते हैं परन्तु मनुष्य यदि भूले तो महा आश्चर्य है ॥३०॥

दोहा

काह कहौं तेहि तोहि को, जेहि उपदेशेउ तात।
तुलसी कहत सो दुख सहत, समुझ रहित हित बात ॥३१॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि लोग ऐसे समझरहित ज्ञानशून्य हो रहे हैं कि जिसको हित की बात का भी उपदेश किया जाता है वह उसे सुनकर दुःख ही सहता है अर्थात् हितोपदेश की बातें सुनने से दुःखी हो जाता है तब ऐसी अवस्था में किसे क्या कहा जाय ? ॥३१॥

दोहा

बिन काटे तरुवर यथा, मिटै कवन बिधि छाँह।
त्यों तुलसी उपदेश बिन, निस्संशय कोउ नाँह ॥३२॥

अर्थ—पुनः उपदेश की आवश्यकता दिखलाते हैं कि जिस प्रकार बिना पेड़ कटे उसकी छाया अन्य किसी उपाय से नष्ट नहीं हो सकती उसी प्रकार बिना उपदेश के कोई भी मनुष्य संशयरहित नहीं हो सकता अर्थात् जब तक महात्माओं के उपदेश नहीं सुने तब तक हृदयस्थ संशयों की निवृत्ति नहीं हो सकती और संशयहीन हुए बिना कल्याण असम्भव है ॥३२॥

दोहा

अपनो करतब आप लखि, सुनि गुनि आप बिचार।
तौ तेहि कहँ दुखदा कहा, सुखदा सुमति अधार ॥३३॥

अर्थ—अपनी करनी पर आप विचार करे कि 'हमारा कर्त्तव्य कैसा है' इसका बारम्बार मनन करे तो अवश्य दुष्कर्मों पर पश्चात्ताप होगा। जिसने सुखदायिनी सुमति का आश्रय ग्रहण किया उसके लिये कोई भी दुःखदायिनी वस्तु संसार में नहीं है ॥३३॥

भावार्थ—प्रत्येक मनुष्य के अन्दर सदसद्विवेकिनी बुद्धि विद्यमान है जो सर्वदा और सर्वशा उचित मार्ग पर चलने की ही अनुमति देती है यदि मनुष्य उस ऋतम्भरा बुद्धि से काम ले तो उसे संसार में कोई क्लेश न हो।

दोहा

ब्राह्मण वर विद्या विनय, सुरति विवेक निधान।
पथ रति अनय अतीत मति, सहित दया श्रुति मान ॥३४॥

अर्थ—अब श्रीगोस्वामीजी चारों वर्णों के गुण-कर्म बतलाते हैं। जो श्रेष्ठ विद्या, नम्रता, ईश्वरोपासना, ज्ञान इत्यादि श्रेष्ठ गुण-कर्म के मार्ग पर चलते हुए अन्याय मार्ग से अपनी बुद्धि पृथक् रखे और दया, शील तथा वेदज्ञ हो वही ब्राह्मण है ॥३४॥

टिप्पणी—श्रीमद्भगवद्गीता तथा मनुस्मृति में ब्राह्मण का लक्षण इस प्रकार लिखा है—

शमोदमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्म कर्म स्वभावजम् ॥

गीता अ० १८ श्लो० ४२

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैवं ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥

मनु० अ० १ श्लो० ८८

दोहा

बिनय छत्र सिर जासु के, प्रतिपद पर उपकार।
तुलसी सो छत्री सही, रहित सकल व्यभिचार ॥३५॥

अर्थ—जिसके सिर पर नम्रता का ही मुकुट सुशोभित हो, जिसके प्रत्येक चरण परोपकार में ही उठते हों और जो सब प्रकार के अनाचार और दुष्कर्मों से रहित हो वही सही क्षत्रिय है ॥३५॥

टिप्पणी—श्रीमद्भगवद्गीता तथा मनुस्मृति में क्षत्री का लक्षण इस प्रकार लिखा है—

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धेचाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥
गी० अ० १८ श्लो० ४३

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥
मनु० अ० १ श्लो० ८९

दोहा

वैश्य बिनय मग पग धरै, हरै कटुक बर बैन।
सदय सदा शुचि सरलता, होय अचल सुख ऐन॥३६॥

अर्थ—सदा नम्रता के पक्ष का अनुसरण करे, कटु भाषण त्याग श्रेष्ठ वचन बोले, सर्वदा दया, पवित्रता तथा सरलता का अवलम्बन करे और स्थिर चित्त एवम् सुख का गृह अर्थात् अत्यन्त सुखी हो वही वैश्य है॥३६॥

टिप्पणी—गीता और मनुस्मृत्यनुसार वैश्य-लक्षण—

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्॥
गी० अ० १८ श्लोक ४४ पूर्वार्द्ध

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिरेव च॥
मनु० अ० १ श्लो० ९०

दोहा

शूद्र क्षुद्र पथ परिहरै, हृदय विप्र-पद मान।
तुलसी मनसम तासु मति, सकल जीव सम जान॥३७॥

अर्थ—जो दुष्ट-पथ का त्याग, हृदय से ब्राह्मणो के चरण में भक्ति, मन तथा बुद्धि में समता एवं सब जीवों में समान रक्षा-भाव रखे वही शूद्र है ॥३७॥

टिप्पणी—शूद्र लक्षण—

परिचर्य्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥
गीता० अ० १८ श्लो० ४४ उत्तरार्द्ध

एकमेवतु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥
मनु० अ० १ श्लो० ९१

दोहा

हेतु बरन बर शुचि रहनि, रस निरास सुखसार ।
चाह न काम सुरा नरम, तुलसी सुदृढ़ बिचार ॥३८॥

अर्थ—अब गोसाईंजी चारो वर्णो के गुण-कर्म लिखकर अन्त में अपना पक्का विचार प्रगट करते हैं कि सभी वर्ण श्रेष्ठ इस कारण कहला सकते हैं जब उनमें पवित्रता हो और रहन-रीति ठीक हो, विषयरूपी रस से निराश अर्थात् पृथक् हो, कामवासना एवं मान मदिरा की चाह न हो तथा हृदय मे नम्रता हो और यही सुखों का सार भी है ॥३८॥

दोहा

यथा लाभ सन्तोष रत, गृह मग वन सम रीत ।
ते तुलसी सुख में सदा, जिन तनु विभव विनीत ॥३९॥

अर्थ—जितनी कुछ पुरुषार्थ द्वारा प्राप्ति हो उसीमें सन्तोष करे। घर, मार्ग एवं वन मे समान भाव से रहे और जिसके शरीर मे नम्रता का ही विभव हो वही मनुष्य सदा सुख में रहता है ॥३९॥

दोहा

रहै जहाँ बिचरै तहाँ, कमी काहु की नाहिँ।
तुलसी तहँ आनन्द सँग, जात यथा सँग छाहिँ ॥४०॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जिस प्रकार छाया सदा मनुष्य के संग में रहा करती है उसी प्रकार उपर्युक्त गुण युक्त मनुष्य जहाँ रहता है वहीं सुखपूर्वक विचरण करता है। उसे किसी भी वस्तु की कमी नहीं रहती और सर्वदा आनन्द के साथ ही रहता है अर्थात् उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता ॥४०॥

दोहा

करत कर्म जेहि को सदा, सो मन दुख दातार।
तुलसी जो समझै मनहिं, तौ तेहि तजे बिचार ॥४१॥

अर्थ—हे जीव! जिस मन के अनुसार तू सदा कर्म किया करता है वह मन दुःख ही देनेवाला है अर्थात् जिधर-जिधर मन ले जाता है वही-वही कर्म तू करता है और दुःख पाता है। तुलसीदास कहते हैं कि मन की गति को भलीभाँति समझो और विचार-पूर्वक उसका त्याग करो अर्थात् मन की कही बातों को न मानो ॥४१॥

दोहा

कहत सुनत समुझत लखत, तेहि ते बिपति न जाय।
तुलसी सब ते बिलग है, जब लैं नहिं ठहराय ॥४२॥

अर्थ—केवल ज्ञान की कथा कहने, सुनने, समझने और जानने मात्र से दुःखों का नाश नहीं होता। तुलसीदास कहते हैं कि हे जीव जब तू इन इन्द्रियों और मन प्रभृति से सर्वथा भिन्न है तब तू इनकी आज्ञा में मत रह अर्थात् अपने को प्रबल बनाकर इन्हें ही अपने अधीन कर ॥४२॥

दोहा

सुनत कोटि कोटिन कहत, कौड़ी हाथ न एक।
देखत सकल पुराण श्रुति, तापर रहित विवेक ॥४३॥

अर्थ—जब तक धनोपार्जन का व्यवसाय नहीं करते तब तक करोड़ों और लाखों रुपये की चर्चा सुनने और सुनाया करने से जिस प्रकार एक कौड़ी भी हाथ नहीं लगती उसी प्रकार सब पुराण तथा वेदों को देखते-सुनते हुए भी मनुष्य तब तक ज्ञानशून्य ही रह जाता है जब तक सद्ग्रन्थों को पढ़ और सुनकर तदनुसार कर्म नहीं करे, केवल सुनने-सुनाने से कुछ नहीं होता ॥४३॥

दोहा

समुझत है सन्तोष धन, याते अधिक न आन।
गहत नहीं तुलसी कहत, ताते अबुध मलान ॥४४॥

अर्थ—सब लोग यह समझते हैं कि सन्तोष परमोत्तम धन है, इस से बढ़कर दूसरा कोई धन नहीं, परन्तु तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा कथनमात्र में ही है इस उपदेश को लोग ग्रहण नहीं करते। यही कारण है कि सभी अज्ञानी, मलिन तथा दुखी हैं ॥४४॥

दोहा

कहा होत देखे कहे, सुनि समुझे सब रीति।
तुलसी जब लगि होत नहिं, सुखद राम-पद प्रीति ॥४५॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जब तक आनन्ददायक भगवच्चरणों में प्रेम नहीं होता तब तक अनेक ग्रन्थ देखने, ज्ञान कथा करने तथा सब रीति सुनने समझनेमात्र से क्या हो सकता है? ॥४५॥

दोहा

कोटिन साधन के किये, अन्तर मल नहिँ जाय।
तुलसी जौ लगि सकल गुण, सहित न कर्म नसाय ॥४६॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जब तक वासना के सहित सब प्रकार के कर्मों की प्रवृत्ति क्षीण नहीं होती, तब तक अनेक वाह्य साधनों से अन्तःकरण का मल नष्ट नहीं हो सकता ॥४६॥

दोहा

चाह बनी जब लगि सकल, तब लगि साधन सार।
ता महँ अमित कलेश कर, तुलसी देखु बिचार ॥ ४७॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जब तक तुम्हारे मन में भली या बुरी किसी प्रकार की भी चाह बनी हुई है तब तक सब प्रकार के साधनों का सार (अर्थात् फल) अत्यन्त दुःख भोगना ही है। इसे भलीभाँति विचार कर देख लो ॥४७॥

दोहा

चाह किये दुखिया सकल, ब्रह्मादिक सब कोय।
निश्चलता तुलसी कठिन, राम कृपा वश होय ॥४८॥

अर्थ—चाह (इच्छा, कामना अथवा वासना) करने से ब्रह्मादिक बड़े-बड़े महान पुरुषों को भी कष्ट ही होता है। तुलसीदास कहते हैं कि चाह की निवृत्ति और मन की निश्चलता (शान्ति) बड़ी ही कठिन है। भगवत्कृपावश कहीं शान्ति आजाय तो आजाय अन्यथा असम्भव है ॥४८॥

दोहा

अपनो कर्म न आपु कहँ, भलो मन्द जेहि काल।
तब जानब तुलसी भई, अतिशय बुद्धि बिशाल ॥४९॥

अर्थ—जिस समय मनुष्य की ऐसी अवस्था हो जाय कि वह अशुभ कर्मों का सम्यक्त्याग कर दे और उत्तम कर्मों को करता हुआ भी उसके फल की इच्छा से पृथक् रहे तब समझना चाहिये कि इस मनुष्य की बुद्धि अत्यन्त विशाल हुई ॥४९॥

भावार्थ—निष्काम कर्म करनेवाला ही बुद्धिमान पुरुष है।

दोहा

तुलसी जब लगि लखि परत, देह प्राण को भेद।
तब लगि कैसे कै मिटै, कर्म जनित बहु खेद ॥५०॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जीव को जब तक देह और प्राण में भेद समझ पड़ता है अर्थात् द्वैत बोध है तब तक कर्म जनित अनेक प्रकार के क्लेशो की निवृत्ति कैसे हो सकती है? अर्थात् जीव जब तक सारे विश्व को ब्रह्ममय नहीं जानता तब तक उसके दुःख नहीं छूट सकते ॥५०॥

दोहा

जोई देह सोइ प्राण है, प्राण देह नहिं दोय।
तुलसी जो लखि पाइ है, सो निर्दय नहिं होय ॥५१॥

अर्थ—वास्तव में जो शरीर है वही प्राण भी है, प्राण और देह दो नहीं। पञ्चतत्वों मे ही शरीर बना है और प्राण भी प्रकृति का ही परिणाम है, एक ही प्रकृति के दोनो रूपान्तरमात्र हैं। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा बोध जिनको हो जायगा कि सारा ब्रह्माण्ड एक ईश्वरमय है, किसे वैरी और किसे मित्र समझें तो वह मनुष्य निर्दयी नहीं हो सकता ॥५१॥

दोहा

तुलसी तै झूठो भयो, करि झूंठे सँग प्रीति।
है साँचो हो साँचु जब, गहै राम की रीति ॥५२॥

अर्थ—वर्त्तमान स्वरूप में विश्व ही झूठा अर्थात् नश्वर है अत. घर-देहादि सभी झूठे हैं। अत हे जीव ! तू इन विनश्वर देहादि झूठे पदार्थों में प्रीति करके स्वयं भी झूठा प्रतिभासित हो रहा है। तुलसीदास कहते हैं कि यदि तू सत्य भाव से श्रीराम की रीति का अवलम्बन करे तो पुन· सच्चा ही सच्चा है। अर्थात् प्रकृति के चंगुल में फँसकर तू जन्म-मरण में पड़ा हुआ है, यदि ईश्वरोपासना करे तो मुक्त हो जाय ॥५२॥

दोहा

झूठी रचना साँच है, रचत नहीं अलसात।
बरजत हूँ झगरत बिहठि, नेकु न बूझत बात ॥५३॥

अर्थ—चौरासी लाख योनियों में जीव भ्रमण करता है परन्तु सारी रचना झूठी है, अर्थात् सभी योनियाँ नश्वर हैं। अपने कर्म तथा अपनी वासनावश यह जीव नाना प्रकार के शरीर अपने लिये रचने में तनिक आलस्य नहीं करता। सब झूठी रचनाओं को सच्ची समझता है। यह प्रकृति में ऐसा फँसा हुआ है कि यदि कहिये कि तू क्या इन झूठी-झूठी रचनाओं में पड़ा है, एक भगवद्भक्ति का आश्रयण करो तो हठ करके वह झगड़ा करता है और तनिक बात भी नहीं समझता ॥५३॥

दोहा

करम खरी कर मोह थल, अङ्क चराचर जाल।
हरत भरत भर हर गनत, जगत जोतिषो काल ॥५४॥

अर्थ—यह कालरूपी ज्योतिषी अपने हाथ में कर्मरूपी खली (जिससे लड़के भूमि पर लिखा करते हैं) लेकर मोहरूपी स्थल (भूमि वा पट्टी) पर अङ्करूपी जगत के चराचर जीव समूह को लिखता, हिसाब करता और मिटा देता है। इसी प्रकार वारम्बार किया करता है ॥५४॥

टिप्पणी—ज्योतिषी भूमि पर अङ्क लिखकर गणित करता है कहीं

ंको का मरण, कहीं हरण करता हुआ अन्त में सब को मिटा देता है तदनुसार ही यह काल प्राणियों की उत्पत्ति, गणना और नाश किया करता है।

दोहा

कहत काल किल सकल बुध, ताकर यह व्यवहार।
उतपति थिति लय होत है, सकल तासु अनुहार॥५५॥

अर्थ—समस्त पण्डितों की यही सम्मति है कि जगत के सारे व्यवहार निश्चय ही कालाधीन हैं और इस संसार के उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय सब उसी के अनुकूल होते रहते हैं। अर्थात् काल पाकर ही सब कुछ होता है॥५५॥

दोहा

अंकुर किसलय दल विपुल, शाखा युत वर मूल।
फूलि फरत ऋतु अनुहरत, तुलसी सकल सतूल॥५६॥

अर्थ—तुलसी दास कहते हैं कि बीजों के अंकुर, पल्लव, अनेक पत्ते और डालें तथा उत्तमोत्तम मूल (कन्द) इत्यादि सभी वनस्पतियों में फूल और फलादि सब ऋतु अनुकूल ही लगते हैं, और समय पाकर ही सब का विस्तार होता है॥५६॥

दोहा

कहतब करतब सकल तेहि, ताहि रहित नहिं आन।
जानन मानन आन विधि, अनुमान अभिमान॥५७॥

अर्थ—पढ़ना पढ़ाना, वाद-विवादादि जो कुछ कथन और जप, योग यज्ञादि जो कुछ कर्म हैं वे सब कालाधीन हैं। उससे रहित कुछ नहीं है। इस बात को अपने अनुमान के अभिमानवश अन्य प्रकार न जानो और न मानो॥५७॥

दोहा

हानि लाभ जय बिधि बिजय , ज्ञान दान सनमान ।
खान पान शुचि रुचि अशुचि , तुलसी बिदित बिधान ॥५८॥
शालक पालक सम बिषम , रम भ्रम गम गति गान ।
अट घट लट नटनादि जट , तुलसी रहित न जान ॥५९॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि हानि, लाभ, जय, विजय, विधि, ज्ञान, दान, सम्मान, खानपान, शुचि, रुचि और अशौचादि जितने विधान हैं वे सब काल पाकर ही होते हैं अर्थात् ये सब कालाधीन हैं ॥५८॥

समय आने से ही कोई शालक (दुःखद), कोई पालक (सुखद) कोई सम (अनुकूल) और कोई विषम (प्रतिकूल) होते हैं। इसी प्रकार रमण, भ्रमण, गमन, गति, गान, अटन, (घूमना), घटन (शोभायमान होना), लटन (दुर्बल होना), नटन (नाचना) और जटन (आसक्त होना) इत्यादि जितने शुभाशुभ कर्म हैं वे सब काल पाकर ही होते हैं। उससे रहित इन्हें न समझो ॥५९॥

दोहा

कठिन करम करणी कथन , करता कारक काम ।
काय कष्ट कारण करम , होत काल सम साम ॥६०॥

अर्थ—कर्म की करणी अर्थात् गति का कथन करना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि वासना ही कर्म की करानेवाली है। कर्म इस शरीर को महान कष्ट देनेवाला है। पुनः काल के अनुसार ही उसका प्रभाव भी होता है ॥६०॥

टिप्पणी—श्रीकृष्ण भगवान ने गीता में कहा है—

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्रमोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥

कर्मणोह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥

अ० ४ श्लो० १६—१७

अर्थात् हे अर्जुन ! कर्म और अकर्म के निर्णय करने में बड़े-बड़े विद्वान भी भूल करते हैं। उसी कर्मकाण्ड के गूढ़तम रहस्य को मैं तुमसे कथन करूँगा जिसे जानकर तू अशुभ कर्मों से मुक्त हो जायगा ॥१६॥

कर्म की गति बड़ी ही गम्भीर है अत. कर्म विकर्म तथा अकर्म इन तीनों को जानना परमावश्यक है ॥१७॥

इन्हीं उपर्युक्त भावों को लेकर श्रीगोसाइंजी महाराज ने कहा है कि कर्म की गति का कथन बड़ा ही कठिन है क्योंकि उसमें वासना (इच्छा वा नीयत) ही प्रधान है। संसार में किसी को महदुत्कृष्ट कर्म करते देखते हैं तो लोग समझते हैं कि इस कर्म का फल कर्ता को उत्कृष्ट ही मिलेगा परन्तु सम्भव है कि उस कर्म की प्रवृति में कर्ता किसी नीच भाव से प्रेरित होकर आरूढ़ हुआ हो तो उसे उसकी वासना के अनुसार ही फल होगा। इस प्रकार वासनावश ही अधर्म में धर्म एवं धर्म में अधर्म का समावेश हो सकता है। फिर कहते हैं कि कर्म चाहे शुभ हो अथवा अशुभ, वे शरीर को अवश्य कष्ट देते हैं और कालानुकूल उनके फलाफल में भी अन्तर हुआ करता है।

दोहा

सबर आतमा बोध बर, सर बिन कबहुँ न होय।
तुलसी सरम बिहीन जे, ते सरतर नहिं सोय ॥६१॥

अर्थ—सब प्रकार के विषयों से रहित हुए बिना इस उत्कृष्ट आत्मा का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। परन्तु जो सरमविहीन अर्थात् भगवद्भक्ति से वञ्चित हैं वे अत्यन्त पवित्र (निर्दोष) हो भी नहीं सकते ॥६१॥

भावार्थ—कवि के कथन का भाव यह है कि ईश्वरोपासना का जिन्हें अवलम्ब नहीं वे निर्विषय नहीं हो सकते।

दोहा

चित रति बित व्यवहरित बिधि, अगम सुगम जय मीच।
धीर धरम धारण हरण, तुलसी परत न बीच ॥६२॥

अर्थ—सांसारिक मनुष्यो के आचरण के सम्बन्ध में कवि कहते हैं कि सब के चित में वित (द्रव्य) से प्रेम है और वे अर्थोपार्जन की विधि के ही व्यवहार में फँसे हैं। अत: संसार में उनके लिये विजय तो अगम परन्तु मृत्यु वा पराजय अत्यन्त सुगम है। धैर्य्य और धर्म के धारण से जय तथा इनके हरण से मृत्यु होती है। इसमें कोई अन्तर (व्यतिक्रम) नहीं पड़ता ॥६२॥

भावार्थ—लोभवश जो दिवारात्रि अर्थोपार्जन मे ही व्यस्त हैं उन्हें मुक्ति नहीं प्राप्त होती, प्रत्युत वे सदा जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहते हैं। जो लोग धैर्य्यादि धर्म के अङ्गों को धारण किये हुए हैं उन्हीं की तो जय और जो इनका अपहरण किया करते हैं वे पग-पग पर पद-दलित होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

दोहा

शब्द रूप विवरण बिशद, तासु योग भवनाम।
करता नृप बहु जाति तेहि, संज्ञा सब गुण धाम ॥६३॥

अर्थ—जब तक यह आत्मा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पञ्च तन्मात्राओ तथा इनके आश्रय स्थल आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी इनसे पृथक था तब तक अत्यन्त विशद अर्थात् निर्मल था। परन्तु इनके संयोग से संसार में आकर वह नाना प्रकार के नामों से उद्‌बोधित हुआ। इस कर्ता राजा स्वरूप आत्मा की ही अनेकों जातियाँ, गुण और संज्ञाएँ प्रसिद्ध हुईं ॥६३॥

दोहा

नाम जाति गुण देखि कै, भयो प्रबल उर भर्म।
तुलसी गुरु उपदेश बिनु, जानि सकै को मर्म ॥६४॥

अर्थ—अब संसार में इस आत्मा के नाना प्रकार के नाम, जाति और भिन्न-भिन्न गुणों को देखकर हृदय में प्रबल भ्रम उत्पन्न हो गया कि यह आत्मा मनुष्य, पशु, पक्षी, देवदत्त, यज्ञदत्त आदि भिन्न-भिन्न नाम और पृथक्-पृथक् जातिवाला है अथवा एक ही है, कुछ समझ में नहीं आता। तुलसीदास कहते हैं कि सच्चे गुरुओं के उपदेश बिना इस रहस्य का मर्म जानना कठिन है अर्थात् गुरु के उपदेश के बिना आत्मा के सच्चे स्वरूप का बोध नितान्त दुर्गम है ॥६४॥

दोहा

अपन कर्म बर मानि कै, आप बँधो सब कोय।
कारज रत करता भयो, आप न समुझत सोय ॥६५॥

अर्थ—अब कर्म-वासना की प्रबलता दर्शाते हैं कि सब कोई अभिमान वश अपने अपने कर्मों को श्रेष्ठ मानकर स्वयं उसमें आसक्त एवं बद्ध हो रहे हैं। यह जीवात्मा कर्मों का कर्ता होता हुआ कार्य में तत्पर रहा है परन्तु मोह की ऐसी प्रबलता है कि उस कर्म की गति को न समझ आप उसी में बद्ध हो जाता है ॥६५॥

भावार्थ—अपने ही कर्मों के कारण आप बन्धन में पड़ा हुआ यह आत्मा निश्शक्त हो रहा है।

दोहा

को करता कारण लखै, कारज अगम प्रभाव।
जो जहँ सो तहँ तर हरप, तुलसी सहज सुभाव ॥६६॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जो जीव जिस योनि में है वह वहीं सहज स्वभाव से अत्यन्त हर्षित और मस्त हो रहा है तब कर्ता और कारण (प्रकृति) तथा कर्म के दुर्गम प्रभाव का विचार कौन करे ? ॥६६॥

टिप्पणी—यह जीव ऐसा अज्ञानी है कि सुखाभास में ही परम आनन्दित हो रहा है। इसे न तो अपने स्वरूप का ही यथार्थ बोध है और न जगद्रचयिता परमात्मा का। अथच वह प्रकृति को ही समझता है।

दोहा

तुलसी बिनु गुरु को लखै, वर्त्तमान बिधि रीत।
कहु केहि कारण ते भयो, सूर उष्ण शशि शीत ॥६७॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जगत की वर्त्तमान दोनों रीतियों को (अर्थात् प्रकाश और अन्धकार, गर्मी और सर्दी एवं दिन और रात) बिना गुरु के उपदेश पाये कौन जानने में समर्थ है। सूर्य्य उष्ण तथा चन्द्रमा शीतल है इसका क्या कारण है ? ॥६७॥

भावार्थ—यहाँ पर कवि ने ईश्वर का अस्तित्व दर्शाया है। जिसने शीत, उष्ण और प्रकाश, अन्धकारादि दो भिन्न-भिन्न अवस्थाओं को आवश्यकतानुसार प्रगट किया। यदि जगत का कोई परम वैज्ञानिक रच-यिता न होता तो किसे सूझ थी जो सूर्य्य को उष्ण तथा चन्द्रमा को शीतमय बनाता इत्यादि। इन सब जगत की चातुर्य्यमय रचनाओं को देख कर निश्चय करना पड़ता है कि इस अखिल ब्रह्माण्ड का सिरजनहार कोई अवश्यमेव है।

दोहा

करता कारण कर्म ते, पर पर आतम ज्ञान।
होत न बिनु उपदेश गुरु, जो पट वेद पुरान ॥६८॥

अर्थ—कर्त्ता (जीव), कारण (कारण प्रकृति), और कर्म (कार्य्य

रूपी प्रकृति) इन तीनों के ज्ञान से परमात्मा का ज्ञान परे है। यदि षट् शास्त्र, चार वेद और अठारह पुराणों को भी पढ़ जाय तौ भी बिना गुरु के बतलाये, परमात्मा का बोध नहीं हो सकता ॥६८॥

दोहा

प्रथम ज्ञान समुझै नहीं, बिधि निषेध व्यवहार।
उचितानुचितै हेरि धरि, करतव करे सँभार ॥६९॥

अर्थ—यह जीव ऐसा मोहान्धकार में पड़ा है कि न तो कुछ ज्ञान की बातें समझता है और न सच्छास्त्रों के विधि और निषेधात्मक कर्मों को ही वर्तने जानता है। जब इन्हें कर्त्तव्याकर्तव्य का यथावत् बोध हो जाय तब सम्हलकर कर्तव्य का प्रतिपालन एवं अकर्तव्य का त्याग करे ॥६९॥

दोहा

जब मन महँ ठहराय बिधि, श्री गुरुवर परसाद।
एहि बिधि परमात्मा लखै, तुलसी मिटै बिषाद ॥७०॥

अर्थ—जब श्रीगुरुदेव की कृपा से जीव के मन में वेदादि सद्ग्रन्थों के विधि-वाक्य स्थिर हो जायँ और निषेधपरक कर्मों का उन्मूलन हो जाय तब इस प्रकार परमात्मा के इसे दर्शन हो और सारे क्लेश भी मिट जायँ ॥७०॥

दोहा

बरबस करत बिरोध हठि, होन चहत अंक हीन।
गहि गति बक बृक श्वान इव, तुलसी परम प्रवीन ॥७१॥

अर्थ—शुष्कवाद विवाद तथा बलात्कार हठपूर्वक संसार से विरोध करके दुःखहीन होना चाहते हैं और चतुरता तो ऐसी है कि बगुले, भेड़िये और कुत्ते की वृत्ति धारण कर ली है ॥७१॥

टिप्पणी—यहाँ पर कवि ने विषयी पुरुषों की गति दर्शायी है कि उत्तम कर्मों में तो प्रवृत नहीं होते केवल कोरी बकवाद से मुक्ति चाहते हैं। बगुले के समान दिखलाने के लिये पूजा-पाठ करते तथा ध्यान लगाते हैं। उनके अन्त'करण में नाना प्रकार की वैषयिक मलीनता भरी हुई है। भेड़िये के समान ये परहानि पहुँचाने में साहसी तथा बलवान एवं कुत्ते की नाईं लोलुप और शिश्न-परायण हैं।

दोहा

आक कर्म भेषज बिदित, लखत नहीं मतिहीन।
तुलसी शठ अक वश बिहठि, दिन दिन दीन मलीन ॥७२॥

अर्थ—वेदोक्त कर्म करने से ही मनुष्यो के दु.ख दूर हो सकते हैं अतः श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि उपर्युक्त दु.खी जनों के लिए कर्म एक प्रत्यक्ष औषधि है। परन्तु वे ऐसे बुद्धिहीन हो रहे हैं कि इस अमोघ औषधि को नहीं पहचानते। यही कारण है कि वे अनाचारी मूर्ख हठ-पूर्वक दिनोंदिन दीन, मलीन एवं दु खो के ही वशीभूत हुए जा रहे हैं ॥७२॥

दोहा

कर्त्ता ही ते कर्म युग, सो गुण दोष स्वरूप।
करत भोग करतब यथा, होय रङ्क किन भूप ॥७३॥

अर्थ—यह जीवात्मा ही कर्ता है जो शुभ और अशुभ इन दो प्रकार के कर्मों को किया करता है। इनमें शुभ कर्म तो गुणस्वरूप अथच अशुभ दोषस्वरूप हैं चाहे राजा हो अथवा रङ्क सभी अपने-अपने कर्मा-नुसार ही दु.ख-सुख का भोग करते हैं ॥७३॥

दोहा

बेद पुराण शास्त्रहु यतत, निज बुधिबल अनुमान।
निज निज करि करिहैं बहुरि, कह तुलसी परमान ॥७४॥

अर्थ—अपने बुद्धि-बल के अनुसार सभी लोग वेद, शास्त्र और पुराण पढ़ तो लेते हैं परन्तु तदनुसार वर्तते नहीं हैं। उनको बार-बार पढ़ कर भी अपनी-अपनी रुचि के अनुसार ही कर्म करते हैं। यह मुझ तुलसी दास ने प्रमाण अर्थात् सत्य कहा है ॥७४॥

टिप्पणी—दोहे के प्रथम चरण में १४ मात्राएँ हैं अत 'वेद' के एकार को ह्रस्व सा उच्चारण करना चाहिये।

दोहा

विविध प्रकार कथन करै, जाहि यथा अवमान।
तुलसी सुगुरु प्रसाद बल, कोउ कोउ कहत प्रमान ॥७५॥

अर्थ—"यह संसार क्या है?" इस सम्बन्ध में लोग अनेक प्रकार का अपने-अपने ज्ञान के अनुसार कथन किया करते हैं। परन्तु तुलसीदास कहते हैं कि यह सत्य है कि उत्तम गुरुओं की कृपा के बल से कोई-कोई मनुष्य ही इसके यथार्थ स्वरूप को मानते और जानते हैं ॥७५॥

दोहा

उर डर अति लघु होन की, भव लघु सुरति भुलानि।
स्वर्णलाहु लखि परत नहिं, लखत लोह की हानि ॥७६॥

अर्थ—इस संसार में मिथ्या मान-मर्य्यादादि का इतना अभिमान फैल गया है कि सब के हृदयों में यह भय लगा हुआ है कि हमें कोई छोटा न समझे और हमारी निन्दा न हो ऐसे-ऐसे भावों से प्रेरित होकर लोग विडम्बना में फँस गये और उन्हें इसका तो ध्यान ही भूल गया कि इस प्रकार हम वास्तव में लघु अर्थात् सङ्कुचित हुए जा रहे हैं। आत्मा की अधोगति पर तो विचार नहीं करते, केवल वाह्याडम्बर में सदा दृष्टि रखते हैं। यहाँ कवि कहते हैं कि इन अज्ञानियों की सोने की हानि पर तो दृष्टि नहीं, लोहे की ही हानि देखते हैं ॥७६॥

दोहा

नयन-दोष निज कहत नहिं , बिबिध बनावत बात ।
सहत जानि तुलसी बिपति , तदपि न नेकु लजात ॥७७॥

अर्थ—अपने भीतर के अज्ञानरूपी नेत्र-दोष को सद्‌गुरुरूपी वैद्य से तो कहते नहीं और जब कुकर्मरूपी गड्ढे में गिर जाते हैं तो लाज बचाने के लिए अनेक प्रकार की बातें बनाते और नाना प्रकार की विपत्तियों को सहन करते हैं तथापि तनिक लज्जित नहीं होते कि कुकर्मों के कारण ही तो हम यह दुःख भोग रहे हैं ॥७७॥

दोहा

करत चातुरी मोह बस , लखत न निज हित हान ।
शुक मर्कट इव गहत हठ , तुलसी परम सुजान ॥७८॥

अर्थ—अपने अज्ञानवश चतुरता करते हैं अर्थात् अनेक प्रकार की बातें बनाकर संसार के सामने अपनी चतुरता से अपने कुकर्मों को छिपाना चाहते हैं परन्तु इसमें अपनी भलाई की हानि का विचार नहीं करते कि लोग हमें अच्छा ही समझ गये तो इस में हमारा लाभ क्या हुआ ? हम वास्तव में तो सर्वव्यापी परमात्मा के सामने दोषी ही रहे। तुलसीदास कहते हैं कि ये ऐसे परम बुद्धिमान हैं कि शुक तथा मर्कट की नाईं हठ ग्रहण कर आप से आप बन्धन में फँसे हुए हैं, जिससे छूटना उनके लिए अति कठिन हो रहा है ॥७८॥

टिप्पणी—बहेलिये दो खूँटी भूमि में गाड़ उनमें रस्सी बाँध देते हैं और रस्सी के मध्य भाग में एक बालिश्त के लगभग लम्बी लकड़ी लगा उसके सिरे पर कोई खाने की चीज लपेट देते हैं जिसे देखकर सुग्गे ज्योंही आकर बैठते हैं और चोंच में लकड़ी पकड़ते हैं त्यों ही वह लकड़ी भारी होने के कारण उलट जाती है तथा सुग्गे ऊर्ध्व मुख लटक जाते हैं।

उस दशा में उनसे यह भी नहीं बन पड़ता कि एकढी छोड़कर उड़ जायँ, इसी बीच बहेलिये आकर पकड़ लेते हैं और पींजरे में डाल देते हैं।

एक तंग मुँह के बर्त्तन में लड्डू रखकर भूमि में गाड़ देते हैं और वानर आकर उस बर्त्तन में हाथ लगाते हैं और जब मुट्ठी में लड्डू भर कर हाथ निकालना चाहते हैं तब वह नहीं निकलता और उस समय वानर को यह भी सूझ नहीं होती कि लड्डू छोड़, खाली हाथ निकाल कर भाग जाय। इस प्रकार बहेलिया आकर उसे पकड़ लेता है।

उपर्युक्त दोनों ही घटनाओं से यह सिद्ध है कि शुक और मर्कट आप से आप बन्धन में पड़ते हैं और उससे मुक्त होने में असमर्थ हो जाते हैं।

दोहा

दुखिया सकल प्रकार शठ, समुझि परत तेहि नाहिं।
लखत न कण्टक मीन जिमि, अशन भखत भ्रम नाहिं॥७९॥

अर्थ—विषयो के सुखाभास में लीन हुए शठ, वास्तव में सब प्रकार दुखी हैं परन्तु उन्हें यह बात इसी प्रकार समझ मे नहीं आती जैसे मछलियाँ बंशी में लगे हुए काँटे की ओर न देखकर उसमें लगे चारे को भ्रमहीन होकर सुखपूर्वक खाने जाती हैं। परन्तु जब काँटा गले में चुभ जाता है तब उन्हें जान पड़ता है॥७९॥

भावार्थ—विषय वास्तव में दुःखद है।

दोहा

तुलसी निज मन कामना, चहत शून्य कहँ सेय।
वचन गाय सब के विविध, कहहु पयस केहि देय॥८०॥

अर्थ—लोग वेदादि सद्ग्रन्थो में प्रतिपादित शुभ कर्मों का अनुष्ठान करना तो चाहते नहीं उलटे केवल कोरी बकवाद (अर्थात् शून्य) की सेवा करके सब मन कामनाओं की पूर्त्ति चाहते हैं। भला जो सच्ची गाय न

रखकर वचनमात्र की गाय पाले तो ऐसी मौखिक गाय किसे दूध देती है ? ॥८०॥

भावार्थ—जब तक शुभ कर्मों का आचरण नहीं किया जाता तब तक कथन वा ज्ञानमात्र से कोई लाभ नहीं मिल सकता।

दोहा

बातहि बातहि बनि परै, बातहि बात नसाय।
बातहि आदिहि दीप भव, बातहि अन्त बताय ॥८१॥

अर्थ—जो आवश्यक काम की बातें की जायें तब तो बातो ही से अनेक काम बन जाते हैं। और अनावश्यक बुरी-बुरी बातों से मनुष्य की हानि भी हो जाती है। जैसे बात (वायु) के कारण ही प्रथम दीपक जलाया जाता है अर्थात् वायु न हो तो दीपक जलाना असम्भव है, परन्तु उसी बात (वायु) की अधिकता से अन्त होकर दीपक बुझ जाता है ॥८१॥

भावार्थ—बहुत ही सोच विचारकर आवश्यकतानुसार बात का प्रयोग करना चाहिये।

टिप्पणी—पहले दो चरणों में बात शब्द वार्त्ता अर्थ में देकर दूसरे दोनों चरणों में वायु अर्थ में प्रयुक्त किया गया है अतः यहाँ लाटानुप्रास है।

दोहा

बातहि ते बनि आवई, बातहि ते बनि जात।
बातहि ते बरबर मिलत, बातहि ते बौरात ॥८२॥

अर्थ—बुद्धिमत्तायुक्त बात बोलने से ही कई काम बन जाते हैं और उलटी-पुलटी बातों से (बनि अर्थात्) बना हुआ काम भी (जात अर्थात्) बिगड़ जाता है। बड़ों के सामने नम्रतायुक्त बात बोलने से उत्तम वरदान मिलता है और बात-दोष से ही मनुष्य उन्माद-ग्रस्त हो जाता है ॥८२॥

दोहा

बात बिना अतिशय विकल, बातहि ते हरखात।
बनत बात बर बात ते, करत बात बर घात ॥८३॥

अर्थ—बात ऐसी चीज है कि सज्जन लोग जिसे जो कह देते हैं उसकी जब तक पूर्त्ति नहीं होती तब तक वे व्याकुल रहते हैं और उसकी पूर्त्ति हो जाने पर प्रसन्न होते हैं। अच्छी बातों से बात बन जाती है अर्थात् बिगड़ा काम भी सुधर जाता है और कहीं बात ही भली भाँति घात कर बैठती है अर्थात् सत्यानाश कर डालती है ॥८३॥

दोहा

तुलसी जाने बात बिन, बिगरत हर इक बात।
अनजाने दुख बात के, जानि परत कुशलात ॥८४॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि बिना जाने-बूझे बात करने से हर एक काम बिगड़ जाता है। बात नहीं जानने में दुख और जान लेने से कुशल ही कुशल है ॥८४॥

दोहा

सदा भजन गुरु साधु द्विज, जीव दया सम जान।
सुखद सुनयरत सत्य व्रत, स्वर्ग सप्त सोपान ॥८६॥

अर्थ—सर्वदा भगवद्भजन[1] करना, गुरु[2], साधु[3] और ब्राह्मणों[4] की सेवा में तत्पर रहना। सब जीवों को एक[5] ही दया दृष्टि से देखना, सुखदायक नीति[6]-मार्ग पर चलना और सत्य[7] व्रत का अनुष्ठान ये स्वर्ग के सात सोपान (सीढ़ी) हैं ॥८६॥

दोहा

वंचक बिधिरत नर अनय, बिधि हिंसा अति लीन।
तुलसी जग महँ विदित बर, नरक निसेनी तीन ॥८७॥

अर्थ—वञ्चक-विधिरत अर्थात् ठगाई में तत्पर रहना, अनीति-पथ पर चलना और हिंसाविधि अर्थात् जीवों को दुःख देने में लीन रहना ये तीनो कर्म नरक की अटूट सीढ़ी हैं। तुलसीदास कहते हैं कि यह बात जगत में सब को विदित है ॥८७॥

टिप्पणी—वञ्चक के स्थान में वञ्चन पाठ होता तो मेरी समझ में अच्छा था। प्रथम चरण में 'नर' शब्द देने का कोई स्पष्ट भाव नहीं विदित होता। यदि 'नर' के स्थान में 'पथ' पाठ होता तो अर्थ में सुविधा होती। इस दोहे का इस प्रकार भी अर्थ हो सकता है—

(१) ठगाई, (२) वेद विधि प्रतिपादक वाक्यो में तत्पर हुए पुरुषों के साथ अनीति और (३) हिंसा ये तीनों नरक की सीढ़ी हैं।

दोहा

जे नर जग गुण दोष मय, तुलसी बदत बिचार।
कबहुँ सुखी कबहूँ दुखित, उदय अस्त व्यवहार ॥८८॥

अर्थ—तुलसीदास विचारपूर्वक कहते हैं कि पापी तो नरक जाते हैं और पुण्यात्मा स्वर्ग। परन्तु जो मनुष्य कुछ शुभ और कुछ अशुभ कर्म करते हैं अर्थात् जिनके चरित्र गुण और दोषमय हैं वे संसार में कभी सुखी और कभी दुःखी होते रहते हैं। अर्थात् जब उनके शुभ कर्म उदित होते हैं तब सुखी और जब अपकर्म उदित होते हैं तब दुःखी रहा करते हैं। जिस प्रकार सूर्योदय होने से संसार सुखी और सूर्यास्तकाल में दुखी रहता है ॥८८॥

दोहा

कारज जग के युगल तम, काल अचल बलवान।
त्रिविध विबलते ते हठहिं, तुलसी कहहिं प्रमान ॥८९॥

अर्थ—कर्म दो प्रकार के होते हैं (१) अशुभ और (२) शुभ। तुलसीदास प्रमाणपूर्वक कहते हैं कि ये दोनों प्रकार के कर्म जीवात्मा को अन्धकार में ले जानेवाले हैं। अशुभ कर्म तो प्रत्यक्ष ही पापरूप होने से अधःपात के कारण हैं, किन्तु शुभ कर्म भी यदि सकाम हों तो वे भी बन्धन के ही कारण होते हैं। तिस पर काल (समय) अटल और बलवाला है। उसका प्रभाव भी कर्त्ता के ऊपर बिना पड़े नहीं रह सकता। अतः वे कर्म हठपूर्वक कालानुसार सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के प्रभाव से विशेष बली हो जाते हैं ॥८९॥

भावार्थ—कवि के कथन का भाव यह है कि कर्त्ता के ऊपर कालादि का प्रभाव भी अवश्य पड़ता है।

दोहा

अनुभव अमल अनूप गुरु, कछुक शास्त्र गति होइ।
बचै काल क्रम दोष ते, कहहिं सुबुध सब कोइ ॥९०॥

अर्थ—जिसका अनुभव निर्मल हो, उत्तम गुरु मिल जायँ, शास्त्रादि

में भी कुछ-कुछ प्रवेश हो और जो समय के प्रवाह में न बहनेवाला हो उसी को सब कोई सुन्दर बुद्धिमान मानते हैं ॥९०॥

दोहा

सब बिधि पूरण धाम बर, राम अपर नहिं आन।
जाकी कृपा कटाक्ष ते, होत हिये दृढ़ ज्ञान ॥९१॥

अर्थ—जिसकी कृपा-दृष्टि से भक्तो के हृदय में दृढ़ ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, जो सम्यक् प्रकार पूर्ण काम और पवित्र धाम वाले हैं। ऐसे श्रीरघुनाथजी से परे अन्य कोई नहीं। अर्थात् वे ही सब उपास्य देवों में श्रेष्ठ हैं ॥९१॥

दोहा

सो स्वामी सो तर सखा, सो बर सुख दातार।
तात मात आपद हरण, सो असमय आधार ॥९२॥

अर्थ—वही श्रीरामचन्द्रजी स्वामी, अत्यन्त मित्र, पवित्र सुख देने-वाले, पिता, माता, विपत्ति विनाशक अथच कुसमय के अवलम्ब हैं ॥९२॥

दोहा

सुखद दुखद कारज कठिन, जानत को तेहि नाहि।
जानेहु पर बिनु गुरु कृपा, करतब बनत न काहि ॥९३॥

अर्थ—अशुभ कर्म दुखद तथा शुभ कर्म सुखद होते हैं। इस बात को कौन नहीं जानता। परन्तु स्वयं त्याग और संग्रह कठिन है। सब कुछ जानते हुए भी सद्गुरुओ की कृपा के बिना शुभ कर्मों का अनुष्ठान किसी से नहीं होता ॥९३॥

दोहा

तुलसी सकल प्रधान है, बेद विदित सुखधाम।
तामहँ समुझब कठिन अति, युगल भेद गुणनाम ॥९४॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि नाम ही सब में प्रधान है, यह बात वेद विदित है कि नाम सुख का धाम है। तथापि नाम की विवेचना अत्यन्त कठिन है। गुण-दोष के विचार से नाम के दो भेद हैं ॥९४॥

टिप्पणी—'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में कविवर ने बड़ी-बड़ी मनोहारिणी युक्तियों तथा रोचक कविता द्वारा नाम माहात्म्य वर्णन किया है जिसे रामायण के प्रेमी जन जानते ही हैं। एक ही पदार्थ है जो कभी दु:खद नाम पाता है और कभी सुखद कहलाता है। इससे पदार्थ में कोई विभिन्नता नहीं आती। ज्वरकाल में घृत दु:खद कहलाता है परन्तु नीरोगावस्था में उसका सेवन सुखद एवं पौष्टिक है। अब यह कहना अत्यन्त कठिन है कि घृत की दु:खद संज्ञा है वा सुखद। अभिप्राय यह है कि देश कालानुसार बुद्धिमत्ता के साथ प्रयोग की हुई वस्तु सुखद एवं तद्विरुद्ध होने से दु:खद हो जाती है। संसार के सब पदार्थों में कोई न कोई गुण अवश्य है परन्तु हम उनके उलटे प्रयोग कर पछताते हैं और उसे बुरे शब्दों में पुकारते हैं। वास्तव में नाम-भेद हमारे विविध प्रकार के प्रयोगों का परिणाममात्र है।

दोहा

नाम कहत सुख होत है, नाम कहत दुख जात।
नाम कहत सुख जात दुरि, नाम कहत दुख खात ॥९५॥

अर्थ—श्रीराम-नाम के कहने से सुख होता है, किन्हीं के दु:खों का नाश होता है, किन्ही का सुख ही नष्ट हो जाता है और नाम ही कहने से किन्ही को दु:ख उत्पन्न होकर खागया ॥९५॥

टिप्पणी—शिव, नारदादि नाम का स्मरण कर सुखी हुए। स्मरण से ही आर्त्त भक्तों के दु:ख दूर हुए। कैकेयी ने भी नाम ही उच्चारण किया कि उसका सर्वस्व सुख नष्ट हो गया। पुनश्च राजा दशरथ को नाम-स्मरण खा गया।

दोहा

नाम कहत बैकुण्ठ सुख, नाम कहत अघ खान।
तुलसी ताते उर समुझि, करहु नाम पहिचान ॥९६॥

अर्थ—नामोच्चारणमात्र से अजामिलादि को वैकुण्ठ का सुख हुआ और जो स्वार्थी नामोच्चारण द्वारा मारणादि प्रयोग करते हैं उन्हें अत्यन्त पाप होता है। तुलसीदास कहते हैं कि हृदय में समझ-विचारकर नाम की पहचान करो ॥९६॥

दोहा

चारो चौदह अष्टदश, रस समुझब भरपूर।
नाम-भेद समुझे बिना, सकल समुझ महँ धूर ॥९७॥

अर्थ—यदि नाम के भेदों को न समझा और चारो वेदों, चौदह विद्याओं तथा अट्ठारह पुराणो के रहस्य को पूर्णतया समझ गये तो इन सब समझों पर धूल है ॥९७॥

टिप्पणी—यहाँ पर कवि की अतिशयोक्तिमात्र है। वास्तव में जो मनुष्य चारों वेदों, चौदह विद्याओ तथा अष्टादश पुराणों तक के मर्म जानता है, उसके लिये 'नाम-भेद' जानना कौन सी बड़ी बात है ?

दोहा

बार दिवस निसि मास सित, असित बरस परमान।
उत्तर दछिण आश रवि, भेद सकल महँ जान ॥९८॥

अर्थ—चौबीस घण्टे का पूरा दिन कहलाता है जैसे रविवार, सोमवारादि। इन दिनों में कई तो शुभ और कई अशुभ नामो से पुकारे जाते हैं फिर भी उसमें दिन और रात का झझट लगा है। लोग दिन को शुभ तथा रात्रि को अशुभ समझते हैं। महीने बारह हैं। इनमें कई

शुभ और कई अशुभ समझे जाते हैं। उन महीनो में भी शुक्ल पक्ष शुभ और कृष्ण पक्ष अशुभ समझा जाता है। पुन वर्ष में भी कोई सम्वत उत्तम और कोई निकृष्ट तथा उनके अन्दर भी सूर्य का उत्तरायन काल शुभ और दक्षिणायन अशुभ समझा जाता है। इसी प्रकार सब पदार्थों में शुभाशुभ का भेद जानो ॥९८॥

टिप्पणी—कवि का आशय यह है कि सभी पदार्थ देश कालानुसार शुभ और अशुभ नामों से पुकारे जाते हैं।

दोहा

कर्म शुभाशुभ मित्र अरि, रोदन हँसन बखान।
और भेद अति अमित है, कहँ लगि कहिय प्रमान ॥९९॥

अर्थ—कर्म एक है और शुभ तथा अशुभ उसके भेद हैं। सम्बन्ध एक है और मित्र तथा शत्रु उसके भेद हैं। इसी प्रकार अवस्था एक है परन्तु रोना और हँसना उसके भेद हैं। कवि कहता है कि कहाँ तक वर्णन किया जाय संसार के समस्त पदार्थों के अत्यन्त असख्य भेद हैं ॥९९॥

टिप्पणी—इस दोहे का इस प्रकार भी अर्थ हो सकता है—कर्म ही शुभ और अशुभ फल देता है, मित्र और शत्रु पैदा कराता है एवं जीव को रुलाता और हँसाता है।

दोहा

जहँ लगि जग देखब सुनब, समुझब कहब सुरीत।
भेद रहित कछु है नहीं, तुलसी बदहिं विनीत ॥१००॥

अर्थ—जहाँ तक संसार में देखने सुनने समझने और कहने की पहुँच है अर्थात् जहाँ तक नेत्र, कर्ण, मन और रसना की गति है, वहाँ तक भेदरहित कुछ भी नहीं है अर्थात् सभी पदार्थ भेद सहित हैं। यह मुझ तुलसीदास ने नम्रता पूर्वक कहा है ॥१००॥

दोहा

भेद याहिविधि नाम महँ, बिनुगुरु जान न कोय।
तुलसी कहहिं बिनीत बर, जो बिरचि शिव होय ॥१०१॥

अर्थ—तुलसीदास नम्रतापूर्वक यह नीति कहते हैं कि ऊपर लिखे हुए नामो के भेदों की नाईं श्रीराम-नाम के भी इसी प्रकार अनेक भेद हैं जिनका यथावत बोध विना गुरु की कृपा के औरों की कौन कहे ब्रह्मा और शिव जैसे श्रेष्ठो को नहीं हो सकता ॥१०१॥

श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदास विरचितायां सप्तशतिकायां ज्ञान सिद्धान्त योगो नाम षष्ठः सर्गः श्रीमद्रामचन्द्रद्विवेदि रचित सुबोधिनी टीका युक्तः समाप्तः

षष्ठ सर्ग दोहान के, भयो पूर्ण यह अर्थ।
गुरु गमते लखि पाइहै, श्रीपति ज्ञान समर्थ ॥
वेद शास्त्र उपनिषद शुचि, गीता सार सम्हार।
कियो रुचिर तुलसी ललित, भाषा माँहि प्रचार ॥
सुनि लहि हैं मुद मोद कवि, सज्जन सन्त महान।
चलत अलय अरु अविधि पथ, तेउ पाइहिं कल्यान ॥

सप्तम सर्ग

अथ सप्तमस्सर्गः सार्थः प्रारभ्यते

दोहा

तिनहिं पढ़े तिनहीं सुने, तिनहीं सुमति प्रकाश।
जिन आशा पाछे करी, गही अलम् नीराश ॥ १ ॥

अर्थ—गोसाईं जी कहते हैं कि वही मनुष्य संसार में पढ़ा हुआ और वेद-शास्त्रों के उपदेशों को सुना हुआ है तथा समझो कि उसीके हृदय में सुबुद्धि का प्रकाश है जिसने सांसारिक आशाओं से मुख मोड़ लिया है और संसार से पूर्ण नैराश्य अर्थात् अनिच्छा धारण कर ली है ॥१॥

दोहा

तब लगि योगी जगत-गुरु, जब लगि रहा निरास।
जब आशा मन में जगी, जग गुरु योगी दास ॥ २ ॥

अर्थ—मनुष्य जब तक संसार से निराश अर्थात् निष्काम रहता है तभी तक वह योगी और जद्गुरु के समान पूजित और प्रतिष्ठित होता है। जहाँ हृदय में वासना अथवा लोभ का उदय हुआ वहीं स्थिति बदल जाती है अर्थात् जगत ही गुरु बन जाता है और योगीजी को दास बनना पड़ता है ॥२॥

दोहा

हित पुनीत स्वारथ सबहि, अहित अशुचि बिन चाड़।
निज मुख माणिक सम दसन, भूमि परत भो हाड़ ॥ ३ ॥

अर्थ—जिस पदार्थ से जब तक मनुष्य का स्वार्थ सधता है तब तक वह पदार्थ उसके लिये हित और पवित्र है। बिना चाड (आवश्यकता) के वही पदार्थ अहित और अपवित्र हो जाता है। प्रत्यक्ष देखिये कि दाँत जब तक मनुष्य के मुख में है तब तक तो मोती के समान उसका मूल्य समझा जाता है परन्तु ज्योंही टूटकर पृथिवी पर गिरा त्योंही हड्डी समझा जाता है ॥३॥

दोहा

निज गुण घटत न नाग नग, हरषि न पहिरत कोल।
गुंजा प्रभु भूषण धरे, ताते बढ़े न मोल ॥ ४ ॥

अर्थ—यदि कोल भीलादि जंगली मनुष्य प्रसन्न होकर गज-मुक्ता नहीं पहनते तो इसमें उस (गज-मुक्ता) का कोई निज गुण घट नहीं जाता। इसी प्रकार श्रीकृष्ण महाराज गुंजा (घुंघची) की माला धारण करते थे परन्तु इससे उस (गुंजा) का मूल्य नहीं बढ़ गया। अर्थात् जिसमें जो गुण है वही रहता है ॥४॥

दोहा

देइ सुमन करि बास तिल, परिहरि खरि रस लेत।
स्वारथ हित भूतल भरे, मन मेचक तन स्वेत ॥ ५ ॥

अर्थ—गोस्वामीजी कहते हैं कि संसार बड़ा ही स्वार्थी है, देखो, लोग तिल को अनेक प्रकार के सुगंधित फूलों से बासते हैं। फिर उसे कोल्हू में डालकर पेरते हैं। इस प्रकार रस अर्थात् तेल को लेकर नीरस

रूठी को छोड़ देते हैं। इसी प्रकार के स्वार्थ-प्रेमियों से पृथिवी भरी पड़ी है। ऐसे लोग ऊपरी शरीर से अत्यन्त श्वेत अर्थात् स्वच्छ दिखाई देते हैं परन्तु उनके मन काले होते हैं ॥५॥

भावार्थ—कवि के कहने का भाव यह है कि इस संसार में बहुतेरे धर्मध्वजी और वैडालव्रती मनुष्य हजारों आडम्बरों से सीधे-सादे लोगों को अपने दिखावे में फँसाते हैं। जब उनसे पूरा लाभ निकाल लेते हैं और धनादि का पूर्ण अपहरण कर लेते हैं तब निकम्मा बनाकर उन्हें छोड़ देते हैं और फिर पूछते तक नहीं। अतः ऐसे आडम्बरवालों से सदा सावधान रहना चाहिये।

दोहा

अँसुवन पथिक निरास ते, तट भुइँ सजल स्वरूप।
तुलसी किन वंचे नहीं, इन मरुथल के कूप ॥ ६ ॥

टिप्पणी—मरुस्थल देश में बहुतेरे कूप खोदे जाते हैं, पर जल सब में नहीं निकलता अथवा निकला भी तो ग्रीष्म-ऋतु में प्राय कूपों के जल सूख जाते हैं। प्यासे पथिक दूर से उन कूपों के तट पर जाते हैं पर जब जल नहीं मिलता तो निराश होकर उस कूप तट पर दुःख के आँसू टपकाकर चलते बनते हैं। जब कोई प्यासा हुआ अन्य पथिक उसी कूप पर पहुँचा तो उसने तट पर गिरे हुए उन अश्रु बिन्दुओं को जल के बिन्दु समझा और बड़ी उत्सुकता से पानी निकालना चाहा, पर उसमें पानी है कहाँ जो मिले? नितान्त वह भी रो-पीटकर चल देता है।

अर्थ—गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि निराश हुए पथिकों के आँसुओं से जिनके किनारे की भूमि सजल स्वरूप प्रतीत होती है इन मरुदेश के कूपों से संसार में वह कौन मनुष्य है जो वञ्चित न हुआ? अर्थात् नहीं ठगा गया ॥६॥

भावार्थ—यह असार संसार ही मरुस्थल देश के समान है जिसमें

मनुष्य नाना प्रकार की कामनाएँ करता रहता है, यही जलहीन कूप के तुल्य है। किसी की कामना यहाँ पूरी नहीं हुई। सब हाय-हाय करते मर गये। पर यह सब देखते हुए भी जगत के मनुष्य शिक्षा ग्रहण नहीं करते और नित्य नवीन प्रलोभनों, वासनाओ एवं कामनाओं के वशीभूत होकर अपने जीवन नष्ट करते और दु ख के गर्त में गिरते हैं। फलतः ससार की आशाओ का परित्याग करना ही सुख का कारण है।

दोहा

तुलसी मित्र महा सुखद, सबहिं मित्र की चाह।
निकट भये बिलसत सुखप, एक छपाकर छाड़॥ ७॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मित्र अत्यन्त सुखदायी होते हैं अत. सब कोई मित्र की चाहना करते हैं। एक छपाकर (चन्द्रमा) को छोड़कर अन्य सब कोई अपने मित्र के समीप जाते हैं और सुख पाते हैं॥७॥

टिप्पणी—अमावास्या के दिन चन्द्रमा अपने मित्र (सूर्य) के साथ एक ही राशि पर आकर क्षीण हो जाता है अर्थात् ज्योतिहीन होने के कारण जगत में अपना प्रकाश नहीं फैला सकता है॥७॥

दोहा

मित्र कोप बरतर सुखद, अनहित मृदुल कराल।
द्रुमदल शिशिर सुखात सब, सह निदाघ अति लाल॥ ८॥

अर्थ—मित्र का क्रोध भी अत्यन्त श्रेष्ठ और सुखदायी होता है परन्तु शत्रु की मृदुता दु खद होती है। प्रत्यक्ष देख लीजिए शिशिर-ऋतु अत्यन्त मृदु होती है परन्तु उसमें पेड़ो के सब पत्ते पीले-पीले होकर सूख जाते हैं और पतझड़ होकर सब गिर जाते हैं पर तीखी ग्रीष्म-ऋतु में सभी पेड़ो के पत्ते अत्यन्त लाल-लाल और सुहावने हो उठते हैं॥८॥

भावार्थ—कवि के कहने का भाव यह है कि मित्र का क्रोध सुधार के सद्भाव से होता है अत उसका परिणाम सुखद होता है। तद्विपरीत शत्रु का मृदु-व्यवहार भी दुर्भाव से प्रेरित होकर होता है अतएव वह दुःखमय परिणाम उपस्थित करता है।

दोहा

खल नर गुण मानै नहीं, मेटहिं दाता ओप।
जिमि जल तुलसी देत रवि, जलद करत तेहि लोप॥ ९॥

अर्थ—दुष्ट मनुष्य किये हुए उपकार का गुण नहीं मानते प्रत्युत दानी के ओप (प्रकाश और सुयश) का ही लोप करते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि सूर्य्य अपनी किरणों से जल लेकर आकाशस्थ जलद (मेघ) को देता है पर वही मेघ अत्यन्त घनीभूत होकर जब घटारूप में परिणत होता है तो सूर्य के प्रकाश का ही लोप करके जगत में अन्धकार फैला देता है॥९॥

दोहा

बरखत हरखत लोग सब, करखत लखत न कोय।
तुलसी भूपति भानु सम, प्रजा भाग बस होय॥१०॥
माली भानु कृशानु सम, नीति निपुण महिपाल।
प्रजा भाग बश होहिंगे, कबहुं कबहुं कलिकाल॥११॥

अर्थ—दोहों में गोस्वामीजी राजनीति कथन करते हैं। कहते हैं कि जब वृष्टि होती है तो सब लोग प्रसन्न हो उठते हैं, परन्तु जब सूर्य अपनी प्रखर किरणों से पृथिवी के जलाशयों से जल को भाफ बनाकर ऊपर खींचता है तो इस क्रिया को कोई नहीं देखता। तुलसीदासजी कहते हैं कि इसी प्रकार सूर्य के समान गुण रखनेवाले राजा कभी-कभी प्रजा के भाग्यवश ही मिलते हैं॥१०॥

माळी, सूर्य और अग्नि के समान नीति-निपुण राजा इस कलियुग में प्रजा के भाग्यवश कभी-कभी मिलेंगे ॥११॥

टिप्पणी—राजा में माली, सूर्य और अग्नि के गुण होने चाहियें। जिस प्रकार माली अपने उद्यान के पौधों को सदा जल-सिञ्चन और निरावनादि क्रियाओं के द्वारा हरा-भरा रखकर उन्हें पल्लवित, पुष्पित और फलित बनाता है तदनुसार ही राजा का धर्म है कि वह अपनी प्रजाओं के अभ्युदय के लिये नाना प्रकार के अनुष्ठान करता रहे। राजा में दूसरा गुण सूर्य का होना चाहिये। जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से पृथिवी के समुद्रों, नदियों, सरवरों और अन्यान्य जलाशयों से अत्यन्त गुप्त एवं सुगम रीति से जल को वाष्प बनाकर ऊपर ले जाता है। इस क्रिया को कोई नहीं देखता। पर जब उसी वाष्प से मेघ बनकर जल की मूसलाधार वृष्टि होती है तो सारा जगत तृप्त और प्रसन्न हो जाता है अथच सारी वसुन्धरा जलाप्लावित एवं जल निमग्न हो उठती है। उसी प्रकार राजा का भी धर्म है कि वह प्रजा वर्ग से थोड़ा-थोड़ा मृदु उपायों के द्वारा भिन्न-भिन्न विभागों से कर (tax) उठाकर जमा करता रहे और उस द्रव्य से प्रजा वर्ग की उन्नति के लिये यत्र-तत्र विद्यालय, औषधालय, पुस्तकालय, और कला-कौशल के शिक्षणालय स्थापित कर सुख-सामग्री का सम्पादन करता रहे। राजा में तीसरा गुण अग्नि का होना चाहिये। अग्नि से ही प्राणी मात्र का जीवन, रक्षण और पोषण होता है पर यदि कोई उसका कुप्रयोग करे तो अग्नि उसे भस्मसात कर देता है उसी प्रकार राज-सत्ता ऐसी नियमित, संगठित एवं सुव्यवस्थित होनी चाहिये कि जिससे प्रजा वर्ग की ठीक-ठीक उन्नति हो और यदि कोई आततायियों, अनाचारियों अथवा राज विद्रोहियों का दल संगठित होकर किंवा कोई व्यक्ति विशेष ही अन्यथा कर्म करना चाहे तो राज-सत्ता ऐसी होनी चाहिये जो अपने विरोधियों को यथोचित दण्ड दे सके। गोस्वामी तुलसी

दासजी कहते हैं कि माली के समान पालन, सूर्य के समान शोषण और वर्षण तथा अग्नि के समान दाहन का गुण राजा में होना चाहिये।

दोहा

समय परे सुपुरुष नरन, लघु करि गनय नकोय।
नाजुक पीपर बीज सम, बचै तो तरुवर होय ॥१२॥

अर्थ—उत्तम पुरुषों के ऊपर जब कुसमय आवे तो भी उन्हे छोटा नहीं समझना चाहिये। प्रत्यक्ष देख लीजिये पीपर का बीज बड़ा ही नाजुक होता है, परन्तु यदि आपदाओं से बच जाय तो समय पाकर उसी से विशाल वृक्ष उत्पन्न होता है ॥१२॥

दोहा

बड़े रामरत जगत में, कै परहित चित जाहि।
प्रेमपैज निबही जिन्है, बड़ो सो सबही चाहि ॥१३॥

अर्थ—जगत में वे पुरुष बड़े हैं जो ईश्वर की भक्ति में लीन हैं। जिनका चित्त परोपकार में रत है वे उनसे (राम भक्तों से) भी बड़े हैं। संसार में जिनकी प्रेम की प्रतिज्ञा निभ गयी वे सब की दृष्टि में बड़े हैं ॥१३॥

दोहा

तुलसी सन्तन ते सुनै, सन्तत यहै विचार।
तन धन चञ्चल अचल जग, युग युग पर उपकार ॥१४॥

अर्थ—तुलसीदास जी कहते हैं की सन्तो के मुख से सर्वदा यही विचार सुनते आये हैं कि यह शरीर और धन चञ्चल अर्थात् नश्वर है और इस संसार में प्रत्येक युग में उपकार ही अचल रहा है ॥१४॥

दोहा

ऊँचहि आपद बिभव बर, नीचहि दत्त न होय।
हानि वृद्धि द्विजराज कहँ, नहिं तारागण कोय ॥१५॥

अर्थ—उत्तम ऐश्वर्य और महती आपदायें महान् पुरुषों पर ही आया करती हैं। जो नीच पुरुष हैं उन्हें किसी के देने से भी आपत्ति और विभव नहीं होता। प्रत्यक्ष देख लीजिये हानि और वृद्धि का क्रम चन्द्रमा में ही पाया जाता है किसी तारा में नहीं ॥१५॥

दोहा

बड़े रतहिं लघु के गुणहिं, तुलसी लघुहिं न हेत।
गुञ्जा ते मुक्ता अरुण, गुञ्जा होत न श्वेत ॥१६॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि महापुरुष छोटे मनुष्यो के गुणों पर मुग्ध हो जाते हैं परन्तु छोटे मनुष्यों पर महापुरुषों का प्रभाव नहीं पड़ता। गुञ्जा और मोती को एक स्थान पर रखिये तो प्रत्यक्ष देख पड़ेगा कि मोती तो गुञ्जा के रङ्ग से रञ्जित होकर लाल हो जाता है परन्तु मोती के प्रभाव से गुञ्जा श्वेत नहीं होती ॥१६॥

दोहा

होहिं बड़े लघु समय सह, तौ लघु सकहिं न काढ़ि।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते बाढ़ि ॥१७॥

अर्थ—महापुरुष काल-चक्र के फेर से कभी-कभी तुच्छ से प्रतीत होते हैं परन्तु उस दशा में भी छोटे मनुष्य उनकी आपत्तियों को नहीं हटा सकते। क्योंकि वे (महापुरुष) छोटे होने पर भी लघु मनुष्यों से तो बड़े ही रहते हैं। देखिये द्वितीया, तृतीया और चतुर्थी इत्यादि तिथियों का चन्द्रमा दुर्बल और टेढ़ा होने पर भी ताराओं से तो बड़ा ही होता है ॥१७॥

दोहा

उरग तुरग नारी नृपति, नर नीचो हथियार।
तुलसी परखत रहब नित, इनहिं न पलटत बार ॥१८॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि सर्प, घोड़ा, स्त्री, राजा, नीच मनुष्य और हथियार इन सब को सदा पहचानते रहना चाहिये कि इनकी गति इस समय किधर की है क्योंकि इन्हें पलटते हुये देर नहीं लगती ॥१८॥

दोहा

दुरजन आप समान करि, को राखै हित लागि।
तपत तोय सहजाहिं पुनि, पलटि बुतावत आगि ॥१९॥

अर्थ—बुद्धिमान पुरुष दुष्टों को अपने साथ रखकर अपने समान बनाकर अपने साथ नहीं रख सकते और यदि भूल से कहीं रखलें तो उन (दुष्टों) से कोई भलाई नहीं हो सकती प्रत्युत बुराई ही होती है। देखिये जल अग्नि के संसर्ग से गर्म हो जाता है तो भी अग्नि पर पलट देने से उसे बुझा ही डालता है ॥१९॥

भावार्थ—कवि के कथन का भाव यह है कि किसी दुष्ट मनुष्य को इतना ऊँचा पद न दे दो कि एक दिन तुम्हारी ही प्रतिष्ठा भंगकर के वह अपनी प्रधानता स्थापित कर दे।

दोहा

मन्त्र तन्त्र तन्त्री त्रिया, पुरुष अश्व धन पाठ।
प्रतिगुण योग वियोग ते, तुरत जाहिं ये आठ ॥२०॥

अर्थ—मन्त्र (गोपनीय बात), तन्त्र (युक्ति), तन्त्री (सितार, वीना इत्यादि बाजा), स्त्री, पुरुष, घोड़ा, धन और पाठ (पढ़ी हुई विद्या) का सदा अभ्यास करता रहे क्योंकि इन आठों की अभ्यास से

ही रक्षा और वृद्धि होती है, अनभ्यास से ये आठों शीघ्र ही चले जाते हैं ॥२०॥

दोहा

नीच निचाई नहिं तजैं, जो पावहिं सतसंग।
तुलसी चन्दन बिटप वसि, बिन विष भय न भुवंग ॥२१॥

अर्थ—यदि नीच मनुष्य सतसंग भी प्राप्त करें तौ भी अपनी नीचता को नहीं छोड़ते। तुलसीदासजी कहते हैं कि चन्दन के वृक्ष पर निवास करके भी सर्प अपने विष को नहीं छोड़ता ॥२१॥

दोहा

दुरजन दरपन सम सदा, करि देखो हिय दौर।
सनमुख की गति और है, बिमुख भये कछु और ॥२२॥

अर्थ—हृदय में विचारकर देखिये तो दुर्जन और दर्पण की गति एक सी प्रतीत होती है। दर्पण जब तक सामने रहता है तब तक हमारे चित्त को अपने में धारणकर तन्मय हो जाता है, परन्तु जब पृथक् होता है तब शून्य का शून्य रह जाता है। उसी प्रकार दुष्ट मनुष्य जब सम्मुख रहते हैं तब सारी बातें अनुकूल ही कहते जाते हैं, परन्तु जब विमुख होते हैं तो उनकी गति और ही हो जाती है ॥२२॥

दोहा

मित्रक अवगुण मित्र को, पर यह भाषत नाहिं।
कूप छाँह जिमि आपनी, राखत आपहि माहिं ॥२३॥

अर्थ—मित्र का धर्म्म है कि अपने मित्र के अवगुण को दूसरों से कदापि न कहें और अपने मन में ही इस प्रकार गुप्त रखे जैसे कूप अपनी छाया को सदा अपने ही भीतर रखता है ॥२३॥

दोहा

तुलसी सो समरथ सुमति, सुकृती साधु सुजान।
जो विचारि व्यवहरत जग, खरच लाभ अनुमान ॥२४॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि वही मनुष्य शक्तिमान, बुद्धिमान, यशस्वी, साधु और सज्जन है जो संसार में विचारपूर्वक आयव्यय के अनुमान से ही व्यवहार करता है अर्थात् जो अपनी आय के अनुसार ही व्यय करता है ॥२४॥

दोहा

शिष्य सखा सेवक सचिव, सुतिया सिखवन साँच।
सुनि करिये पुनि परिहरिय, पर मनरंजन पाँच ॥२५॥

अर्थ—शिष्य, मित्र, सेवक, मंत्री और स्त्री की सच्ची शिक्षाओं को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिये और यदि अच्छी जँचें तो तदनुसार कार्य करना उचित है और यदि अच्छी न जँचें तो सुनकर उनकी शिक्षाओं का परित्याग कर देना चाहिये। क्योंकि ये शिष्यादि पाँचो मन को रंजित करनेवाले होते हैं ॥२५॥

भावार्थ—कवि के कहने का भाव यह है कि शिष्यादि पाँचों सम्भवतः अच्छी ही शिक्षा देंगे अतः उस पर ध्यान देना आवश्यक है ॥२५॥

दोहा

तुष्टहि निजरुचि काज करि, रुष्टहिं काज बिगारि।
तिया तनय सेवक सखा, मन के कण्टक चारि ॥२६॥

अर्थ—स्त्री, पुत्र, सेवक और मित्र ये चारों अनुकूल नहीं होने से मन के कण्टक हो जाते हैं अर्थात् प्रतिक्षण खटकते रहते हैं। यदि इनके

मन के अनुसार कार्य्य करते रहिये तब तो सन्तुष्ट रहते हैं अन्यथा रुष्ट होकर काम बिगाड़ देते हैं। ॥२६॥

दोहा

नारि नगर भोजन सचिव, सेवक सखा अगार।
सरस परिहरे रंगरस, निरस बिषाद बिकार ॥२७॥

अर्थ—स्त्री, अपना ग्राम, भोजन, मंत्री, सेवक, मित्र और घर को कुछ-कुछ प्रेम रहते ही छोड़ देने में रंग रस (आनन्द) रहता है। और इन्हें नीरस करके यदि छोड़ा जाय तो विषाद और विकार उत्पन्न होता है ॥२७॥

दोहा

दीरघ रोगी दारिदी, कटुबच लोलुप लोग।
तुलसी प्राण समान जो, तुरत त्यागिबे योग ॥२८॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि दीर्घ रोगी, दरिद्री, कटुवादी और लोलुप मनुष्य यदि प्राण के समान भी प्यारे हों तो इन्हें शीघ्र ही त्याग देना चाहिये ॥२८॥

टिप्पणी—दरिद्री, कटुवादी और लोलुप मनुष्य का परित्याग तो ठीक जँचता है, परन्तु दीर्घ रोगी का परित्याग जो कवि ने बतलाया वह समीचीन नहीं प्रतीत होता क्योंकि रोगी की सेवा करना ही धर्म है। हाँ, इस कार्य मे क्लेश तो अवश्य है परन्तु है बड़ा पुण्यकार्य ॥२८॥

दोहा

घाव लगे लोहा ललकि, खैंचि यलेह्य नीच।
समरथ पापी सों बयर, लीनि बिसाहो मीच ॥२९॥

अर्थ—घाव लगने पर क्रोध में आकर फिर हथियार उठाना, और

नीच मनुष्य को बलात्कार अपने यहाँ बुलाना तथा शक्तिशाली पापी मनुष्य से वैर करना ये तीनो कार्य्य मृत्यु बेसाहने (खरीदने) के समान होते हैं ॥२९॥

दोहा

तुलसी स्वारथ सामुहे, परमारथ तन पीठि।
अन्ध कहे दुख पाव कोहि, दिठिआरे हिय दीठि॥३०॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जिनके सम्मुख सदा स्वार्थ का ही प्रश्न है। परमार्थ उनकी पीठ की ओर हो जाता है अर्थात् वे परमार्थ से विमुख हो जाते हैं ऐसे अन्धों के कहने में पड़ने से सब को दुख भोगना पड़ता है अत. जिनके हृदय मे दृष्टि है वे बुद्धिमान मनुष्य स्वार्थियों से सदा सचेत रहते हैं ॥३०॥

दोहा

अनसमुझे नै शोचवर, अवशि समुझिये आप।
तुलसी आपन समुझ बिन, पलपल पर परिताप ॥३१॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि बिना समझी हुई बात को श्रेष्ठ नीति-शास्त्र में समझकर तब करना चाहिये। यदि अपनी बुद्धि से नहीं विचार किया और बिना सोचे-समझे कार्य्य कर बैठे तब प्रत्येक क्षण में क्लेश ही उत्पन्न होगा ॥३१॥

दोहा

कूप खनहिं मन्दिर जरत, लावहिं धारि बबूर।
बोये लुन चह समय बिन, कुमति शिरोमणि कूर ॥३२॥

अर्थ—घर जब जलने लगे तब अग्नि बुझाने के लिये जो मनुष्य कूप खनते हैं और उत्तम फल की आशा पर बबूर की पंक्तियाँ लगाते हैं

तथा समय आने के पूर्व ही जो बोये हुये को काटना चाहते हैं वे मूर्ख के शिरोमणि और क्रूर हैं ॥३२॥

दोहा

निडर अनय करि अन कुशल, बीसबाहु सम होय।
गयो गयो कह सुमति जन, भयो कुमति कह कोय ॥३३॥

अर्थ—जो मनुष्य निर्भय होकर अनीति करते हैं उनकी रावण के समान दुर्दशा होती है। सुन्दर बुद्धिवाले मनुष्य कहते हैं कि ऐसे अन्यायी मनुष्य संसार में नष्ट हो जाते हैं। वैसा ही कोई दुर्मति होगा जो उसकी प्रशंसा करेगा ॥३३॥

दोहा

बहु सुत बहु रुचि बहुबचन, बहु अचार व्यवहार।
इनको भलो मनाइबो, यह अज्ञान अपार ॥३४॥

अर्थ—बहुत संतान, बहुत प्रकार की कामनाएँ, बहुत बोलना, और बहुत आचार-व्यवहार का बढ़ाना अपार अज्ञान का परिणाम है। अर्थात् 'अति सर्व्वत्र वर्ज्जयेत्' के अनुसार मर्य्यादा के भीतर ही समस्त कार्य्य होना चाहिए ॥३४॥

दोहा

अयश-योग की जानकी, मणिचोरी की कान्ह।
तुलसी लोग रिझाइबो, करसि कातिबो नान्ह ॥३५॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जानकी कदापि अपयश के योग्य नहीं थी और न श्रीकृष्ण ने मणि की चोरी ही की, परन्तु संसार ने दोषारोपण किया। इन सब बातों को विचार कर कि दुष्ट लोग दोष न लगा दें बड़े पुरुष छोटों को भी प्रसन्न रखते हैं ॥३५॥

दोहा

माँगि मधुकरी खात जे, सोवत पाँव पसारि।
पाप प्रतिष्ठा बढ़ि परी, तुलसी बाढ़ी रारि ॥३६॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जबतक मैं मधुकरी भिक्षा माँगकर खाता रहा तबतक निश्चिन्त पाँव फैलाकर सोता था, परन्तु जब से पापरूपी प्रतिष्ठा की वृद्धि हुई, अर्थात् संसार मे मेरा मान बढ़ा तब से द्वेषवश लोगो ने शत्रुता बढ़ा दी है ॥३६॥

दोहा

लही आँखि कब आँधरहि, बाँझ पूत कब पाय।
कब कोढ़ी काया लही, जग बहरायच जाय ॥३७॥

टिप्पणी—बहरायच में सय्यद सालार जंग की कब्र है जहाँ अन्धे हिन्दू आँख के लिए, वन्ध्या स्त्रियाँ पुत्र के लिए और कोढ़ी मनुष्य अच्छी कान्ति के लिए जाते हैं, परन्तु यह भेंड़धसान मात्र है। किसी के मनोभिलाप की पूर्त्ति नहीं होती

अर्थ—कब किसी अन्धे ने आँख पायी, और कब किसी वन्ध्या स्त्री ने पुत्र पाया तथा कब किसी कोढ़ी ने अच्छा शरीर पाया ? परन्तु संसार बहरायच जाता है ॥३७॥

दोहा

या जग की बिपरीत गति, काहि कहौं समुझाय।
जल जल गौ झष बाँधि गो, जन तुलसी मुसकाय ॥३८॥

टिप्पणी—मछलियाँ अगाध जल चाहती हैं। वर्षा-ऋतु मे जब नदी का जल सर्वत्र फैल जाता है तो मछलियाँ नदी से बाहर होकर ऊपर के फैले हुए जल में भ्रमवश चढ जाती हैं और समझती हैं कि नदी की अपेक्षा

ऊपर ही अगाध जल है परन्तु जब वर्षा-ऋतु के बाद बाढ़ का पानी सूखने लगता है तो बाहर जल की न्यूनता देखकर मछलियाँ नदी की ओर भागने लगती हैं, परन्तु संसार के मत्स्य-भक्षी वहीं पर जाल फैलाकर सब मछलियों को बझा लेते हैं। इस प्रकार सब मछलियों का प्राणान्त हो जाता है।

अर्थ—इस संसार की उल्टी ही गति है। किसको-किसको समझाया जाय। जल के सूखने के समय सब मछलियाँ फँस गयीं। ऐसी दशा देखकर तुलसीदास को हँसी आती है ॥३८॥

भावार्थ—कवि के कहने का भाव यह है कि संसार के प्रत्येक मनुष्य अपनी वर्तमान दशा से असन्तुष्ट होकर उत्तरोत्तर सुख की अभिलाषा से नित्य नये प्रलोभनवश नये-नये कार्य्य करते हैं परन्तु उन्हें सुख की प्राप्ति न होकर दुःख की उलझनों में ही फँसना पड़ता है।

दोहा

कै बूझिबो कि जूझिबो, दान कि काय कलेश।
चारि चारु परलोक पथ, यथायोग उपदेश ॥३९॥

टिप्पणी—इस दोहे में गोस्वामीजी ने चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) के गुण कथन किये हैं। ब्राह्मण का गुण ज्ञान है, क्षत्रिय का कर्म युद्ध है, वैश्य का धर्म दान है और शूद्रों का धर्म शरीर से सेवा करना है। इसी आशय को कवि ने उक्त दोहे में दर्शाया है।

अर्थ—ज्ञान, युद्ध में शरीर त्याग, दान और शरीर से सेवा यही चार वर्णों के लिये यथायोग्य परलोक के सुन्दर मार्ग हैं और उनके लिये यही उपदेश है ॥३९॥

दोहा

बुध किसान सर वेद बन, मते खेत सब सींच।
तुलसी कृषिगति जानिबो, उत्तम मध्यम नीच ॥४०॥

टिप्पणी—इस दोहे में कवि ने विचार को खेती का रूपक दिया है। बुद्धिमानों को ही कृषक, वेद को सरोवर, वेदो के उपदेश को जल और नाना प्रकार के विचारों को ही खेत बतलाया है। खेती तीन प्रकार की होती है। कृषक स्वयं खेती करे तो उत्तम, मजदूरो की सहायता से करे तो मध्यम और केवल मजदूरों के भरोसे छोड दे तो निकृष्ट है। उसी प्रकार कर्म सम्बन्धी विचारो के भी तीन भेद हैं—(१) जो महापुरुष प्रारब्ध का उल्लङ्घन कर कर्म में प्रवृत्त हो जाते हैं वे उत्तम पुरुष हैं। (२) जो प्रारब्ध को मानते हुए कर्म भी करते जाते हैं वे मध्यम पुरुष हैं (३) और जो केवल प्रारब्ध के भरोसे रहते हैं और कर्म नहीं करते वे नीचपुरुष हैं।

अर्थ—बुध जन कृषक तुल्य, वेद सरोवर के समान, वेदो के उपदेश बन (जल) के सदृश और नाना प्रकार के विचार खेत के तुल्य हैं। इन विचारों को सदा वेदोपदेश से सींचते रहो। तुलसीदास कहते हैं कि इस प्रकार कृषि की गति के समान कर्म के भी उत्तम, मध्यम और नीच तीन भेद हैं ॥४०॥

दोहा

सहि कुबोल साँसति अधम, पाय अनट अपमान।
तुलसी धर्म न परिहरहिं, ते बर सन्त सुजान ॥४१॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो सज्जन महानुभाव दुष्टो की कुबोल (दुर्वचन) को सहकर विषम दंड भोगकर और अनीति और अपमान को सहन करते हुए भी अपना धर्म नहीं छोडते वे ही श्रेष्ठ महात्मा हैं ॥४१॥

दोहा

अनहित ज्यों परहित किये, आपन हिततम जान।
तुलसी चारु विचार मति, करिय काज सममान ॥४२॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि मनुष्यों की यह प्रवृत्ति ही गई है कि जहाँ परहित (परोपकार) की बात आती है उसे अनहित (बुराई) के समान समझते हैं और अपने हित को ही सब से श्रेष्ठ समझते हैं। परन्तु सुन्दर मतिवालों का कथन है कि अपने हित के समान ही दूसरों के हित को समझकर कार्य करना उचित है ॥४२॥

दोहा

मिथ्या माहुर सुजन कहँ, खलहि गरल सम साँच।
तुलसी परसि परात जिमि, पारद पावक आँच ॥४३॥

अर्थ—सज्जनों के लिये असत्य विष के समान है और दुष्टों के लिये सत्य ही विष के समान होता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि खलों के संसर्ग से सज्जन इस प्रकार भागते हैं जैसे पारा अग्नि की आँच को स्पर्श करते ही पिघलकर अलग हो जाता है ॥४३॥

दोहा

तुलसी खल बाणी विमल, सुनि समुझब हिय हेरि।
राम राज बाधक भई, मन्द मन्थरा चेरि ॥४४॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि दुर्जन मनुष्य जब निर्मल वचन बोलें तब हृदय में बहुत विचारकर सोचना चाहिये कि यह तो सदा दुष्ट वचन बोलता था इस समय विमल वचन क्यों बोल रहा है ? स्पष्ट देख लीजिए, मन्थरा जैसी तुच्छ दासी कैकेयी से मीठे वचन बोलकर राम जैसे चक्रवर्ती राजा के राज्याभिषेक में बाधक बन गई ॥४४॥

दोहा

दान दयादिक युद्ध के, वीर धीर नहिं आन।
तुलसी कहहिं बिनीत इति, ते नरवर परिमान ॥४५॥

अर्थ—तुलसीदासजी विनीत भाव से कहते हैं कि वे ही मनुष्य श्रेष्ठ और वीर तथा धैर्य्यवान हैं जो युद्ध में दान और दया इत्यादि युक्त नियमों के साथ स्थित रहते हैं ॥४५॥

दोहा

तुलसी साथी विपत्ति के, विद्या बिनय विवेक।
साहस सुकृत सत्य व्रत, राम भरोसो एक ॥४६॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि विद्या, नम्रता, ज्ञान, धैर्य्य, उत्तम कर्म, सत्य का प्रतिपालन और ईश्वर पर दृढ़ भरोसा रखना ही विपत्ति के साथी हैं ॥४६॥

दोहा

तुलसी असमय के सखा, साहस धर्म बिचार।
सुकृत शील स्वभाव ऋजु, राम शरण आधार ॥४७॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि साहस, धर्म, उत्तम विचार, उत्तम कर्म, नम्रता, सीधा स्वभाव और भगवान की शरण तथा ईश्वर पर विश्वास रखना ही कुसमय के मित्र हैं ॥४७॥

दोहा

विद्या विनय विवेक रति, रीति जासु उर होय।
राम परायण सो सदा, आपद ताहि न कोय ॥४८॥

अर्थ—जिसके हृदय में विद्या, नम्रता, ज्ञान और प्रेम की रीति होती है और जो सदा राम की भक्ति में तत्पर रहता है उसे कोई आपत्ति संसार में नहीं सता सकती ॥४८॥

दोहा

बिन प्रपञ्च लखु भीखभलि , नहिं फल किये कलेश ।
बावन बलि सों छीन छलि , दीन सबहि उपदेश ॥४९॥

अर्थ—विचारपूर्वक देखो तो बिना प्रपञ्च (छल-पाखण्ड) फैलाये यदि एक चुटकी भिक्षा मिल जाय तो अच्छी है और नाना प्रकार के क्लेश (छल-पाखण्ड) से यदि फल (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की प्राप्ति हो तो भी अच्छा नहीं । वामन भगवान ने बलि राजा से छल करके पृथिवी ली परन्तु फल यह हुआ कि वे विराट होकर भी वामन (लघु स्वरूप) प्रसिद्ध हुये और 'माँगना अच्छा नहीं है' यह उपदेश सब को दे गये ॥४९॥

दोहा

बिबुध काज बावन बलिहि , छलो भलो जिय जानि ।
प्रभुता तजि बश भे तदपि , मन ते गई न ग्लानि ॥५०॥

अर्थ—देवताओं के कार्य के लिये परोपकार को हृदय में अच्छा समझकर वामन भगवान ने बलि राजा के साथ छल किया और प्रभुता को छोड़कर परतन्त्रता धारण की परन्तु हृदय से आजतक ग्लानि नहीं गई अर्थात् पछताते रहे कि हमने अच्छा नहीं किया ॥५०॥

दोहा

बड़े बड़ेन ते छल करें , जनम कनौड़े होहिं ।
तुलसी श्रीपति शिर लसै , बलिबावन गति सोहि ॥५१॥

अर्थ—बड़े पुरुष जब बड़ों से छल करते हैं तो फिर जन्म भर के लिये उनके कनौड़े (सेवक) हो जाते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि विष्णु ने वृन्दा के साथ छल किया और अन्त में उसे तुलसी के स्वरूप में सदा

के लिए सिर पर ले लिया। और वावन ने वलि के साथ छल किया परन्तु अन्त में वावन स्वरूप होकर आजीवन उसके द्वार पर अद्यावधि स्थित हैं ॥५१॥

दोहा

खल उपकार बिकार फल, तुलसी जान जहान।
मेढ़क मर्कट बणिक बक, कथा सत्य उपखान ॥५२॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि दुष्टों के साथ यदि उपकार किया जाय तो उसके प्रतिफल स्वरूप में विकार अर्थात् दुख की प्राप्ति होती है। मेढक, वानर, वणिक और वक के सत्य उपाख्यान की कथा संसार में प्रसिद्ध है ॥५२॥

टिप्पणी—हितोपदेश में ये चारों उपाख्यान इस प्रकार आये हैं—

मेढक—एक मेढक का परिवार किसी कूप में रहता था। उनमें से किसी एक मेढक विशेष का समस्त परिवार से विरोध हो गया। वह मेढक क्रोध में आकर एक सर्प को उस कूप में ले आया। वह सर्प जब सब मेढकों को खा चुका, तब अन्त में उस मेढक को भी खाने के लिये दौड़ा, परन्तु वह किसी प्रकार जान लेकर भागा और पछताता रहा।

मर्कट—एक वानर ने एक मगर के साथ प्रेम करके बहुत फल खिलाये पीछे वही मगर जब वानर को खाने दौड़ा तो वह भागा और पछताया।

वणिक—एक वणिक ने राजकुमार के साथ बहुत उपकार किया परन्तु अन्त में राजकुमार ने उसे धोखा दिया।

वक—एक वक ने सर्प के विरोध से नेवले को अपने यहाँ बुलाया। जब नेवले ने सर्प को खा लिया उसके बाद उस वक के भी सब अण्डे खाये और वक बेचारा किसी प्रकार अपना प्राण लेकर भागा।

दोहा

जो मूरख उपदेश के, होते योग जहान।
दुर्योधन कहँ बोध किन, आये श्याम सुजान ॥५३॥

अर्थ—यदि संसार के मूर्ख उपदेश पाने के योग्य होते तो कृष्ण जैसे बुद्धिमान पुरुष के समझाने पर दुर्योधन को बोध क्यों नहीं हुआ ॥५३॥

भावार्थ—कवि के कथन का भाव यह है कि मूर्खों को पर उपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अत उन्हें उपदेश देना व्यर्थ है।

दोहा

हित पर बढ़त विरोध जब, अनहित पर अनुराग।
रामविमुख विधि बाम गति, सगुन अघाय अभाग ॥५४॥

अर्थ—जब अपने मित्रों के साथ विरोध बढ़ने लगे और वैरियों के साथ प्रेम होने लगे और मनुष्य का चित्त ईश्वर से विमुख होने लगे तो समझना चाहिये कि यह सब विधि के वाम गति के कारण हो रहा है और अभाग्य प्रसन्न होकर सगुन अर्थात् मोटा है ॥५४॥

दोहा

साहस ही सिख कोप वश, किये कठिन परिपाक।
शठ संकट भाजन भये, हठि कुयती कपि काक ॥५५॥

अर्थ—जो मनुष्य क्रोधवश होकर अन्यो की शिक्षा नहीं मानते हुये साहस करके कठिन कर्म कर बैठते हैं वे मूर्ख अपने हठ से अन्त में कुयति (रावण), कपि (बालि) और काक (जयन्त) के समान सकट के पात्र होते हैं अर्थात् सकट में पड़ते हैं ॥५५॥

दोहा

मारि सौंह करि खोज लै, करि मत सब बिन त्रास।
मुये नीच बिन मीच ते, ये उनके विश्वास ॥५६॥

अर्थ—नीति की बात यह है कि जिसको कभी सताया जाय उसे सदा के लिये दूर करदे। यदि सताये हुये मनुष्य को ढूँढ़कर लाओगे और शपथ इत्यादि दिलाकर अपना मत (गुप्तभेद) यदि निडर होकर कह दोगे तो वह पहिले का सताया हुआ मनुष्य तुम्हें मार डालेगा। गोस्वामीजी का मत है कि ऐसे नीच मनुष्य जो सताये हुये का विश्वास कर उसे घर में बुलाते हैं वे इनके विश्वास पर बिना मौत के ही मरते हैं ॥५६॥

दोहा

रीझ आपनी बूझ पर, खीज बिचार बिहीन।
ते उपदेश न मानहीं, मोह महोदधि मीन ॥५७॥

अर्थ—जो मनुष्य अपनी बुद्धि पर ही मुग्ध हैं और विचारहीन होकर क्रोध करते हैं वे औरो के उपदेश को नहीं मान सकते क्योंकि उनका मन ज्ञानरूपी समुद्र में मछली के समान निमग्न है ॥५७॥

दोहा

समुझि सुनीनि कुनीतिरत, जागत ही रह सोय।
उपदेशिबो जगाइबो, तुलसी उचित न होय ॥५८॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो मनुष्य सुन्दर नीति का मार्ग समझते हुये भी अनीति में रत है और जो जागते हुए भी सोया हुआ है उसे उपदेश करना और जगाना उचित नहीं है ॥५८॥

दोहा

परमारथ पथ मत समुझि, लसत बिषय लपटानि।
उतरि चिता ते अधजरी, मानहु सती परानि ॥५९॥

अर्थ—जिन मनुष्यों की बुद्धि परमार्थ के मार्ग और मत को समझ-

बूझकर भी विषय में लिपटते हैं उनकी समझ ऐसी ही है मानो आधी जली हुई सती चिता से उतरकर भाग चली हो ॥५९॥

भावार्थ—कवि के कहने का भाव यह है कि जैसे आधी जली हुई सती चिता से उतर कर यदि भाग चले तो वह कहीं की नहीं होती अर्थात् न तो जल मरी और न शरीर से नीरोग रही। उसी प्रकार की दशा उन मनुष्यों की है जो कुछ दिन परमार्थ पथ में चलकर फिर विषय में अनुरक्त हो जाते हैं।

दोहा

तजत अमिय उपदेश गुरु, भजत विषय विषखान।
चन्द्रकिरण धोखे पयस, चाटत जिमि शठ स्वान॥६०॥

अर्थ—जो मनुष्य अमृत के समान गुरुजनों के उपदेश को छोड़ कर विष की खान के समान विषयों का ही सेवन करते हैं उनकी दशा वैसी ही है मानो मूर्ख श्वान (कुत्ता) दूध के धोखे से चन्द्रमा की चाँदनी चाट रहा है ॥६०॥

भावार्थ—जिस प्रकार चद्रमा की चाँदनी कोई वस्तु नहीं और न उसकी चाँदनी चाटने से तृप्ति हो सकती है। उसी प्रकार विषयों से तनिक भी सुख और शान्ति की उपलब्धि नहीं होती।

दोहा

सुर सदनन तीरथ पुरिन, निपटि कुचाल कुसाज।
मनहुँ मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज॥६१॥

अर्थ—देवालयों और तीर्थ की नगरियों में अत्यन्त कुचाल और कुसाज देख पड़ती है अर्थात् इन स्थानों में महापाप हो रहे हैं मानों कलियुग मवासे (गद्दी) मारकर अपने समाज (छल-पाखण्ड) के साथ विराजमान हो रहा हो ॥६१॥

टिप्पणी—मन्दिरों में नाना प्रकार के अनर्थ और तीर्थों में अनेक प्रकार के व्यभिचार का होना तुलसीदास के समय में भी सिद्ध होता है। वास्तव में अनधिकारी महन्थों के होने से ये सब बातें संघटित होती हैं। अत बुद्धिमान और धर्म्म-प्रेमियों को मठ-मन्दिर सुधार की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

दोहा

चोर चतुर बटपार भट, प्रभु प्रिय भरुवा भंड।
सब भक्षी परमारथी, कलि सुपन्थ पाखण्ड ॥६२॥

अर्थ—कलियुग में सब बातें विपरीत देखी जाती हैं। जो चोर हैं वे ही चतुर समझे जाते हैं। जो बटपार (रहज़न और डाकू) हैं वे ही योद्धा कहे जाते हैं। और जिन्हें भाँड़, भँड़ुए और भठियारिनें प्रिय हैं वे ही प्रभु (बड़े) कहे जाते हैं। जो मांसादि सब कुछ भक्षण करते हैं वे ही परमार्थी (सिद्ध महात्मा) समझे जाते हैं। इस प्रकार कलियुग में पाखण्ड ही सन्मार्ग समझा जाता है ॥६२॥

भावार्थ—कवि के कहने का भाव यह है कि इस समय की व्यवस्था प्राचीन व्यवस्था से सर्वथा उलटी हो गयी है।

दोहा

गौंड़ गँवार नृपाल कलि, यवन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल ॥६३॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि इस समय जो हिन्दू राजा हैं वे अत्यन्त गँवार हैं अर्थात् उन्हें शासन-पद्धति मालूम नहीं और जो बड़े-बड़े राजा हैं वे यवन (मुसल्मान) हैं जो साम, दाम और भेद से काम नहीं लेते। केवल कठिन दण्ड का ही प्रचार देख पड़ता है ॥६३॥

भावार्थ—साम, दाम, दण्ड और विभेद ये राजा के चार मुख्य गुण हैं। मुसलमान शासक सदा दण्ड-विधान से ही शासन करते आ रहे हैं। यही बात तुलसीदास के समय में भी थी। हिन्दू राजे उस समय छिन्न-भिन्न हो चुके थे, उनमें भी किसी प्रकार की उत्तम शासन-प्रणाली प्रचलित नहीं थी।

दोहा

काल तोपची तुपक महि, दारू अनय कराल।
पाप पलीता कठिन गुरु, गोला पुहुमी पाल ॥६४॥

अर्थ—यह कराल काल (समय) ही तोपची अर्थात् तोप चलानेवाला गोलन्दाज है, और पृथिवी ही तुपक (तोप) हो रही है, जिसमें महती अनीति की ही दारू (बारूद) भरी हुई है। पाप ही पलीता (बारूद में आग लगानेवाला) है और महिपाल ही महाकठिन गोला है ॥६४॥

भावार्थ—कवि के कथन का भाव यह है कि इस समय के यवन शासक बड़े ही अन्यायी एवं क्रूर हैं। प्रजा पर घोर अत्याचार की तोप चल रही है।

दोहा

राग रोष गुण दोष को, साखी हृदय सरोज।
तुलसी बिकसत मित्र लखि, सकुचत देखि मनोज ॥६५॥

अर्थ—राग (प्रेम), रोष (वैर), गुण और दोष का साक्षी प्रत्येक मनुष्य का हृदय-कमल है जो मित्ररूप सूर्य को देखकर विकसित (प्रसन्न) हो जाता है और शत्रुरूप मनोज (चन्द्रमा) को देखकर संकुचित (अप्रसन्न) होता है ॥६५॥

दोहा

वैर सनेह सयानपहिं, तुलसी जो नहिं जान।
तेकि प्रेम मग पग धरत, पशु बिन पूछ बिषान ॥६६॥

अर्थ—जो मनुष्य वैर, स्नेह और चतुराई के स्वरूप को नहीं जानते वे यदि प्रेमपथ में पैर दें तो समझो कि वे वास्तव में मनुष्य नहीं अर्थात बिना सींग-पूँछ के पशु हैं ॥६६॥

भावार्थ—संसार में बहुतेरे मनुष्य चतुराई (धूर्तता) से प्रेम करते हैं। वास्तव में उनके हृदय में प्रेम नहीं होता, पर दिखावे के भाव से प्रेम दर्शाते हैं। तथ्य तो यह है कि प्रेम और वैर दोनों ही स्वाभाविक भाव से उत्पन्न होते हैं। प्रेम, वैर और चतुरता को पहचाननेवाला मनुष्य ही प्रेम-पथ का पथिक हो सकता है, अन्यथा धोखा ही सम्भव है।

दोहा

रामदास पहँ जाइकै, जो नर कथहिँ सयान।
तुलसी अपनी खाँड़ महँ, खाक मिलावत स्वान ॥६७॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जो मनुष्य भगवान के भक्तों के पास जाकर धूर्तता की बातें करते हैं वे श्वान (कुत्ते) के सदृश बुद्धिवाले हैं जो अपनी मिश्री में धूल मिलाते हैं अर्थात् वे अपनी भलाई का नाश कर रहे हैं ॥६७॥

भावार्थ—भगवद्भक्तों से छल करना महामूर्ख का काम है।

दोहा

त्रिबिधिएकबिधिप्रभुअगुण, प्रजहि सँवारहिं राव।
करते होत कृपाण को, कठिन घोर घन घाव ॥६८॥

अर्थ—यदि राजा में एक दुर्गुण हो तो प्रजा में उसके तिगुने दुर्गुण की उत्पत्ति होती है और राजा यदि चाहे तो स्वयं सुधरकर प्रजा का भी सुधार कर सकता है। प्रत्यक्ष देखिये तल्वार से ही कठिन से कठिन घनघोर घात्र होता है परन्तु उसमें हाथ का संसर्ग अवश्य रहता है उसी प्रकार राजा के संसर्ग से ही प्रजावर्ग भला-बुरा बनता है ॥६८॥

टिप्पणी—महाभारत में कहा भी है—राजा कालस्य कारणम् । अन्यत्र भी कहा है—

राज्ञि धर्मीणि धर्मिष्ठा पापे पापा समे समाः ।
प्रजास्तदनुवर्त्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः ॥

दोहा

काल बिलोकत ईश रुख, भानु काल अनुहारि ।
रबिहि राहु राजहि प्रजा, बुध ब्यवहरहिं बिचारि ॥६९॥

अर्थ—काल (समय) सदा ईश्वर के रुख को देखता है अर्थात् ईश्वर अथवा राजा जैसी चाहना करते हैं तदनुसार ही काल बनता है, सूर्य सदा काल (ऋतु) के अनुकूल ही वर्त्तता है। राहु काल पाकर ही सूर्य का ग्रास करता है। प्रजावर्ग काल देखकर ही राजा पर आक्रमण करता है। बुद्धिमान पुरुष वही है जो कालानुसार व्यवहार करता है ॥६९॥

दोहा

यथा अमल पावन पवन, पाय सुसंग कुसंग ।
कहिय सुबास कुबास तिमि, काल महीस प्रसंग ॥७०॥

अर्थ—जिस प्रकार वायु परम शुद्ध और निर्मल वस्तु है परन्तु वह भी सुसंग (सुगन्धित पदार्थ के संसर्ग) से सुगन्धित तथा कुसंग (दुर्गन्धित पदार्थ के संसर्ग) से दुर्गन्धित कहलाता है उसी प्रकार काल

एक निर्लेप सत्ता है। परन्तु राजा के संसर्ग से लोक उसे भी भला-बुरा कहता है ॥७०॥

दोहा

भलेउ चलत पथ शोच भय, नृप नियोग नय नेम।
कुतिय सुभूषण भूषियत, लोह नेवारित हेम ॥७१॥

अर्थ—उत्तम राजा की आज्ञा और राज्य-नियम के भय से बुरे मनुष्य भी सुन्दर पथ पर चलने लगते हैं और वे भी इस प्रकार भले जँचते हैं जैसे कुरूपा स्त्री भी वस्त्रालङ्कार से सुभूषित होने पर सुसज्जित हो उठती है एवं लोहा जैसा कुत्सित धातु भी स्वर्ण के संसर्ग से (सोने का पानी चढ़ जाने पर) चमक उठता है ॥७१॥

दोहा

सुधा कुनाज सुनाज फल, आम असन सम जान।
सुप्रभु प्रजा हित लेहि कर, सामादिक अनुमान ॥७२॥

अर्थ—अच्छे राजा प्रजा के हित के लिए साम और दाम का अनुसरण करते हुए ईख और दूध इत्यादि अमृतमय पदार्थों से अथवा कुनाज और सुनाज से किंवा आम इत्यादि फलों से समभाव धारण कर के कर (tax टैक्स) वसूल करते हैं ॥७२॥

दोहा

पाके पकये बिटप दल, उत्तम मध्यम नीच।
फल नर लहहिं नरेश तिमि, करि बिचार मन बीच ॥७३॥

टिप्पणी—फल तीन प्रकार के होते हैं। सब से उत्तम वह फल है जो स्वयं पककर गिरे, मध्यम वह है जो पकने के कुछ पूर्व तोड़कर पकाया जाय और निकृष्ट वह है जो कच्चा ही तोड़ लिया जाय और पक न सके।

अर्थ—जिस प्रकार वृक्ष के फल और दल (पत्ते) स्वयं पकने और पकाने के विचार मे उत्तम, मध्यम और नीच तीन प्रकार के होते हैं, उसी प्रकार राजा अपनी प्रजा से जो कर वसूल करता है, उसके भी उत्तम, मध्यम और निकृष्ट तीन भेद हैं। इन भेदों को राजा मन में विचार करे। प्रजा जितना कर प्रसन्नतापूर्वक दे सके, वह उत्तम; जो समझाने से दे वह मध्यम और जो दण्ड के भय से दे वह निकृष्ट है ॥७३॥

दोहा

धरणि धेनु चरि धर्म तृण , प्रजा सुवत्स पन्हाय ।
हाय कछू नहीं लागि है , किये गोष्ठ की गाय ॥७४॥

अर्थ—पृथिवी ही गाय के सदृश है, जो धर्मरूपी तृण को चरकर पुष्ट रहती है और प्रजा रूपी सुन्दर बछड़े को पाकर पेन्हाती है। यदि इस गाय को धर्म-तृण चरने को न दिया जाय और गोष्ठ (गोशाला) में केवल बाँध दिया जाय तो दूध-घी इत्यादि कुछ हाथ न लगेगा ॥७४॥

भावार्थ—उत्तम राजा का कर्तव्य है कि वह अपने राज्य में धर्म का प्रचार करे, जिससे उसका राज्य सर्व प्रकार आनन्दपूर्ण रहे और प्रजाएँ सुखी रहें।

दोहा

कण्टक करट हु परत गिरि , शाखा सहस खजूरि ।
मरहिं कुनृप करि करि कुनै , सो कुचालि भुवि भूरि ॥७५॥

अर्थ—खजूर में सहस्रो शाखाएँ होती हैं पर उसका प्रत्येक पत्ता काँटेदार होता है। यही कारण है कि एक-एक करके गिर जाता है। उसी प्रकार दुष्ट राजा अनीति करके नष्ट हो जाते हैं। ऐसी कुचाल से इस समय की पृथिवी भरी पड़ी है ॥७५॥

टिप्पणी—ऊपर के दोहे से स्पष्ट होता है कि गोस्वामीजी के समय में जितने राजा थे, वे सब प्रजा पर अन्याय का व्यवहार करते थे।

दोहा

भूमि रुचिर रावण सभा, अङ्गद पद महिपाल।
धर्म रामनय सीम बल, अचल होत तिहुँकाल॥७६॥

अर्थ—यह सुन्दर भूमि ही रावण की सभा है, जिसमें उत्तम धर्मात्मा राजा ही अंगद के पद के समान स्थित हैं। राम की नीति और धर्म ही बल की सीमा के समान है, जो त्रयकाल में स्थित रखता है॥७६॥

भावार्थ—कवि के कहने का आशय यह है कि जो धर्मात्मा राजा हैं और राम की नीति और धर्म के अनुसार जो राज्य शासन करते हैं, उन्हीं का यश संसार में स्थित था, है और रहेगा, अन्यथा जो अधर्मी राजा हैं, उनका इस जगत् में नाश हो जाता है, और मरने पर अपकीर्ति फैल जाती है।

दोहा

प्रीति राम-पद नीति रत, धर्म प्रतीति स्वभाय।
प्रभुहि न प्रभुता परिहरै, कबहुँ बचन मन काय॥७७॥

अर्थ—जिन राजाओं की राम के चरणों में भक्ति है, और जो सदा नीति में तत्पर रहते हैं, और स्वभाव से ही जिनका धर्म में विश्वास है—ऐसे राजाओं को ऐश्वर्य्य मन, वचन और काया से कभी नहीं छोड़ता, अर्थात् सदा वे ऐश्वर्य्यवान् बने रहते हैं॥७७॥

दोहा

करके कर मन के मनहिं, वचन वचन जिय जान।
भूपति भलहि न परिहरहि, बिजै बिभूति सयान॥७८॥

अर्थ—उत्तम राजाओं के हाथ में सदा विजय रहती है। उनके मन में सदा ऐश्वर्य बना रहता है और वचन में सदा चतुरता बनी रहती है। तुलसीदास जी कहते हैं कि अपने हृदय में सदा इस बात को स्मरण रक्खो कि उत्तम राजाओं को विजय, ऐश्वर्य और चतुरता कभी परित्याग नहीं करती ॥७८॥

दोहा

गोली बान सुमन्त्र सुर, समुझि उलटि गति देखु।
उत्तम मध्यम नीच प्रभु, वचन बिचारु बिशेखु ॥७९॥

अर्थ—राजा उत्तम, मध्यम और नीच तीन प्रकार के होते हैं। इनके वचनों को विशेष विचार-पूर्वक समझना चाहिए। जो उत्तम राजा हैं, उनका वचन गोली के समान समझो, अर्थात् जिस प्रकार गोली बन्दूक से छूटकर लौट नहीं आती, उसी प्रकार जो उत्तम राजा हैं उनके मुँह से जो वचन निकला उसे कदापि वापस नहीं लेते और उसकी पूर्ति करते हैं। मध्यम राजा वे हैं जिनके वचन बाण के समान होते हैं अर्थात् बाण निकलता है तो युक्ति से वापस भी किया जाता है। उसी प्रकार जो मध्यम राजा हैं वे जो कुछ बोलते हैं, उसे प्राय पूरा करते हैं परन्तु परिस्थिति देखकर कभी किसी बात को वापस भी ले लेते हैं। जो निकृष्ट राजा हैं, उनके वचन स्वर और मात्रा के सदृश हैं जिनका स्वरूप सदा भिन्न रहा करता है अर्थात् बोलते कुछ हैं, करते कुछ हैं ॥७९॥

दोहा

शत्रु सयाने सलिल इव, राख शीश अपनाव।
बूड़त लखि डगमगत अति, चपरि चहूँ दिशि धाव ॥८०॥

अर्थ—राजा के सम्बन्ध में एक नीति यह भी है कि जब अवसर आवे और शत्रु प्रबल और चतुर हो, तो उसे कुछ काल के लिए अपने

सिर पर इस प्रकार धारण कर ले जैसे जल नाव को अपने ऊपर रख लेता है। परन्तु जब उस नाव को डगमगाते देखता है तो चारों ओर से दौड़ कर उसे चपरि (अत्यन्त शीघ्र) डुबो देता है ॥८०॥

भावार्थ—प्रबल शत्रु की प्रभुता को स्वीकार कर कुछ काल के लिए ऊँचा आसन दे देना बुद्धिमत्ता है। परन्तु जब उसके बुरे दिन आवें तो सब प्रकार उसे दबाकर नष्ट कर देने का यत्न करना बुद्धिमान् राजा का कर्तव्य है।

दोहा

रैयत राज समाज घर, तन धन धर्म सुबाहु।
सत्य सुसचिवहिं सौंपि सुख, बिलसहिं निज नरनाहु ॥८१॥

अर्थ—प्रजा, राज्य-परिवार, गृह और कोष की रक्षा केवल धर्मरूपी बाहु से करता हुआ धर्मात्मा राजा सत्यरूपी मंत्री के जिम्मे सारा राज्यभार सुपुर्द कर आनन्दपूर्वक सम्पन्न रहता है ॥८१॥

दोहा

रसना मंत्री दसन जन, तोष पोष सब काज।
प्रभु कैसे नृप दान दिक, बालक राज समाज ॥८२॥

अर्थ—इस शरीर में मुख ही राजा के समान है। जिह्वा ही मंत्री है, दाँत ही राज्य-जन (राज्य-कर्मचारी) के तुल्य हैं। राज्य-परिवार बालक तुल्य है। जिस प्रकार मुख का कर्त्तव्य है कि वह समस्त भोज्य पदार्थों को दाँतों की सहायता से कुचलकर जिह्वा की सहायता से रस बनाकर पाकस्थली को पचाने के निमित्त दे देता है, उसी से समस्त शरीर के तोष-पोष (भरण-पोषणादि) सब कार्य सिद्ध होते हैं, उसी प्रकार प्रभु (स्वामी) और राजा यथा योग्य दानादिक क्रियाओं से बालक तुल्य प्रजा एव परिवार का भरण-पोषण करते हैं ॥८२॥

दोहा

लकड़ी डौवा करछुली, सरस काज अनुहारि।
सुप्रभु सुगहहिं न परिहरहिं, सेवक सखा विचारि ॥८३॥

अर्थ—भोजन बनाने के कार्य में लकड़ी, डौवा (चमचा) और करछुली इत्यादि सभी पदार्थ आवश्यकतानुसार सरस अर्थात् उपयोगी हैं, अत सब का संग्रह अनिवार्य है। उसी प्रकार उत्तम राजा बहुत विचार करके सेवक और सखा (मित्रादि) रखते हैं, अथच जिन्हें अपना चुके उनका कभी परित्याग नहीं करते ॥८३॥

दोहा

प्रभु समीप छोटे बड़े, अचल होहिं बलवान।
तुलसी विदित विलोकहीं, कर अँगुली अनुमान ॥८४॥

अर्थ—ऐश्वर्यशाली राजा के आश्रित छोटे और बड़े सभी समान भाव से बलवान होकर अचल (स्थित) रहते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रत्यक्ष देखलो, हाथ की अँगुलियाँ सभी छोटी बड़ी हैं परन्तु हाथ सब को समान भाव से रखता है और सब की उपादेयता से लाभ उठाता है ॥८४॥

दोहा

तुलसी भल बरनत बढ़त, निज मूलहि अनुकूल।
सकल भाँति सब कहँ सुखद, दलन सहित फल फूल ॥८५॥

अर्थ—अपनी जड़ के अनुसार ही यदि वृक्ष की बढ़ती होती जाय और तदनुकूल ही पत्ते, फूल और फल लगा आवें तो वह वृक्ष अत्यन्त हरा-भरा एवं सोहावना प्रतीत होता है, उसी प्रकार धर्मात्मा राजा अपने राज्य में सच्छिक्षा के प्रसार तथा धर्म-प्रचार के द्वारा अपने परिवार

और प्रजावर्ग को अपने अनुकूल बनाकर नाना प्रकार के अभ्युदय से अपने राज्य को सुशोभित करता है ॥८५॥

दोहा

सधन सगुण सधरम सगण, सजन सुसबल महीप।
तुलसी जे अभिमान बिन, ते त्रिभुवन के दीप ॥८६॥

अर्थ—जो राजा सधन (द्रव्य-कोष से पूर्ण), सगुण (विद्या नम्रतादि गुणों से युक्त), सधर्म (अहिंसा-सत्यादि धर्म से परिपूर्ण), सगण, (मंत्री प्रभृति उत्तम गणों से युक्त) और सज्जनों के साथ रहनेवाले हैं वे ही सब प्रकार सबल होते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं ऐसे बलवान राजा यदि अभिमानरहित हो जायँ तो समझो कि वे त्रिलोक के दीपक हैं अर्थात् उनकी कीर्त्ति तीनों लोकों में चमक उठती है ॥८६॥

दोहा

साधन समय सुसिद्धि लहि, उभय मूल अनुकूल।
तुलसी तीनों समय सम, ते महि मंगल मूल ॥८७॥

अर्थ—साधन (कार्य-सहायक), समय (काल) और सुन्दर सिद्धि (कार्य-फल की प्राप्ति) यदि उभय मूल अर्थात् लोक एवं परलोक के अनुकूल हो तो तुलसीदास कहते हैं कि तीनों समय (भूत, वर्त्तमान और भविष्य) में पृथिवी मंगल-मूल (आनन्ददायक) बनी रहती है ॥८७॥

दोहा

रामायण सिख अनुहरत, जग भो भारत रीति।
तुलसी सठ की को सुने, कलि कुचाल पर प्रीति ॥८८॥

अर्थ—रामायण में विशेष कर भ्रातृ-स्नेह की शिक्षा है एवं महाभारत में पारस्परिक वैर की कथा है। दोनों का परिणाम भी उन्हीं

ग्रन्थों से प्रगट है। तुलसीदासजी कहते हैं कि रामायण की शिक्षा को सुनते-सुनाते हुए भी संसार महाभारत की रीति पर चल रहा है। इस कलिकाल में लोगों की प्रीति कुचाल पर ही है। अत: मुझ जैसे शठों की शिक्षा को कोई नहीं सुनता ॥८८॥

दोहा

सुहित सुखद गुण युत सदा, काल योग दुख होय।
घर धन जारत अनल जिमि, त्यागे सुख नहिं कोय ॥८९॥

अर्थ—काल योग अर्थात् समय के फेर से सुहित (अत्यन्त मित्र) और गुणवान सुखद व्यक्ति से भी दुख हो जाता है, परन्तु भूल से भी उनका त्याग नहीं करना चाहिये। प्रत्यक्ष देख लीजिये कि अग्नि के द्वारा पाकादि सारे कार्य सिद्ध होते हैं परन्तु काल पाकर वही अग्नि घर और धन सब को जला देता है तो भी उसके परित्याग से सुख नहीं होता अर्थात् काम नहीं चलता ॥८९॥

दोहा

तुलसी सरवर खम्भ जिमि, तिमि चेतन घट माहि।
सूख न तपन हुतन सो, समुझ सुबुध जन ताहि ॥९०॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि जैसे तालाव के मध्य में स्तम्भ गड़ा रहता है जो पानी में रहने के कारण तपन (सूर्य) के हुतन (घाम) से सूखता नहीं उसी प्रकार इस शरीर रूपी सरोवर में स्तम्भ के समान चेतन जीवात्मा स्थित है। इस रहस्य को सुबुधजन (पण्डित लोग) ही समझते हैं ॥९०॥

दोहा

तुलसी झगरा बड़न के, बीच परहु जनि धाय।
लड़े लोह पाहन दोऊ, बीच रुई जरि जाय ॥९१॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जब दो बड़े पुरुष लड़ रहे हों तो उनके झगड़ों के बीच छोटे मनुष्य दौड़कर कदापि न पड़ें। देख लो जब पत्थर और लोहे की लड़ाई हो और बीच में रुई रख दो तो वही जलेगी, पर लोहा और पत्थर ज्यों के त्यों रह जायँगे ॥९१॥

दोहा

अर्थ आदि हन परिहरहु, तुलसी सहित विचार।
अन्त गहन सब कहँ सुने, सन्तन मत सुख सार ॥९२॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि विचार के साथ अर्थ आदि (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) का संग्रह वा साधन हन अर्थात् हिंसा का परित्याग करके करना चाहिये। सन्तों के मत और सुखप्राप्ति का सारांश यही है। सब के मुख से यही सुना जाता है कि अन्तिम जीवन में मनुष्य गहन (वन) का आश्रय ले, अर्थात् वानप्रस्थाश्रमी होकर अपने जीवन को पवित्र करे ॥९२॥

दोहा

गहु उकार बिबिचार पद, मा फल हानि बिमूल।
अहो जान तुलसी यतन, बिन जाने दुख शूल ॥९३॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि विशेष विचार-पद के साथ उकार ('उ' अव्यय वितर्क का है) का ग्रहण करो अर्थात् संसार के सारे कार्य्यों को तर्क-पूर्वक सावधानी से करो। 'मा' अव्यय प्रतिषेध का है। शास्त्र-वेदों में जो निषेधात्मक वाक्य हैं उनके फल का विचार करो। भाव यह है कि सद्ग्रन्थों में जिन कर्मों का निषेध बतलाया गया है अर्थात् जितने कुकर्म हैं उनके कुपरिणाम पर ध्यान देकर जड़-मूल से उनकी हानि कर दो। समूल नष्ट करो। गोस्वामीजी कहते हैं कि इस विधि निषेध को यत्न पूर्वक जानो क्योंकि बिना जाने संसार में दुःख ही होता है ॥९३॥

भावार्थ—कवि के कथन का भाव यह है कि विधि वाक्यों का पालन करो और निषेधात्मक कर्मों को त्याग दो, तब संसार में सुखी रहोगे।

दोहा

नीच निरावहिं निरस तरु, तुलसी सींचहिँ ऊख।
पोषत पयद समान जल, बिषय ऊख के रूख ॥९४॥

अर्थ—जो मनुष्य इस ससाररूपी नीरस वृक्ष की निरौनी करते हैं वे नीच हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि जो विषयरूपी ऊख के वृक्ष को पयद (मेघ) के समान जल से सदा सींचते रहते हैं वे भी नीच हैं ॥९४॥

भावार्थ—ससार में सदा सुख की कामना से लिप्त रहना मूर्खता है और जो विषय की वासना से तृप्त होना चाहते हैं वे भी नीच हैं।

दोहा

लोक बेद हू लौं दगी, नाम भूल को पोच।
धरमराज यमराज यम, कहत सकोच न शोच ॥९५॥

अर्थ—यह बात लोक से लेकर वेद तक दगी अर्थात् प्रसिद्ध है कि एक ही ईश्वर के गुण और कर्मानुकूल धर्मराज, यमराज और यम इत्यादि सभी नाम हैं। जो उत्तम पुरुष हैं वे उत्तम कर्म करते हैं और परमेश्वर को 'धर्मराज' कहते हैं। मध्यम पुरुष उसे 'यमराज' एव पोच पुरुष संकोच और सोच का परित्याग कर अपनी भूल तथा हठधर्मी से 'यम' कहा करते हैं। वास्तव में जो जैसा कर्म करता है, परमात्मा उसे तदनुकूल ही फल देता है ॥९५॥

दोहा

तुलसी देवल राम के, लागै लाख करोर।
काक अभागे हगि भरे, महिमा भई न थोर ॥९६॥

अर्थ—इस दोहे में महाकवि ने ऊपर के मत का स्पष्टीकरण करते

हुए सिद्धान्त कथन किया है। कहते हैं कि राम के मन्दिर बनाने में लाखों और करोड़ों रुपये लग जाते हैं। ऐसे विशाल मन्दिरों पर बैठकर अभागे कौवे मल-मूत्र कर दिया करते हैं परन्तु इससे उस मन्दिर की महिमा नहीं घट जाती। उसी प्रकार पाँच पुरुष यदि परमात्मा को 'यम' ही कहे तो इससे क्या हुआ? उसकी एक रसता में कोई अन्तर नहीं आता ॥९६॥

दोहा

भलो कहहिं जाने बिना, की अथवा अपवाद।
तुलसी जानि गँवार जिय, कर बन हरख बिषाद ॥९७॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि गँवारों का दस्तूर है कि या तो किसी को बिना जाने-बूझे बहुत भला कहने लग जाते हैं अथवा उसका अपवाद ही करने लगते हैं। ऐसे मूर्खों की स्तुति एवं निन्दा से न तो हर्ष मनावे और न विषाद ॥९७॥

दोहा

तनधन महिमा धर्म जेहि, जाकहँ सह अभिमान।
तुलसी जियत बिडम्बना, परिणामहुँ गति जान ॥९८॥

अर्थ—जिस मनुष्य का शरीर, धन, यश और धर्म सब कुछ अभिमान के साथ है उसकी लोक में जीते जी बिडम्बना (निन्दा) होती है और परिणाम में (मरने पर) दुर्गति होती है। अर्थात् अभिमान से सब कुछ नष्ट हो जाता है ॥९८॥

दोहा

बड़ो बिबुध दरबार ते, भूमि भूप दरबार।
जापक पूजक देखियत, सहत निरादर भार ॥९९॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि इस समय तो विबुध अर्थात्

देवताओं के दरबार की अपेक्षा भूमि-भूप (पृथिवी के राजाओं) के दरबार ही बढ़े-चढ़े दीखते हैं। क्योंकि देवताओं के जपने और पूजने-वाले लोग इन राजाओं के द्वारा कठिन अपमान उठा रहे हैं और बुरे प्रकार सताये जा रहे हैं ॥९९॥

दोहा

खग मृग मीत पुनीत किय , बनहु राम नयपाल ।
कुमति बालि दसकण्ठ गृह , सुहृद बंधु किय काल ॥१००॥

अर्थ—नीति के पालन करनेवाले भगवान रामचन्द्रजी ने बुद्धि-मत्ता से बन में बसते हुए पक्षियों और मृगों को भी पवित्र करके मित्र बना लिया, परन्तु बालि तथा रावण के घर में कुमति फैली कि इन्होंने अपने सुहृद भ्राता सुग्रीव और विभीषण को सताकर अपना काल अर्थात् मृत्यु का कारण बना लिया ॥१००॥

दोहा

राम लषन बिजयी भये , बनहुँ गरीब नेवाज ।
मुखर बालि रावन गये , घर ही सहित समाज ॥१०१॥

अर्थ—गरीबनेवाज अर्थात् दीनों पर दया-भाव दर्शानेवाले राम और लक्ष्मण बन में रहते हुए भी समर में विजयी हुए, परन्तु बालि और रावण कलह के कारण अपने गृह में ही परिवार के साथ नष्ट होगये ॥१०१॥

दोहा

द्वारे टाट न दै सकहिं , तुलसी जे नर नीच ।
निदरहिं बलि हरिचन्द कहँ , कहु का करन दधीच ॥१०२॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि संसार में ऐसे भी नीच पुरुष हैं जो किसी अतिथि के आने पर अपने द्वार पर एक टूक टाट का बिछा-वन भी नहीं दे सकते पर अपने सम्मुख बलि और हरिचन्द जैसे दानी

धर्मात्माओं का भी निरादर करते और कहते हैं कि हमारे सामने कर्ण और दधीचि क्या हैं ? ॥१०२॥

दोहा

तुलसी निज कीरति चहहिं, पर कीरति कहँ खोय।
तिनके मुँह मसि लागि हैं, मिटिहि न मरिहैं धोय ॥१०३॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो पुरुष दूसरों की कीर्त्ति को नष्टकर अपनी कीर्त्ति को स्थापित करना चाहते हैं उनके मुख में ऐसी कालिमा लगेगी जिसे धोते-धोते मर भी जायँ तोभी वह नहीं मिटेगी ॥१०३॥

दोहा

नीच चंग सम जानिबो, सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलि देत महि गिर परत, खैंचत चढ़त अकास ॥१०४॥

अर्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि इस बात को सुनकर और देख कर जान लो कि नीच मनुष्यों की दशा पतङ्ग (गुड्डी) जैसी होती है। चंग की डोरी को शिथिल कर दो तो वह पृथिवी पर गिर पड़ती है और डोरी को खींचो तो गुड्डी आकाश में चढ़ जाती है। उसी प्रकार निकृष्ट मनुष्यो को दृष्टि से उतारे रहो तो ठीक रहते हैं, कोई उपद्रव नहीं करते पर जब उनका आदर करोगे तो वे सिर पर चढ़कर नाना प्रकार के बखेड़े किया करेंगे ॥१०४॥

दोहा

सह बासी काँचो भखहिं, पुरजन पाक प्रबीन।
कालछेप केहि बिधि करहिं, तुलसी खग मृग मीन ॥१०५॥

अर्थ—पक्षियों, मृगों और मछलियों की ऐसी दुर्दशा है कि इन्हें इनके बलवान साथी तो कच्चा ही भक्षण कर जाते हैं और पाकशास्त्र में

निपुण नगर-निवासी पकाकर खाते हैं ऐसी दशा में ये बेचारे किस प्रकार कालक्षेप करें ॥१०५॥

भावार्थ—कवि के कथन का भाव यह है कि इस संसार में निर्बल का निर्वाह नहीं हो सकता।

दोहा

बड़े पाप बाढ़े किये, छोटे करत लजात।
तुलसी तापर सुख चहत, बिधिपर बहुत रिसात॥१०६॥

अर्थ—संसार में ऐसे भी नीच पुरुष प्रस्तुत हैं जो व्यभिचार, गोहत्या और ब्रह्म-हत्यादि महापातकों से भी बड़े-बड़े पाप करते रहते हैं। छोटे-छोटे पापों के करने में तो लज्जित होते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि तिस पर भी तुर्रा यह है कि पाप का फल जो दु:ख है उसे भोगना नहीं चाहते, अपितु उल्टे सुख चाहते हैं और दु ख देखकर भगवान पर भी अत्यन्त क्रोधित होते हैं कि मुझे क्यों कष्ट देते हो ॥१०६॥

दोहा

सुमति नेवारहिं परिहरहिं, दल सुमनहु संग्राम।
सकुल गये तन बिन भये, साखी यादव काम॥१०७॥

अर्थ—इस संसार में जो मनुष्य सुमति त्यागकर घोर संग्राम की कौन चलावे दल (पत्ते) और सुमन (फूल) युक्त संग्राम में प्रवृत्त होंगे उनकी पराजय अवश्य होगी। प्रत्यक्ष प्रमाण देख लीजिये कि यदु-वंशियों में फूट फैली और ये दुर्बुद्धिवश त्रिधारा पत्र ही लेकर लड़े, पर सवंश नष्ट हो गये। इसी प्रकार कामदेव दुर्मति धारण कर शिवजी से पुष्प ही लेकर समर में प्रवृत्त हुआ, पर उसे महादेव ने भस्म कर दिया तब से वह तनहीन हो गया। अत कुमति त्यागकर सुमति धारण करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है ॥१०७॥

दोहा

कलह न जानब छोट करि, कठिन परम परिणाम।

लगत अनल अति नीच घर, जरत धनिक धन धाम॥१०८॥

अर्थ—परस्पर के कलह (वैर-विरोध) को कभी छोटा नहीं समझना चाहिये क्योंकि छोटा कलह ही बढ़कर अत्यन्त कठिन परिणाम तक पहुँच जाता है। ग्राम वा नगर के किसी निर्धन की झोंपड़ी में आग लगती है परन्तु उससे उसी का घर जलकर नहीं रह जाता, अपितु धनी मनुष्यों के धन और गृह भी जल जाते हैं। उसी प्रकार जिस घर में फूट का आगम होता है वह घर तो उससे नष्ट होता ही है, उसके कारण अड़ोस-पड़ोस की भी हानि होती है॥१०८॥

दोहा

जूझे ते भल बूझिबो, भलो जीति ते हारि।

जहाँ जाय जहँड़ाइबो, भलो जु करिय बिचार॥१०९॥

अर्थ—वैर-विरोध फैलाकर जूझने से समझ-बूझकर चुप रह जाना अच्छा है और लड़ाई-झगड़े में बहुत कुछ खोकर जीत जाने की अपेक्षा प्रारम्भ में ही बिना कुछ खोये हार मान लेना भला है। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो जहाँ जाय वहाँ यदि कलह हो तो अपना कुछ खोकर भी घर वापस आना भला है॥१०९॥

दोहा

तुलसी तीनि प्रकार ते, हित अनहित पहिचान।

परबस परे परोस बस, परे मामला जान॥११०॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि शत्रु और मित्र की पहचान तीन प्रकार से होती है—(१) परवश अर्थात् परतन्त्र होने पर (२) पड़ोस में बसने पर और (३) किसी मामला मुकदमा के पड़ने पर॥११०॥

भावार्थ—कवि के कहने का भाव यह है कि लाचारी में अथवा पड़ोस बसने पर बुरी दशा देखकर किंवा किसी मुकद्दमे में जो सहायता करे उसे मित्र और ऐसे कुसमय में जो दु.ख दे उसे अपना शत्रु जानना चाहिये।

दोहा

दुर्जन बदन कमान सम, बचन बिमुंचत तीर।
सज्जन उर बेधत नहीं, क्षमा सनाह शरीर ॥१११॥

अर्थ—दुष्टों का मुख ही धनुष के समान है जहाँ से बचनरूपी बाण निकला करते हैं, परन्तु वे सज्जनों के हृदय में नहीं बेधते क्योंकि उनके शरीर पर क्षमारूपी सनाह (वर्म वा बखतर) रहता है ॥१११॥

दोहा

कौरव पांडव जानिबो, क्रोध-क्षमा को सीम।
पाँचहि मारि न सौ सके, सवौ निपाते भीम ॥११२॥

अर्थ—कौरव क्रोध की सीमा पर थे और पांडव क्षमा की अवधि थे, जिसका परिणाम यह हुआ कि कौरव १०० होते हुए पाँच पाण्डवों को नहीं मार सके और सब कौरवों को अकेले भीम ने मार डाला ॥११२॥

दोहा

जो मधु दीन्हें ते मरे, माहुर देउ न ताउ।
जग जिति हारे परसुधर, हारि जिते रघुराउ ॥११३॥

अर्थ—जो मीठा खिलाने से ही मर जाय उसे विष देकर मारना व्यर्थ है। परशुराम समस्त संसार को जीत चुके परन्तु रामचन्द्रजी के मीठे वचनों के सम्मुख हारकर नम्र हो गये, और रामचन्द्रजी ने

बधे पाप अपकीरति हारे।
मारत हू पाँ परिय तुम्हारे॥

सब प्रकार हम तुम सन हारे।
छमहु विप्र अपराध हमारे॥
कहकर हार मानली परन्तु अन्त में उन्हीं की जीत समझी गयी। फलतः क्षमा में बड़ा गुण है ॥११३॥

दोहा

क्रोध न रसना खोलिये, बरु खोलब तरवारि।
सुनत मधुर परिनाम हित, बोलब बचन बिचारि ॥११४॥

अर्थ—क्रोध के अवसर पर जीभ हिलाना अर्थात् कुछ भी कटु वचन बोलना अच्छा नहीं। कटुवचन बोलने के लिये जीभ खोलने की अपेक्षा जान मारने के लिये तलवार म्यान से निकालना बल्कि अच्छा है। तुलसीदासजी कहते हैं कि विचारपूर्वक ऐसा वचन बोलो जो सुनते समय मीठा प्रतीत हो और उसका परिणाम भी हितप्रद हो ॥११४॥

दोहा

तुलसी मीठो समय ते, माँगी मिलै जो मीच।
सुधा सुधाकर समय बिन, काल कूट ते नीच ॥११५॥

अर्थ—तुलसीदास कहते हैं कि ठीक इच्छित काल पर मृत्यु मिल जाय तो वही अच्छी है पर बिना समय के अमृत तथा चन्द्रमा भी विष की अपेक्षा अधिक दु.खद होते हैं ॥११५॥

दोहा

पाही खेती लगन बढ़ि, ऋण कुब्याज मगु खेत।
बैर आपु ते बड़न ते, कियो पाँच दुख देत ॥११६॥

अर्थ—दूर की खेती, अतिशय प्रेम, अधिक ब्याज दर पर लिया हुआ ऋण, राह पर का खेत और अपने से बड़े मनुष्यों से वैर करना ये पाँचों अत्यन्त दु:ख देते हैं ॥११६॥

दोहा

रीझ खीझ गुरु देत सिख, सखहिं सुसाहेब साथ।
तोरि खाय फल होय भल, तरु काटे अपराध ॥११७॥

अर्थ—गोस्वामीजी कहते हैं कि वृक्ष अत्यन्त परोपकारी होते हैं। वे जनता को स्वयं तो फल प्रदान करते ही हैं और लोग तोड़कर भी उनके फलों को खा जाते हैं। यहाँ तक तो अच्छा है, परन्तु वृक्ष को जड़ से काट देना पाप है। उसी प्रकार गुरु अपने शिष्य को, मित्र मित्र को, सुस्वामी अपने अधीनस्थों को एवं साधु महात्मा सर्व साधारण जनता को प्रसन्न होकर तो शिक्षा देते ही हैं, अप्रसन्न होने पर भी अन्यथा नहीं करते अपितु उनका सुधार ही करते हैं। अतः इन चारों का विरोध करना दोष है ॥११७॥

दोहा

चढ़ो बघूरहि चग जिमि, ज्ञान ते शोक समाज।
करम धरम सुख संपदा, तिमि जानिबो कुराज ॥११८॥

अर्थ—जिस प्रकार बघूर (वातावर्त्त) में चढ़ी हुई गुड्डी नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है और चित्त में ज्ञान के आगमन से शोक समाज (राग-द्वेषादि) दूर हो जाते हैं उसी प्रकार कुराज्य में शुभ कर्म, धर्मानुष्ठान, समस्त सुख और धन-धान्य नष्ट हो जाते हैं ॥११८॥

दोहा

पेट न फूटत बिन कहे, कहे न लागत ढेर।
बोलब बचन बिचार युत, समुझि सुफेर कुफेर ॥११९॥

अर्थ—बात बहुत कुछ विचार कर के सुफेर और कुफेर समझकर बोलना चाहिये। बिना कहे पेट तो फूटता नहीं और न कह देने से ढेर ही लग जायगी ॥११९॥

दोहा

प्रीति सगाई सकल विधि, वनिज उपाय अनेक।

कलबलछलकलिमलमलिन, डहकत एकहि एक ॥१२०॥

अर्थ—इस मलिन कलियुग में कल, बल, छल और मल की इतनी अधिकता हो गयी है कि प्रेम और मैत्री इत्यादि सब प्रकार के सम्बन्धों में तथा वनिज-व्यापार के अनेक उपायों में इनका प्रवेश देखा जाता है। इस प्रकार प्रत्येक सबल अपने से निर्बलों को सता रहा है ॥१२०॥

दोहा

दम्भ सहित कलिधर्म सब, छल समेत व्यवहार।

स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार ॥१२१॥

अर्थ—इस कलियुग मे सब प्रकार के सत्य-शौचादि धर्मों के आचरण में भी पाखण्ड फैल गया है और सब प्रकार के व्यवहारों में छल घुसा हुआ है। सब प्रकार के स्नेह मे स्वार्थ पाया जाता है जिसकी रुचि में जैसा आता है वह तदनुसार ही आचरण कर रहा है, कोई मर्यादा नहीं दीखती ॥१२१॥

दोहा

धातु वधी निरुपाधि वर, सद्गुरु लाभ सुमीत।

दम्भ दरस कलिकाल महँ, पोथिन सुनिय सुनीत ॥१२२॥

अर्थ—इस दोहे में कवि ने 'परिसंख्या अलङ्कार' की रचना की है। जहाँ किसी धर्म को अपने स्थान से हटाकर दूसरे स्थान में स्थापित किया जाय, वहाँ 'परिसंख्या अलङ्कार' होता है। कहते हैं कि इस कलियुग में सर्वत्र उपाधि (उपद्रव) ही देखते हैं एक धातु (संस्कृत शब्दों के मूल) मात्र निरुपाधि हैं। ऐसा कहीं नहीं, केवल सद्गुरु

शब्द में ही गुल्ला पच गयी है। मित्रता कहीं न रही केवल लाभ मैत्री जा घुसी अर्थात् लोग उसी से मित्रता करते हैं जिससे कुछ लाः हो। सद्गुणों के दर्शन नहीं, जहाँ जाइये वहाँ दम्भ (पाखण्ड) के दर्शन होते हैं। कहीं व्यवहार में सुनीति नहीं पाते केवल पुस्तकों : 'सुनीति' शब्द पाते हैं ॥१२२॥

दोहा

फोरहिं सूरख सिल सदन, लागे चहुक पहार।
कायर कूर कपूत कलि, घर घर सरिस उहार ॥१२३॥

अर्थ—कलियुग के मनुष्य ऐसे मूर्ख होगये हैं कि पर्वत से ठोकर खा जाने पर घर की शिला (हलदी मसाले पीसने की सिल) तोड़ने लगते हैं अर्थात् बलवानो से सताये जाकर उसी आवेश में अपने से निर्बलों को सताकर उसका बदला लेने लगते हैं। ऐसे कायर, क्रूर और कुपूत इस समय घर-घर में ओहार के सदृश छाये हुए हैं अर्थात् बहु-संख्यक हैं ॥१२३॥

दोहा

जो जगदीश तो अति भलो, जो महीश तो भाग।
जन्म जन्म तुलसी चहत, रामचरन अनुराग ॥१२४॥

अर्थ—जनश्रुति है कि किसी ने गोस्वामीजी से कहा कि आप के उपास्यदेव राम तो ईश्वर के अवतार नहीं थे, राजा थे। उसी पर गोस्वा-मीजी ने यह दोहा कहा कि राम यदि ईश्वर हों तोभी अच्छा और यदि राजा ही हों तोभी मेरा भाग्य है कि ऐसे महापुरुष का सद्गुण कथन कर रहा हूँ। मैं तो प्रत्येक जन्म में श्रीराम के चरणों में दृढ़ भक्ति चाहता हूँ ॥१२४॥